गायत्री यज्ञ विधान

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

"अखण्ड ज्योति" कार्यालय

गायत्री तपोभूमि मथुरा।

प्रथम बार **सम्वत् 2011 वि0**

भूमिका

****

द्विजत्व—आध्यात्मिक पुनर्जन्म में गायत्री माता और यज्ञ पिता है। गायत्री उपासकों के लिये यज्ञ भगवान् की अर्चना भी आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए शास्त्रोक्त पद्धति से स्मार्त विधान के अनुसार यह पुस्तक विनिर्मित की गई है।

अनेक पद्धतियों की भिन्नता, लोकाचार, देशाचार, परम्परागत आचार, शाखा भेद, सम्प्रदाय भेद आदि के कारण हवन विधानों में बहुधा अनेक प्रकार देखे जाते हैं। इसी प्रकार कृत्यों के क्रमों में भी अन्तर देखा गया है। इन सब भिन्नताओं तथा अन्तरों से नवीन यज्ञ कर्त्ता को भ्रम होने की संभावना रहती है इसलिए अनेक पद्धतियों, मान्यताओं एवं आचार्यों की परम्पराओं का तात्विक दृष्टि से समन्वय करते हुए इस पुस्तक में ऐसा क्रम का तात्विक दृष्टि से समन्वय करते हुए इस पुस्तक में ऐसा क्रम निर्धारित किया गया है। जिसमें सभी दृष्टिकोणों में सुविधा जनक समन्वय हो सके।

यह मध्यम वृत्ति के सामान्य यज्ञों का विधान है। अतिशय वृहद महायज्ञों में कुछ विधान बढ़ जाते हैं, इसी प्रकार छोटे हवनों में कुछ कृत्य घटा कर संक्षिप्त कर दिये जाते हैं। सकाम यज्ञों का विधान भी भिन्न है। इसी प्रकार श्रोत यज्ञों की पद्धतियां एवं विधि व्यवस्थाएं भी भिन्न हैं। इसकी चर्चा इस संबंध में अलग पुस्तकें लिखकर करेंगे।

यज्ञ का विषय क्रियात्मक अधिक है। पुस्तक से सहायता तो मिलती है पर इस विषय में नवीन पदार्पण करने वाले के लिए कितना ही अच्छी तरह समझा कर लिखने पर भी विषय कठिन ही रहेगा। ऐसे सज्जन मथुरा आकर यज्ञ विषय की आवश्यक शिक्षा क्रियात्मक रूप से प्राप्त कर सकते हैं।

----***----

विषय सूची

यज्ञ की अनिवर्चनीय महत्ता

****

ॐ आदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्योऽस्यूर्जेत्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्पामि । अग्ने जिव्हासि सुहुर्देवेम्यो धाम्ने धाम्ने मे यजुषे यजुषे ।

यजुर्वेद 1।30

अर्थात्—जिस प्रकार परमात्मा वेद के प्रत्येक मन्त्र से प्रतिपादित है तथा सर्वव्यापी एवं उपासना करने योग्य है। उसी प्रकार यज्ञ भी वेद के प्रत्येक मन्त्र से प्रतिपादित, सब प्राणियों को बल तथा सुख साधन पहुंचाने वाला है।

यो यज्ञो यज्ञ परमैरिज्यते यज्ञसंज्ञितः ।
तंयपुज्ञारुषं विष्णुं नमाभि प्रभु मीश्वरम् ।।

जो यज्ञ द्वारा पूजे जाते है, यज्ञ मय है, यज्ञ रूप हैं उन यज्ञ रूप परमेश्वर को नमस्कार है।

भारतीय धर्म शास्त्रों में यज्ञ को ईश्वर रूप माना गया है। सब वेदों में ज्येष्ठ ऋग्वेद के सर्व प्रथम मन्त्र "अग्नेमीलं पुरोहित" में अग्नि रूप परमात्म की वन्दना एवं प्रार्थना की गई है। इससे प्रतीत होता है कि वेद के अवतरण से भी पूर्व अग्नि रूप यज्ञ भगवान की महिमा प्रकट थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों, संहिताओं तथा उपनिषदों में अनेक स्थलों पर यज्ञ को ईश्वर परक, देव परक एवं अत्यन्त प्रतिष्ठित एवं महत्व पूर्ण शब्दों में स्मरण किया गया है।

यज्ञो वै विष्णुः

—शत. ब्रा. 1।1।1।2

यज्ञो वै विष्णुः ।

—तैत्तिरीय संहिता 2।7।4

पुरुषो वै यज्ञः ।

—शत. ब्राह्मण 1।2।4।3।2

इन वाक्यों में यज्ञ को परमात्मा का रूप माना गया है। क्योंकि परमात्मा के अधिकांश गुण यज्ञ की अग्नि में मौजूद होते हैं।

यज्ञो वै स्वरहर्देवाः सुर्यः ।

—शत. व्रा. 1।1।1।2।।2

यज्ञ एव सविता ।

—यो. व्रा. पू. 2।33

स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः ।

—शत. व्रा. 24।1।1।6

इन्द्री वै यज्ञः ।

—मै. शा. 4।3।7

एव वै प्रत्यक्ष यज्ञो यत्प्रजापतिः ।

—शतः व्रा. 4।3।4।3

प्रजापतिर्वै यज्ञः ।

—तैत्ति. 1।1।10।10

प्रजापतिर्वै यज्ञः ।

—गोपथ. ब्रा. पू. 2।28

प्रजापतिर्यज्ञः ।

—शत. ब्रा. 1।1।1।1

यज्ञउवै प्रजापतिः ।

—कौ 10।1

यज्ञः प्रजापतिः ।

—शतः व्रा. 11।6।3।9

इन वाक्यों में यज्ञ को सूर्य इन्द्र, एवं प्रजापति माना गया है। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश उष्णता आरोग्य प्राप्त होता है, इन्द्र से वर्षा एवं वनस्पति उपलब्ध है, प्रजा पतिप्रजा का पालन करते हैं वैसे ही यज्ञ भी इन तीनों देवताओं के कार्य को पूरा करता है। इसलिए उसे प्रत्यक्ष सूर्य इन्द्र एवं प्रजापति माना गया है।

प्रथमो हि यज्ञः ।

—कपि. शा. 40।20

यज्ञो वै कर्म ।

—शत. ब्रा. 1।1।1।2

यज्ञो वै श्रेष्ठतरं कर्म ।

—कपि. शा. 46।6

यज्ञो वै श्रेष्ठतरं कर्म ।

—1।7।1 5

इन वाक्यों में यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म, सबसे आवश्यक प्राथमिकता देने योग्य कर्म कहा है। क्योंकि संसार में जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं उन सब में यज्ञ का स्थान निश्चय ही सर्वोपरि है। जितने कार्य संसार में आवश्यक हैं, सबसे पहले करने योग्य हैं उनमें यज्ञ का पहला नम्बर है। क्योंकि अन्य कार्य मनुष्य का जितना हित साधन करते हैं, यज्ञ उन सब से अधिक लाभ दायक हैं।

यज्ञो वै परशुः ।

—शत. ब्रा. 3।6।4।10

यज्ञो वै आपः ।

—शत. ब्रा. 1।1।1।1

यज्ञो वा अनः ।

—शत. ब्रा. 1।1।1।2

यज्ञो वै प्रावित्रम् ।

—शत. ब्रा. 1।4।3।52

इन वाक्यों में यज्ञ को परशुः, आपः, अनः प्रावित्रम् सदृश्य महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रतीक बताया गया है। इन सूक्ष्म शक्तियों का लाभ प्राप्त करके मनुष्य प्रकृति पर अपना अधिपत्य स्थापित कर सकता है।

यज्ञ की महिमा साधारण नहीं है। भारतीय धर्म में प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ हवन के साथ आरम्भ होता है। इतना ही नहीं आगे चलकर अपने सब कर्मों को यहां तक कि अपने आपको यज्ञमय, यज्ञ रूप बना लेने का विधान दे। मनुष्य का जीवन यज्ञ के साथ आरम्भ होता है। और यज्ञ के साथ ही उसकी समाप्ति होती है। गर्भाधान का आरम्भिक संस्कार-जिनमें रजवीर्य के संयोग से देह का प्रथम कलल उत्पन्न होता है, यज्ञ के साथ होता है। जब देह में से प्राण निकल जाता है तब भी देह को यज्ञ भगवान् को भेंट करने के लिए अन्त्येष्टि किया जाता है।

निर्विकार प्रजनन क्रिया को भी धार्मिक दृष्टि से यज्ञ ही माना गया है।

तद्वस्तेव प्रजननस्य रूपम् । अग्निर्ज्योति ज्योतिराग्निः स्वोहति । तदुभयतो ज्योती रेतो देवतया परिगृहणाति उभयतः परिगृहीतं वै रेतः प्रजायते तदुभवतः एवैत्परिगृह्य प्रणयति ।

—शतपथ

यह अग्नि ज्योतिः की आहुति सन्तानोत्पत्ति का रूप है। इसलिए ज्योति के दोनों ओर वीर्य के देवता अग्नि को बिठाया है। क्योंकि स्त्री के वीर्य को जब पुरुष का वीर्य दोनों ओर से घेर लेता है तब ही सन्तान उत्पन्न होती है।

शतपथ में गर्भाधान क्रिया में भी यज्ञ भावना की स्थापना की है ताकि उससे उत्पन्न बालक यज्ञ उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला हो।

सवा एष आत्मैव यत्सौत्रामणी योनि रेव वरुणः रेत इन्द्र,

तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि वीर्हिश्चर्म्माधिषवर्णा समिद्धो मध्यस्तस्तौ मुष्कौ स यावान्ह वै वाजपेयेन यज मानस्य लोको भवति तावानस्य लोको भवति य एवै विद्वानधोत्यहासञ्चरति ।

—शतपथ

यह आत्मा ही सौत्रामणी यज्ञ है। इस यज्ञ में स्त्री योनि वरुण देवता है। पुरुष वीर्य इन्द्र देवता है, स्त्री अंग यज्ञ वेदी और पुरुष अंग अग्नि है। जो कुत्सित उद्देश्य से नहीं परमार्थ उद्देश्य के लिए सन्तानोत्पादन करता है सो यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।

इन्हीं यज्ञ भावनाओं के साथ भारतीय आत्माएं माता के गर्भ में स्थापित होती और जन्म लेती हैं। यज्ञमय जीवन जीती हैं और जीवन नाटक को समाप्त करके उस देह को चित्त रूपी यज्ञ में समर्पित कर देती है।

भगवान राम ने चारों भाइयों सहित अपने शरीर धारण में यज्ञ को ही आधार बनाया। राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराके अपने आंगन में अलौकिक आनन्द को अवतीर्ण किया। दशरथ जैसे पुत्रेष्टि यज्ञ भले ही सब लोग नहीं कर सकते पर गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त देकर बालक पर शुभ संस्कारों से आच्छादित एवं परिवेष्टित करते थे।

यज्ञ में वेद मन्त्रों के साथ आहुति देने के अनेक सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं; उन परिणामों में सबसे प्रथम यह है कि मनुष्य की आत्मा शुद्ध होती है, उसके चिर संचित कुसंस्कार नष्ट होते हैं, मनोविकार घटते हैं और शुभ संकल्प एवं ब्रह्म तेज की तीव्र गति से अभिवृद्धि होती है। शास्त्रों में ऐसे अनेक प्रमाण मौजूद हैं—

य एनं परिषी दन्ति समादधतिचक्षसे ।
सप्रेद्धो अग्निजिव्हाभिरुदेतु हृदयादधि ।

अथर्व 6।75।2

जो इस अग्नि के चारों ओर बैठकर हवन आदि करते हैं और दिव्य उद्देश्य से हवि चढ़ाते हैं उनके हृदय में परमात्मा का तेज प्रकाशित होता है।

प्रहोत्रे पर्वयं वचोग्नये मरता ब्रहत ।
विषां ज्योतीं विभ्रते न विद्यते ।

सा. म. 38

यज्ञ करने से सद्बुद्धि, तेज और भगवान की प्राप्ति होती है।

ॐ बसोः पवित्रमसि द्यौससि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोसि विश्वघा असि । परमेण धाम्ना हूं हस्वमाव्होमीं ते यज्ञ पतिमाव्हार्षात ।

यजु 1।2

हे यज्ञ**!** तू पवित्र है एवं पवित्रता का हेतु है। तू द्यौ लोक है, तू ही पृथ्वी लोक है। तू वायु को चलता एवं शुद्ध करता है। तू विश्व को धारणा करता है। तू परमधाम से सुख को बढ़ाता है। हे यज्ञ, तू यजमान को मत त्याग यह यजमान तुझे कभी न त्यागे।

दत्तमिर्ष्ट हुतं चैव तप्तानि च तपांसिच ।
वेदाः सत्य प्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्य परोभवेत् ।

(वाल्मीक. अयो. 109।14)

दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद, इनका आश्रय लेना ही सत्य है। अतः सब को सत्यनिष्ठ होना चाहिए। अर्थात् यज्ञादि उपरोक्त सत्य कर्तव्यों में संलग्न होना चाहिए।

यज्ञाः कल्याण हेतवः

विष्णु पुराण 6।1।8

यज्ञ ही कल्याण का हेतु है।

यज्ञ के द्वारा जो आध्यात्मिक आनन्द मिलता है वह अलौकिक है। उसे स्वर्ग सुख कहते हैं। यों यज्ञ द्वारा अनेक कामनाओं की पूर्ति भी होती है पर उसका मुख्य लाभ आत्म-कल्याण है। आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश का आविर्भाव करना है। यह ब्रह्म तेज किसी जीव में जितना ही बढ़ता

है उतना ही उसे—देवताओं को ही उपलब्ध हो सकने वाला—स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। कहा भी है—

नौह वा एषा स्वगर्या । यदग्नि होत्रम् ।

शतपथ 2।3।3।15

यह अग्नि होत्र निश्चय ही स्वर्ग सुख प्राप्त करने वाली विशेष नौका है।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः ।

स्वर्ग की कामना करने वाले को अग्नि होत्र करना चाहिए।

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्य मेव तत् ।
यज्ञो दानं तमश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।

गीता 18।5

यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग नहीं ही करना चाहिए। इन्हें करना ही उचित है। यह यज्ञ दान और तप मनीषियों को भी पवित्र करते हैं।

यज्ञेन देवा विमला विभान्ति यज्ञेन देवा अमृत्वमामुयुः । यज्ञेन पापैबहुभिर्विमुक्तः प्रामोति लोकान् परमस्य विष्णोः ।

(हारीत**)**

यज्ञ से समस्त लोक निर्मल और सुन्दर बनते हैं। यज्ञ से देवता अमर होते हैं। यज्ञ से अनेक पापों से छुटकारा तथा परमात्मा के लोक की प्राप्ति होती है।

स्वर्ग का अर्थ चाहे इस लोक का आध्यात्मिक अलौकिक दिव्य सुख किया जाय, चाहे स्वर्ग लोक में देवताओं को प्राप्त होने वाला सुख किया जाय दोनों ही जीव के लिए शुभ हैं। यज्ञ से मनुष्य निश्चित रूप से शान्ति दायक शुभ सद्गति को प्राप्त होता है।

त्रौविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञौरिष्द्वावा स्वगर्तिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्र लोक
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देव भोगान्

गीता 9।20

वेद विधान के अनुसार यज्ञों द्वारा मुझ भगवान को पूज कर जो निष्पाप मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं वे अपने पुण्य के कारण देव लोग स्वर्गीय सुख को भोगते हैं।

देह में जो असुरता मय, पाप रूप कुसंस्कार असुर प्राण भरे रहते हैं, तथा वे कुविचारों के दूषित वातावरण के रूप में संसार में भ्रमण करते रहते हैं, यज्ञ द्वारा उनका विनाश होकर देव प्राण की वृद्धि होती है। अर्थात् असुरता घट कर देवत्व पनपता है। यथा:—

ये रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वध्या चरन्ति । परापुरो निपुरो ये भरन्त्याग्निष्टां ल्लोकात् प्रणुदात्य स्मात् ।

यजु 2।30

जो असुर प्राण इस पृथ्वी पर असुर रूप से विचरण करते रहते हैं वे यज्ञ की अग्नि द्वारा शरीर में से निकाल बाहर किये जाते हैं।

यज्ञ होम आदि द्वारा इस शरीर को ब्राह्मण बनाया जाता है, उसमें ब्राह्मी गुण स्थापित किये जाते हैं। इन आवश्यक धर्म कृत्यों की उपेक्षा करने से मनुष्य ब्राह्मणत्व से वंचित हो जाता है।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमे स्त्रैविद्येन ज्यायासुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयै क्रियते तनुः ।।

मनु.

स्वाध्याय, व्रत होम, वेदाध्ययन, सुप्रजनन, यज्ञ, तथा महायज्ञों द्वारा यह शरीर ब्राह्मण किया जाता है।

यज्ञ ऐसा आवश्यक कर्म है कि उसे करते ही रहना चाहिए क्योंकि इससे परमात्मा प्रसन्न होता है, प्रभु की प्राप्ति होती है, जिस पर परमात्मा प्रसन्न है उसे किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। यज्ञ परित्याग करने से मनुष्य अनेक सत्परिणामों से वंचित होकर अधोगामी बनता है।

यस्य राष्ट्रे पुरेचैव भगवान यज्ञ पूरुषः ।
इज्यते स्तेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रिमान्वितैः ।
तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूत भावनः ।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निज शासने ।
तास्मिस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामाश्वरे श्वरे ।।

भागवत 4।14।18-20

जिस राष्ट्र या नगर में भगवान यज्ञ पुरुष का यजन होता है उस पर भगवान प्रसन्न होते हैं। जहां भगवान प्रसन्न होते हैं वहां कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

कस्त्वा विमुञ्चति सत्वा विमुञ्चति कस्मैत्व विमुञ्चति तस्मै त्वं विमुञ्चति । पोषाय रक्षसा भागोऽसि ।

यजु 2।23

भला कौन सुख चाहने वाला, यज्ञ को छोड़ता है? जो यज्ञ को छोड़ता है उसे यज्ञ रूप परमात्मा भी छोड़ देता है। सब की पुष्टि एवं उन्नति के लिए हविष्य यज्ञ में छोड़ा जाता है। जो नहीं छोड़ता वह राक्षस हो जाता है।

----***----

यज्ञ शब्द का अर्थ

****

'यज्' धातु से यज्ञ शब्द बना है। जिसका अर्थ है—देव पूजा, संगति करण और दान। ईश्वरीय दिव्य शक्तियों की आराधना उपासना, उनकी समीपता संगति तथा अपनी समझी जाने वाली वस्तुओं को उनके अर्पण करना यह यज्ञ की आध्यात्मिक प्रक्रिया है। देव गुण सम्पन्न सत्पुरुषों की सेवा एवं संगति करना तथा उन्हें सहयोग देना भी यज्ञ है। व्यवहारिक अर्थों में इसे यों भी कह सकते हैं कि बड़ों का सम्मान बराबर वालों से संगति, मैत्री, अपने छोटों को, कम शक्ति वालों को दान सहायता करना यज्ञ है। इस प्रकार ईश्वर उपासना, सत् तत्व का अभिवर्धन एवं पारस्परिक सहयोग भी यज्ञ माने जाते हैं। यों हवन के अर्थ में यज्ञ शब्द का प्रयोग तो प्रसिद्ध ही है। हवन द्वारा भी उपरोक्त तीनों प्रयोजन पूर्ण होते हैं।

देवानां द्रव्य हविषां ऋक् साम यजुषांतथा ।
ऋत्वजां दक्षिणानां च संयोगो यक्षउच्चते ।

—मत्स्य पुराण

देवों का हवि प्रदान, वेद मन्त्रों का उच्चारण, ऋत्वजों को दक्षिणा इन तीनों कार्यों का संयोग यज्ञ कहलाता है।

इज्यन्ते चत्वारों वेदाः साङ्गाः सरहस्याः सच्छिष्येभ्यः सम्प्रदीयन्ते **(**उपदिश्यन्ते**)** पदाचार्य्यैयेन वा सा यज्ञः ।

विद्वान आचार्यों द्वारा सत्पात्र शिष्यों को अंग उपांगों सहित वेदों का पढ़ाना यज्ञ है।

येन सदनुष्ठानेन इन्द्रादि देवाः सुप्रसन्नाः सुवृष्टिं कुर्युस्तत् पदामिधेयम् ।

जिस कार्य से इन्द्रादि देव प्रसन्न होकर उत्तम वर्षा करें उसे यज्ञ कहते हैं।

येन सदनुष्ठानेन स्वर्गादि प्राप्तिः सुलभाः स्यात् तत् यज्ञ पदाभिधेयम् ।

जिस आयोजन द्वारा स्वर्ग आदि सद्गति को प्राप्त करना सुलभ हो वह यज्ञ है।

येन सदनुष्ठानेन सम्पूर्णां विश्व कन्याणं भजेत् तत् यज्ञपदाभिधेयम् ।

जो आयोजन विश्व कल्याण करने वाला हो उसे यज्ञ कहते हैं।

येन सदनुष्ठानेन आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक तापत्रयोन्मूलनं सुकरं स्यात् तत यज्ञ पदाभिधेयम् ।।

जिस सदनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक, आधि दैविक, आधि भौतिक तीनों प्रकार के कष्टों का निवारण हो वह यज्ञ कहा जाता है।

वेदमन्त्रैर्देवतामुद्दिश्य द्रव्यस्य दानं यागः

वेद मन्त्रों द्वारा देवोद्देश्य के लिए दान करना यज्ञ है।

देव पूजा

यजन देवानां पूजनं सत्कार भावनं यज्ञः ।

देवो का पूजा सत्कार भाव यज्ञ है।

इज्यन्ते देवा अननेति यज्ञः ।

जिस कार्य के द्वारा देवताओं का सम्मान किया जाय वह यज्ञ है।

इज्यन्ते देवा अस्मिन्निति यज्ञः ।

जिससे देवों का पूजन किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं।

इज्यन्ते सम्पूजिताः तृप्तिमासाद्यन्ते देवा अत्रेति यज्ञः ।

जिससे देवों को पूजित एवं तृप्त किया जाय वह यज्ञ है।

संगति करण

करणयजनं धर्म देश जाति मर्यादा रक्षायै महापुरुषाणा मेकीकरणं यज्ञः ।

श्रेष्ठ पुरुषों को धर्म, देश, जाति की मर्यादा की रक्षा के लिए संगठित एवं एकत्रित करना यज्ञ है।

इज्यन्ते सङ्गतीक्रियन्ते विश्व कल्याणाय महात्तो विद्वांसः वैदिक शिरोमणयः निमन्त्यन्ते अस्मिन्निति यज्ञः ।

जहां विश्व कल्याण के लिए श्रेष्ठ, विद्वान, वेदज्ञ पुरुषों को आमन्त्रित एकत्रित किया जाता है वह यज्ञ है।

इज्यन्ते स्वकीय वन्धुवान्धवादयः प्रेम सम्मान माजः संगति करणाय आहयन्ते प्राथर्येन्ते चयेन कर्मणेति यज्ञः

किस आयोजन में बन्धु बान्धवों, स्नेह सम्बन्धियों को पारस्परिक संगठन के लिए प्रेम एवं सम्मान के साथ एकत्रित किया जाता है वह यज्ञ है।

दान

यजनं यथा शक्ति देश काल पात्रादि विचार पुरस्पर द्रव्यादि त्यागः

देश काल पात्र का विचार करके सदुद्देश्य के लिए जो धन दिया जाता है उसे यज्ञ कहते हैं।

इज्यते देवतोद्देशेन श्रद्धा पुरस्सरं द्रव्यादि त्यज्यते यस्मिन्निति यज्ञः ।

देवों के निमित्त श्रद्धा पूर्वक जिसमें दान किया जाता है उस कार्य को यज्ञ कहते हैं।

इज्यन्ते भगवति सर्वस्वं निधाप्यते येन वा स यज्ञः ।

भगवान को आत्म समर्पण करने की क्रिया यज्ञ है। इज्यन्ते सन्तोष्यन्ते याचका येन कर्मण स यज्ञः ।

इज्यन्ते सन्तोष्यन्ते याचका येन कर्मण स यज्ञः ।

याचकों को सन्तुष्ट करना यज्ञ है।

यज्ञ शब्द के तीन अर्थ है **(**1) देव पूजा **(**2) संगति करण **(**3) दान। इन तीनों पर विविधि दृष्टिकोण से विचार करने से उनके जो अर्थ निकलते हैं। इन अर्थों का निष्कर्ष यह है कि **:**—

(1) संसार में जो दैवी और आसुरी दो शक्तियां काम कर रही हैं। उनमें से देवत्व की, सतोगुण की, न्याय और धर्म पक्ष की पूजा, उपासना, एवं सहायता की जाय; उसी में श्रद्धा रखी जाय और अपना प्रत्येक कदम उसी दिशा में अग्रसर किया जाय। असुरता को हटाने, उससे लड़ने और उसका विरोध करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। यदि मजबूरी के कारण बुराई की परिस्थिति में रहना पड़े तो भी उसको मानसिक रूप से कभी स्वीकार न करना चाहिए। वरन् कम से कम उससे मानसिक घृणा तो रखनी ही चाहिए और उस परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए प्रभु प्रार्थना तथा प्रयत्न भी करते रहना चाहिए। असुरता का पक्ष ग्रहण करना और उसी में तल्लीन हो जाना असुर पूजा है। यज्ञ में श्रद्धा रखने वालों को इससे बनाना चाहिए।

(2) संसार में फूट, द्वेष, विलगाव, घृणा के भाव पहले से ही बहुत ज्यादा है, उनको बढ़ावा न देकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि एकता, मेल, प्रेम, संगठन, सहयोग तथा पारस्परिक आत्मीयता का वातावरण बढ़े। एक दूसरे के साथ उदारता तथा सेवा सहायता का व्यवहार करें। जाति जाति में, राष्ट्र राष्ट्र में प्रान्त प्रान्त में, धर्म धर्म में, वर्ग वर्ग में जो विद्वेष, छीन झपट आपा धापी, फूट फिसाद, चढ़ा ऊपरी फैली हुई है उसे बढ़ाने का नहीं घटने का प्रयत्न करना चाहिए और अनेकता को एकता में, मतभेद को समन्वय में परिवर्तित करना चाहिए। हिन्दू धर्म सहिष्णुता एवं अनेकता में एकता देखने का धर्म है, इसमें अनेकों संस्कृतियों, विचार धाराएं, मान्यताएं मौजूद है, कई तो परस्पर विरोधी भी है, इतने पर भी सब की एकता कायम है। अनेक दर्शन, अनेक वाद, अनेक सिद्धान्त अनेक मत रहते हुए भी मनुष्य सद्भाव और सहष्णुता पूर्वक आपस में रह सकते है और लड़ने झगड़ने की अपेक्षा प्रेम पूर्वक विचार विनियम द्वारा, संगतीकरण द्वारा, परम लक्ष तक पहुंच सकते हैं। इस संगती करण को दृष्टि में रखना यज्ञ का आवश्यक अंग है।

(3) परमात्मा ने जो कुछ हमें दिया है वह हमारे ही भोगने या संचय करने के लिए नहीं है। कुंए, नदी, वृक्ष, पुष्प, गाय, घोड़ा, आदि तक अपनी सम्पत्ति को दूसरों को देते हैं फिर हम मनुष्य होकर उनसे भी पीछे रहे यह यज्ञ भावना के विपरीत है। हमारे पास जो कुछ बल, बुद्धि, विद्या, धन, वैभव, ऐश्वर्य, प्रभाव आदि है उसे अपने से छोटों को ऊपर उठाने में और अपने से बड़ों को आगे बढ़ाने में लगाना चाहिए। अपनी निजी आवश्यकताएं कम से कम रखें, पूर्ण श्रम एवं लगन के साथ अपनी सांसारिक मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, एवं आत्मिक शक्तियों को बढ़ावें, पर उस बढ़ोतरी का उद्देश्य "सौ हाथ से कमा हजार हाथ से दान कर" होना चाहिये। बेटे पोतों को जायदादें खड़ी करके उन्हें हरामखोर बना जाने की अपेक्षा अपनी कमाई को संसार में सद्‌गुण, सद्विचार, सद्भाव सत्कर्म एवं सुख शान्ति बढ़ाने में लगाना चाहिए।

आज दान का दुरुपयोग खूब होता है, अनधिकारी लोग दूसरों को उल्लू बनाकर मुफ्त का माल उड़ाने में बहुत प्रवीण होते हैं, इनसे बचना उचित है, परन्तु अपनी शक्तियों को सत्कर्मों के लिए दिल खोलकर खर्च करने में भी कंजूसी न करना ही उचित है।

उपरोक्त तीनों भावनाओं—देव पूजा—संगतिकरण और दान को हृदयंगम करना—अपनाना—कार्य रूप में लाना—ही यज्ञ का सन्देश, शिक्षण, एवं वास्तविक अर्थ है।

----*----**

यज्ञ द्वारा देवों का आवाहन

****

देवों और मनुष्यों को परस्पर सम्बन्ध स्थापित कराके सुख शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाला अमोघ साधन यज्ञ है। केवल मनुष्य का स्थूल प्रयत्न भी पर्याप्त नहीं और केवल देवताओं की सूक्ष्म शक्तियां भी सब कुछ कर सकने में समर्थ नहीं होतीं। कल्याण का आयोजन दोनों के सहयोग से ही होता है। गीता में इस रहस्य को स्पष्ट कर दिया गया है।

सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यहवयेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।

इष्टान्भोगान्हिवो देवा दास्यन्ते यज्ञ भविताः ।

(गीता 3।10—11)

प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा को उत्पन्न करके उससे कहा—इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों की इच्छित कामनाओं को देने वाला हो।

तुम लोग इस यज्ञ द्वारा देवताओं को बढ़ाओ वे देवता लोग तुम्हारी उन्नति करें। इस प्रकार आपस में कर्तव्य समझ कर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होंगे।

यज्ञ द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम्हारे लिए बिना मांगें ही अभीष्ट भोगों को प्रदान करेंगे।

यजुर्वेद अध्याय 22।33 में भगवान का आदेश है कि—

आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राणोयज्ञेन कल्पताम्...चक्षुनोर्यज्ञेन कल्पताम् वाग्यज्ञेन कल्पताम् मनोयज्ञेन कल्पताम् आत्मा यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा।

अर्थात्—अपनी आयु, प्राण, इन्द्रियां, मन आत्मा आदि सर्वस्व को यज्ञ को समर्पण करो।

इस मन्त्र में मनुष्यों को यह आदेश किया गया है कि वे अपना सर्वस्व यज्ञ के लिए लगादें। यज्ञ के द्वारा देवों से सम्बन्ध स्थापित करने का पूरी तत्परता से प्रयत्न करने के लिए मनुष्यों को जैसी प्रेरणा उपरोक्त मन्त्र में है वैसी ही प्रेरणा देवों को भी दी गई है:—

"देवा यजमानश्च सीदत ।"

हे देवताओ! यजमान और तुम पास पास बैठो और इकट्ठे यज्ञ करो।

मनुष्य का लाभ देवताओं से सम्बन्ध स्थापित करने, उन्हें सहयोग देने और बढ़ाने में ही हैं क्योंकि इस प्रकार संतुष्ट और परिपुष्ट हुए देवता मनुष्य को अनेक सुख साधन एवं सुअवसर प्रदान करते हैं। महर्षि अंगिरा का वचन है :—

"यज्ञादिभिर्देवाः शक्ति सुखादीनाम् ।"

—अंगिरा

अर्थात् यज्ञादि शुभ कर्मों से देवताओं को प्रसन्न करके मनुष्य शक्ति, सुख आदि सम्पदाएं प्राप्त करता है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह देव कौन है? कहां रहते हैं? इनसे हमारा क्या सम्बन्ध है? और यज्ञ द्वारा यह क्यों संतुष्ट होते हैं? यज्ञ द्वारा उनका पोषण किस प्रकार होता है? उनका सहयोग मनुष्य को किस प्रकार प्राप्त होता है? और उनमें ऐसी कौन सी सामर्थ्य है जिसके द्वारा संसार को वे लाभ पहुंचा सकें? बिना यज्ञ के संसार को लाभ पहुंचाने में उन्हें क्या अड़चन होती है? इन सब प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है ताकि उपरोक्त अभिवचनों का तात्पर्य ठीक प्रकार समझ में आ जावे।

देव शब्द का स्थूल अर्थ—देने वाला—सत्पुरुष—ज्ञानी, विद्वान, आदि श्रेष्ठ व्यक्ति है। ऐसे पुरुषों को सहयोग देना, उनकी शक्तियों एवं कर्म पद्धतियों को आगे बढ़ाने के लिए निस्वार्थ भाव से सहायता करना यज्ञ है। ऐसे लोगों का मान बढ़ाकर, उनके पक्ष में वातावरण तैयार करके तथा अन्य मार्गों से उनके उद्देश्य को सफल बनाने में सहयोग देकर उनकी पूजा की जाती है। उपासना का अर्थ समीपता भी है। सत्संग द्वारा उनके विचारों एवं कार्यों से समीपता स्थापित करके, लाभ उठाना भी देव पूजा है। यदि हमारे मन में सत्पुरुषों के प्रति या उनके कर्मों के प्रति श्रद्धा न हो, उनका सहयोग या अनुसरण न करें अनुशासन न मानें तो वे इच्छा रहते हुए भी हमारी कोई सेवा नहीं कर सकते हमें कोई लाभ नहीं पहुंचा सकते। इसलिए दोनों पक्षों में पारस्परिक स्नेह सम्बन्ध सहयोग एवं सद्भाव होना आवश्यक है। इस एकता का स्थापित करना ही यज्ञ है। जहां सदुद्देश्य के लिए सच्चे मन से दो व्यक्ति मिलते हैं वहां एक और 1 मिलकर दो होने का नहीं वरन् एक+एक=ग्यारह (11) होने का सिद्धान्त लागू होता है। उनकी सम्मिलित शक्ति दूनी नहीं, ग्यारह गुनी हो जाती है। इस बढ़ी हुई शक्ति से दोनों ही पक्षों को अपरिमित लाभ होता है। यह 'स्थूल यज्ञ की सांसारिक देव पूजा' हुई।

दूसरे देवता वे हैं जो अदृश्य हैं, देवलोक या स्वर्ग आदि लोकों में रहते हैं। यह देवता ईश्वर की विविध प्रकार की सूक्ष्म शक्तियां हैं। वैसे तो ईश्वर एक ही है, उसके शासन में और कोई साझीदार नहीं है। देवताओं को अनेक ईश्वर मानना मूर्खता है। ईश्वर, की विभिन्न शक्तियां अलग अलग हैं, उनके गुण और कार्य भिन्न-भिन्न हैं इन्हें देव कहते हैं। इसी प्रकार प्रकृति के अन्तराल में काम करने वाली, सृष्टि में रचना, विकास, पोषण और संसार करने वाली अनेकों शक्तियां हैं यह भी देव कहलाती हैं। अनेक ग्रहों और सौर मण्डलों से जो प्रभाव किरणें हम तक आती हैं उन्हें भी देव कहते हैं। सूर्य की किरणों में जो सप्त रंग की एवं विविध गुणों वाली अल्ट्रावायलेट, अल्फा वायलेट, एक्सरेज आदि धाराएं काम करती हैं यह भी देव हैं।

ग्रन्थों में 33 कोटि देवताओं का वर्णन है। 33 प्रकार के देवताओं का परिचय इस प्रकार है—बसु 8, रुद्र 11, आदित्य 12, आश्विनी कुमार 1 पूषा 1 यह देव शक्तियां इस विश्व के वातावरण में नाना प्रकार परिवर्तन, उपद्रव, उत्कर्ष उपकर्ष उत्पन्न करती रहती हैं।

देवता 33 प्रकार के, पितर 8 प्रकार के, असुर 99 प्रकार के, गंधर्व 27 प्रकार के, पवन 49 प्रकार के, बताये गये हैं। यह आश्चर्य कौतूहल एवं अविश्वास की बातें नहीं हैं। यह भारतीय सूक्ष्म विज्ञान की चिरकालीन प्रयत्न एवं अन्वेषण के साथ की हुई खोज हैं। किसी समय इन शक्तियों की भारतीयों को भली प्रकार जानकारी थी और वे उससे लाभ उठाकर समस्त प्रकृति के स्वामी बने हुए थे। कहा जाता है कि रावण के यहां देवता कैद रहते थे, उसने देवों को जीत लिया था अपने वश में कर लिया था, वस्तुतः उसने इन अदृश्य शक्तियों की खोज करके उनका उपयोग, नियंत्रण, संचालन, आवाहन और विसर्जन भली प्रकार जान लिया था इसे ही अलंकारी रूप से देवताओं को कैद करना कहते हैं।

पाश्चात्य विज्ञान वेत्ता धीरे-धीरे प्रकृति की रूद्रा शक्तियों का पता लगाते जा रहे हैं। संकाशी (ईथर) तडित (बिजली) गृध्रा (टेली विजन) शरभा (वाष्प) व्यात्ता (अणु शक्ति) कोटर्य (गैस) बलाका (विस्फोट) आदि थोड़ी सी शक्तियों के कुछ अंशों को जान पाया है। और इन्हीं के आधार पर अनेक यन्त्र बनाये हैं। यह रुद्रसेना है। शिव जी की बरात में जिन भूत पिशाच आदि का व्यंगात्मक वर्णन पुराणों में आया है वह यही हीन शक्तियां हैं। इनकी गणना भी एक प्रकार से हीन कोटि के देवों में ही होती है यह श्रेणी बाल क्रीड़ा जैसे कौतूहल की है। इनसे संसार का लाभ कम और हानि अधिक होती है इसलिए शिवजी की बरात जहां चित्रित की जाती है वहां उनकी सेना को "तनु छीन कोउ अति पीन, पावन कोई अपावन तनु धरे ।" दिखाया जाता है। यह उस सेना की तुच्छता का उपहास है। विष्णु, इन्द्र आदि प्रधान शक्ति पुंजों से जो शक्तियां सम्बन्धित हैं उनकी सूक्ष्मता सुन्दरता महत्ता और उपयोगिता इस रुद्र सेना की अपेक्षा कहीं उच्च

कोटि की है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने रुद्र सेना की शक्तियों का उपयोग खर्चीली मशीनों तथा खर्चीले ईंधनों से ही करना जाना है पर देव विद्या के भारतीय वेत्ता इन सब कार्यों को बिना मशीनों के बिना पैट्रोल आदि खर्च किये करना जानते थे। महाभारत युद्ध में तथा लंका युद्ध में ऐसे अनेक दिव्य अस्त्र शस्त्रों की चर्चा है। उनका उपयोग मन्त्र बल से ही होता था।

पूर्व काल में अन्य लोकों तथा ग्रह नक्षत्रों तक मनुष्यों का आना जाना होता था। शरीर को अणु के समान छोटा या अदृश्य बना लेना, आकाश में अत्यन्त विशाल रूप में फैल जाना, जल पर चलना, आकाश में उड़ना आदि अष्ट सिद्ध, नवनिद्धि अनेक सिद्ध पुरुषों को करतलगत होती थीं। यह सब कार्य सूक्ष्म प्रकृति की उन शक्तियों द्वारा सम्पन्न होते थे जिन्हें देव नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक सूक्ष्म शक्ति को अध्यात्म विज्ञान के अनुसार एक देव माना गया है। पंच तत्व देव हैं—जल को वरुण देव, गर्मी को अग्नि, पवन को वायुदेव, धरती को गौरी, आकाश को इन्द्र देव माना गया है। इसी प्रकार सृष्टि के अन्तराल में जो अनेकों शक्तियां काम कर रही हैं उनको भी देव संज्ञा दी गई है।

अदृश्य शक्तियों के दो भाग हैं—एक चेतना दूसरा क्रिया। क्रिया प्रकृति से सम्बन्धित है, चेतना ब्रह्म का अंश है। जैसे सूर्य का स्थूल रूप अग्नि पिण्ड मात्र है, भौतिक विज्ञानी सूर्य को केवल अग्नि का गोला या भ्रमणशील एक ग्रह मात्र समझते हैं पर अध्यात्म विज्ञान के अनुसार इस स्थूल रूप के अतिरिक्त सूर्य में एक चैतन्य प्राण भी है जो ब्रह्म से प्रेरणा प्राप्त करता है, ब्रह्म रूप है। इसी प्रकार जल, वायु, अग्नि आदि देवों के जो स्थूल रूप हैं उनके अतिरिक्त उनमें एक चैतन्य आत्मा भी है जो ब्रह्म से सम्बन्धित है। जैसे मनुष्य का शरीर भीतर की प्राण चेतना के अनुसार कार्य करता है वैसे ही इन देवों की अन्तः चेतना ही उनकी दृश्य क्रिया का संचालन करती है। उस देव आत्मा से जब सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो उसके अनुसार इन जल वायु आदि के चलाने और रोकने का कार्य होने लगता है। इन्द्र की चैतन्य सत्ता को उपासना द्वारा प्रसन्न कर लिया जाय तो मनुष्य मनचाही वर्षा कराने में सफल हो सकता है। गंगा की देव आत्मा को प्रसन्न करके भागीरथ जो पृथ्वी पर गंगा नदी को लाये और उसी जल धारा को इच्छित मार्ग से समुद्र तक ले गये। पूर्व काल में इसी प्रकार अन्य देवों को लोगों ने प्रसन्न किया है और अभीष्ट लाभ प्राप्त किये हैं।

गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, काली, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पूषा, अश्विनी कुमार, क्षेत्रपाल, भैरव योगिनी, आदि देवता भी इसी प्रकार के हैं। यह शक्तियां मनुष्य पर अनेकों प्रभाव डालती हैं। जब इन देवों की स्थिति और मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति एक ही केन्द्र पर केन्द्रित होती है तो दोनों में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है। इसे ही देवता को प्रसन्न

करना या सिद्ध करना कहते हैं दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि किन्हीं साधना विशेष द्वारा अपने शरीर की धातुओं, चक्रों, उपत्यिकाओं, ग्रन्थियों को तथा ब्रह्मरंध्र के मस्तिष्कीय चुम्बक केन्द्र को ऐसा ढाल दें कि वे आकाश में फैली हुई अभीष्ट देव शक्ति को अपनी ओर खींच सके तो उस साधन को 'देवोपासना' कहेंगे। ऐसी देवोपासना जब सफल हो जाती है तो अभीष्ट सत्परिणामों से उपासक को तृप्त कर देती हैं। पश्चिमीय देशों के भौतिक विज्ञानी मशीन बनाने में संलग्न होकर रुद्र की बरात को प्रसन्न कर रहे हैं, हमारे पूर्वज आत्म साधना, तपश्चर्या, मन्त्र, भोगाभ्यास, यज्ञ आदि क्रियाओं से देव तत्वों की सूक्ष्म आत्मा से अपना सम्बन्ध स्थापित करके उनकी महान् शक्तियों का भरपूर लाभ उठाते थे।

देव शक्तियों का परिचय, उनके गुण धर्म, उनके सान्निध्य से प्राप्त होने वाले लाभ, उनकी आकृति एवं वाहनों का रहस्य, उनकी उपासनाओं की विधियों का अन्तर, साधना मार्ग की कठिनाई, सफलता के रहस्य आदि का बहुत विस्तृत विज्ञान है। इस यज्ञ सम्बन्धी पुस्तक में उन सब बातों का ही वर्णन होने लगे तो इस पुस्तक का कलेवर उसी से भर जायगा। इन सब बातों को कभी पीछे स्वतंत्र रूप से लिखेंगे। इस समय तो हमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि यज्ञ द्वारा 'देव' प्रसन्न होते हैं।

वेद मन्त्रों का गठन ऐसे विलक्षण एवं विज्ञान सम्मत ढंग से हुआ है कि उनका विधि पूर्वक शुद्ध उच्चारण करने से आकाश में एक विशेष प्रकार के कम्पन उत्पन्न होते हैं। विशेष देवोद्देश्य या विशेष कार्य के लिए विशेष मन्त्रों का उच्चारण करने से एक ऐसी ध्वनि लहरी उत्पन्न होती है जो अपनी देह के कुछ देव केन्द्रों को झंकृत करती है और आकशस्थ देव शक्ति पर भी आघात लगाती है। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सभी देव शक्तियां व्याप्त हैं। उसी प्रकार पिण्ड (देह) में भी उनका कोई विशिष्ट स्थान निर्धारित है। मन्त्र को शब्द ब्रह्म कहा गया है, मंत्र की शक्ति को वज्र या ब्रह्मास्त्र भी कहते हैं। इस शक्ति का उद्भव मंत्रोच्चारण से होता है और पिण्ड (देह) गत तथा ब्रह्माण्ड (आकाश) गत वह देव शक्ति आपस में सम्बन्धित स्थापित करती है। परस्पर आलिंगन करती है और दोनों में सान्निध्य एवं सामीप्य स्थापित होता है। यजमान और देव में सम्बन्ध स्थापित कराने की महान् शक्ति मौजूद है। स्थूल रूप से मन्त्रों में ईश्वर की प्रार्थना है तथा कुछ शिक्षाप्रद उपदेश हैं यह बातें कुछ अधिक महत्व की नहीं है। यह कार्य तो गद्य प्रार्थना तथा पद्य कविता आदि से भी हो सकता है। जैसे सूर्य स्थूल रूप से अग्नि पिण्ड और सूक्ष्म रूप से प्रसविता सविता, है, उसी प्रकार मन्त्र स्थूल रूप से 'शिक्षाप्रद प्रार्थना' और स्थूल रूप से सृष्टि की अत्यन्त ही महत्व पूर्ण एवं प्रचण्ड शक्ति शाली देव शक्तियों से जीवन का

सान्निध्य कराने वाले रहस्य पूर्ण माध्यम हैं। मंत्र की शक्ति महान् है। इसलिये तुलसी दास जी ने कहा है—

मन्त्र परम लघुजासु बस विधि हरि हर सुर सर्व ।
महामत्त गजराज कहं वश कर अंकुश खर्व ।।

मन्त्र शब्द ब्रह्म है। शब्द की महान शक्ति से हमारे ऋषि परिचित थे। नवीन विज्ञान से ईश्वर तत्व में शब्द तरंगों के द्रुतगति से भ्रमण करने की गति विधि का पता लगाकर वे तार के तार का आविष्कार किया। शब्द एक सजीव सत्ता है जो हजारों मील प्रति सैकिण्ड की गति से दौड़ती है। ईश्वर तत्व में विद्युत प्रवाह के दौड़ने की गति विधि का पता लगा कर विज्ञान ने 'रैडार यन्त्र' बनाये हैं जो बटन दबाते ही अपने आप आकाश में उड़ जाते हैं और शब्द वेधी बाण की तरह वहीं गिरते हैं। जहां गिरने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाता है। यह रैडार यन्त्र विद्युत प्रवाह की प्रेरणा से स्वच्छन्द आकाश में अपने आप दौड़ते हैं और प्रेरक की इच्छानुसार गति दिशा एवं दूरी के लिए वे आज्ञा कारी दूत की तरह दौड़ते हैं। मन्त्र को आध्यात्मिक 'रैडार' कह सकते हैं।

मन्त्र की रचना शब्द विज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों के आधार पर होती है। किस शब्द के बाद कौन सा शब्द रखने से किस प्रकार का, किस विद्युत शक्ति का प्रवाह उत्पन्न होता है इस रहस्य को अभी पाश्चात्मा 'विज्ञान नहीं जान पाया है, पर हमारे पूर्वज जानते थे। अमुक क्रम से शब्दों को रखने से, मुख के अमुक अमुक अंगों का अमुक क्रम से संचालन होता है और उनके कारण शरीर के अमुक ज्ञान तन्तुओं चक्रों, संस्थानों ग्रंथि गुच्छकों एवं उपत्यिकाओं में अमुक प्रकार हलचल उत्पन्न हो जाती है। उस हल चल की क्रिया प्रतिक्रिया की उथल पुथल से एक विशेष प्रकार का विद्युत प्रवाह आकाश में उत्पन्न होता है, और उस विद्युत प्रवाह को 'रैडार' यन्त्र की तरह अभीष्ट स्थान तक भेजा जा सकता है। वैज्ञानिक लोग अब एक ऐसा रैडार बना रहे हैं जो चन्द्र लोक तक यात्रा कर सके मन्त्र का रैडार इसी प्रकार का है जो लोक लोकान्तरों तक आसानी से पहुंच जाता है। उसकी पहुंच देवों तक देव लोकों तक, देव शक्तियों तक भली प्रकार हो जाती है।

मारण—किसी व्यक्ति को जान से मार डालना, मोहन—किसी की बुद्धि को मोहित कर लेना, उच्चाटन—किसी व्यक्ति का मन जमे हुए काम, स्थान या विचार पर से उचाट देना, वशीकरण हिप्नोटिज्म की भांति किसी व्यक्ति को आज्ञानुवर्ती बन लेना, स्तम्भन—किसी की शक्तियों को जड़ बना देना, आदि निकृष्ट कोटि के चमत्कार तो मन्त्र बल से छोटे छोटे तांत्रिक भी दिखा देते हैं। जिनने योग साधना की है उनके मन्त्र अष्ट सिद्धि और नवनिद्धि के चमत्कारों

से परिपूर्ण हो जाते हैं वे प्रकृति के प्रत्येक भाग पर काबू पा लेते हैं प्रकृति के नियम उनके कार्य में बाधक नहीं होते, वे ऐसे कार्य भी कर सकते हैं जो देने में प्रकृति विरुद्ध एवं असम्भव दिखाई पड़ते हैं। शस्त्र और यन्त्रों का संचालन मन्त्रों द्वारा करने की विद्या तो हमारे देश में किसी समय बहुत साधारण हो गई थी। मंत्र बल से परम पद को प्राप्त करने तथा आत्मा को परमात्मा बना देने तक की सफलता ऋषियों ने प्राप्त की थी। मन्त्र की शक्ति को तुच्छ समझना एवं उसका उपहास करना भूल है। हमें भली प्रकार जान लेना चाहिए कि यह तक अत्यन्त ही प्रभावशाली विज्ञान है। आज वह विद्या अपनी हीन अवस्था में भले ही पहुंच गई हो पर किसी समय वह उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर थी और ऐसी आशा करनी चाहिए कि उसका पुनः उत्कर्ष होगा।

शब्द की शक्ति महान है। फिर वेदों में जिस वैज्ञानिक ढंग से शब्दों का गुन्थन हुआ है उसकी महत्ता तो अनिवर्चनीय ही है। इन शब्दों का मर्म एवं रहस्य कोई ठीक प्रकार समझलें, उनकी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करे अथवा इन शब्दों में छिपी हुई विद्याओं एवं शक्तियों से अवगत हो जाय तो उसके लिए यह मन्त्र कामधेनु के समान सब कुछ दे सकने वाले बन जाते हैं। महर्षि पातंजलि का ऐसा ही अभिमत है—

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः सर्गे लोके कामधुग्भवति ।

—पातंजलि

श्रुति का एक शब्द भी ठीक प्रकार जान कर उसको भली प्रकार काम ले आवें तो वह एक शब्द ही कामधेनु तथा स्वर्गीय सुख का दाता होता है।

देव शक्तियों एवं मन्त्र की महत्ता पर संक्षिप्त प्रकाश यहां इसलिए डाला गया है कि यज्ञ में होने वाले मन्त्रोच्चारण का महत्व समझने में सुगमता हो। यज्ञ में जो सामग्रियां होमी जाती हैं कि हर किसी औषधि या पदार्थ का हवन नहीं हो सकता। केवल कुछ विशेष औषधियों एवं वस्तुओं का ही प्रयोग हवन में होता है। विभिन्न प्रकार के यज्ञों में अलग अलग प्रकार की सामग्री काम में आती है क्योंकि उनके प्रयोजन, मन्त्र विधान एवं देव भिन्न होते हैं।

वनस्पतियों में भी एक सूक्ष्म प्राण होता है तुलसी के पौधे में साधारणतः बुखार दूर करने, आदि के थोड़े से गुण होते हैं उससे अधिक गुण तो अन्य वनस्पतियों में मौजूद हैं पर पूजा में उन्हें न लेकर तुलसी को इसलिए लेते हैं कि उसका सूक्ष्म प्राण सात्विकता शान्ति पवित्रता, एवं आत्मबल की वृद्धि करता है। इसी प्रकार प्याज लहसुन आदि वस्तुएं साधारणतः आरोग्य वर्धक सिद्ध होती है पर उनका सूक्ष्म प्राण ऐसा है जो बुद्धि में तमोगुण, उत्तेजना एवं निष्ठुरता

पैदा करता है, यही कारण है कि कितने ही धार्मिक प्रकृति के पुरुष प्याज लहसुन के स्थूल गुणों से परिचित होते हुए भी उनका सेवन नहीं करते।

हवन सामग्रियों का निर्वाण करते हुए इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाता कि वे उसी प्रकार के सूक्ष्म प्राण वाली हों जैसा कि उस यज्ञ का प्रयोजन है। मन्त्रोच्चारण से उत्पन्न हुई शब्द शक्ति के साथ निर्धारित औषधियों का सूक्ष्म प्राण मिल जाने से उनका सम्मिश्रण विशेष शक्तिशाली बन जाता है। रेडियो स्टेशन से जब कोई गायन भाषण आदि प्रसारित किया जाता है तो उच्चारित हुए शब्दों के साथ एक विशेष विद्युत शक्ति मिश्रित करदी जाती है जिससे कि वह ध्यान प्रवाह अधिक बलवान हो जाय और सुदूरवर्ती प्रान्तों तक आसानी से सुना जा सके। रैडार यंत्र को उड़ाते समय भी उसको प्रेरणा देने वाली एक विद्युत शक्ति आकाश में फेंकी जाती है। रेडियो ब्रॉडकास्ट या रैडार का प्रवाह देने वाली बिजली की भांति मंत्र की ध्वनि तरंगों को भी हवन द्वारा सूक्ष्म बनाया गया औषधियों का सूक्ष्म प्राण-प्रेरणा देता है फल स्वरूप मन्त्र की शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

यज्ञ का अन्य विधि विधान भी ऐसा ही महत्वपूर्ण है। उसकी प्रत्येक क्रिया में अनेक वैज्ञानिक विशेषताएं छिपी हुई हैं। कुण्ड एवं वेदियों की लम्बाई चौड़ाई, यज्ञ पात्र, पंच भू संस्कार, कुश कण्डिका, कलश स्थापना, देव पूजना, जल सिंचन, मार्जन आदि में अनेक क्रियाओं में अनेक रहस्य भरे हुए हैं। इन सब वस्तुओं एवं क्रियाओं के विधि पूर्वक होने से यज्ञ कर्ता का अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो जाता है देव शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करके वह इन आलौकिक शक्तियों को अपने अनुकूल बना लेता है और उनकी सहायता से यथोचित लाभ प्राप्त कर सकता है। प्राचीन काल में इस यज्ञ विद्या का महत्व सर्व विदित था और लोग समय समय पर यज्ञों का आयोजन करते थे। कोई भी त्यौहार, संस्कार तथा खुशी और रंग का अवसर ऐसा न होता था जिस पर यज्ञ न किया जाता हो वलिवैष्व देव यज्ञ तो भारतीयों के घर में नित्य ही होता था।

यज्ञ के लाभ आध्यात्मिक भी है। और भौतिक भी। पद्म पुराण में कहा गया है—

यज्ञोऽयं सर्वकाम धुक्

अर्थात्—यह यज्ञ सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। और भी कुछ प्रमाण देखिए—

यज्ञाद्देत्राः प्रजाश्चैव यज्ञादन्ननियोगिनः ।
सर्वयज्ञात्सदाभावि सर्वंयज्ञ मयंजगत् ।।

कालिका पुराण 31।40

यज्ञ से देव, यज्ञ से प्रजा, यज्ञ से ही समस्त अन्न जीवी प्राणी स्थिर रहते हैं। यज्ञ पर ही सब का भविष्य निर्भर है। यह समस्त जगत् यज्ञ मय है।

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थीलभते धनम् ।
भार्यार्थी शोभनां भार्या कुमारी च शुभम् पतिम् ।
भ्रष्ट राज्यस्तथाराज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ।
यं यं प्रार्थयेते कामं स वै भवति पुष्फलः ।
निष्कामः कुरुते यज्ञ स परं ब्रह्म गच्छति ।।

मत्स्य पुराण 93।117-119

यज्ञ से पुत्रार्थी को पुत्र लाभ, अर्थार्थी को धन लाभ, विवाहार्थी को सुन्दर भार्या, कुमारी को सुन्दर पति, श्री कामना वाले को ऐश्वर्य, प्राप्त होता है निष्काम भाव से यज्ञानुष्ठान करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

न तस्य ग्रह पीड़ा स्यान्नच वन्धुधनक्षयः
ग्रह यज्ञ व्रतं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठिति ।
न तत्र पीड़ा पापानां न रोगो न च वन्धनम् ।
अशेष यज्ञ फलदमशेषाघौघ नाशनम् ।।

—कोटि होम पद्धतिः

यज्ञ करने वाले को ग्रह पीड़ा, बन्धुनास, धन क्षय, पाप, रोग, बन्धन आदि की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती। यज्ञ का फल अनन्त है।

हव्यं कव्यं च विविध निष्पतंहुतमेवच
अदशं मशकादेशा नष्ट व्याल सरीसृपाः

—महा. द्रोण पर्व 59।26

विभिन्न प्रकार की मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए हवन में आहुति डाली जाती है। वर्र, मच्छर, हिंस्र पशु, सांप बिच्छू आदि दुष्ट जीवों का उस प्रदेश में नाश होता है।

देवा सन्तोषिता यज्ञोर्लोकान् संवर्धयन्त्युत ।
उभयोर्लोकयो देवि, भूतिर्यज्ञः प्रदृश्यते ।
तस्याद्यज्ञाद्दिवं याति पूर्वजैः सहमोदते ।
नास्ति यज्ञ समं दानं नास्ति यज्ञ समोविधिः ।
सर्व धर्म समुद्देशो देवि यज्ञ समाहितः ।

महाभारत

यज्ञों से सन्तुष्ट होकर देवता संसार का कल्याण करते हैं। यज्ञ द्वारा लोक परलोक का सुख प्राप्त होता है। यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यज्ञ के समान कोई दान नहीं, यज्ञ के समान कोई विधि विधान नहीं यज्ञ में ही सब धर्मों का उद्देश्य समाया हुआ है।

यज्ञ से शक्तियों का लाभ मिलता है मत्स्य पुराण में कहा गया है—

यज्ञैष्च देवानाप्नोति ।

—मत्स. 14।3।33

अर्थात् यज्ञ से देवों की प्राप्ति होती है।

यज्ञ से देव शक्तियों का बल बढ़ता है, वे अधिक सक्रिय एवं परिपुष्ट होती हैं और मनुष्य जाति को एवं समस्त संसार को उसके द्वारा विशेष लाभ होते हैं। यदि यज्ञ विद्या का लोप हो जाय तो सृष्टि में जो सूक्ष्म आध्यात्मिक धाराएं प्रवाहित हो रही हैं और लोग पशुत्व को प्राप्त होकर एक दूसरे को खाने लगें और आपस में ही कट मर कर नष्ट हो जायं। आज यज्ञ के अभाव में ऐसा ही हो रहा है। परमाणुबमों से पृथ्वी को नष्ट करने की तैयारी हो रही है और जनता के विस्तार का मार्ग सूझ नहीं पड़ता। वह मार्ग यज्ञ ही है। इस पर आज सबसे अधिक जोर देने की आवश्यकता है ताकि सूक्ष्म जगत में असुर शक्तियों की जो तीव्र गति से बढ़ोतरी हो रही है वह रुके और क्षीण देव परिपुष्ट एवं संतुष्ट होकर शान्तिमय वातावरण की सृष्टि करें—

यज्ञोषुदेवास्तुष्यन्ति यज्ञो सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञोन ध्रियते पृथ्वी यज्ञरतारयति प्रजाः ।।

(कलिवा पुराण 32।7।2)

यज्ञों से देवता संतुष्ट होते हैं। यज्ञ ही समस्त जगत में प्रतिष्ठित है। यज्ञ ही पृथ्वी को धारण किये हुए है। यज्ञ से ही जनता का विस्तार होता है।

व्यक्तिगत एवं सामूहिक आपत्तियों को टालने के लिए यज्ञ एक अमोध अस्त्र है। देखिए—

यज्ञेन हि देवा दिवङ्गता यज्ञेनासुरा नपानुदन्तः ।
यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति, यज्ञे सर्व प्रतिष्ठितम् ।
तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति ।

(महा नारायणोपनिषद**)**

यज्ञ से ही देवताओं ने स्वर्ग का अधिकार प्राप्त किया और असुरों को हराया। यज्ञ से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। यज्ञ में सब लाभ हैं। इसलिए विद्वज्जन यज्ञ को "महान" कहते हैं।

संसार में जो कुछ विभूतियां हैं। सुख, शान्ति, ऐश्वर्य एवं वैभव है उनका स्वामी यज्ञ है। यज्ञ की कृपा से उन सबको हम प्राप्त कर सकते हैं:—

अग्नीषोमयोर्हैतावती विभूतिः प्रजातिः ।

शत 16।2।2।3

यह जितनी भी विभूति है सब अग्नि सोम की है।

अग्नि हमारा पुरोहित है वह देवताओं तक हमारी श्रद्धा को तथा पूजा को पहुंचाता है। देव और मनुष्य के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने वाला देव दूत अग्नि ही है। अग्नि के मुख में वस्तुएं डालकर उन्हें हम देवों तक पहुंचाते हैं। वेद में अग्नि को देवदूत और पुरोहित कहा गया है।

"अग्नि दूतं वृणीमहे"

हे अग्नि देव हम आपको दूत नियुक्त करते हैं।

"अग्नेमीलं पुरोहितं........"

हे अग्नि, आप हमारे पुरोहित हैं।

अग्निदेव निस्सन्देह पूर्ण विश्वस्त और पूर्ण ईमानदार पुरोहित एवं दूत है वह अपने पास कुछ भी नहीं रखते। हजारों रुपयों की सामग्री हवन कर दीजिए कुण्ड में उनने कुछ भी बचा कर न रखा होगा। केवल उसका भस्मावशेष साक्षी रूप में पड़ा होगा कि अग्नि देव बुझ गये, चले गये, पर अपने लिए वे भस्म तक नहीं ले गये। ऐसे ही पुरोहितों और दूतों को देव कहते हैं। आज मनुष्य जाति में ऐसों की बड़ी कमी है। यद्यपि पुरोहित बनने के लोभ में अनेक लालची ब्राह्मण यजमानों की खुशामद करते और आपस में सिर फोड़ते सर्वत्र दिखाई देते हैं।

अग्नि को बढ़ाने से—यज्ञानुष्ठान करने से हमारी स्वयं की ही उन्नति होती है। यज्ञ भगवान हमें सन्तान, पशु, ज्ञान अन्न आदि से सब प्रकार सुखी बनाते हैं:—

ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेन इध्मस्व वर्धस्व च इद्धय वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन अन्नाद्येन समेधय स्वाहा ।

(अश्वलायन गृह्या सूत्र 1।10।12)

हे अग्नि तुम प्रदीप्त होओ और हमें प्रदीप्त करो। तुम बढ़ो और हमें बढ़ाओ। सन्तान, पशु, ज्ञान और अन्न से हमें सुखी करो।

यज्ञ का उद्देश्य देवों का आवाहन है। अग्नि में जो सामग्री होमी जाती है उसे आहुति कहते हैं। आहुति का अर्थ है—बुलाना, देवों को बुलाने के लिए ही आहुति रूपी पुकार की जाती है:—

हयति देवाननया सा आहुतिः । जुहोति प्रक्षिपति हविरनया इति वा । आहूतयो नामैता यदाहुतयः एताभि र्देवान् यजमानो हयति तदाहूतीनामाऽहूतित्वम् ।

—ऐतरेय ब्राह्मण 1।1।2

जिससे देवताओं को बुलाया जाय उसे आहुति कहते हैं। तथा जिससे हवि को अग्नि में डाला जाय उसे 'आहुति' कहते हैं। इसके द्वारा यजमान देवताओं को आहुत करता है **(बुलाता है)** इसलिए वह आहुति कहलाती है।

यह आहुति पूर्ण श्रद्धा भावना एवं देव शक्तियों का ध्यान करते हुए देनी चाहिए। बेगार भुगतने की तरह सामग्री झोंकना और चित्त कहीं का कहीं रखना यज्ञ के महत्व को नष्ट करता है:—

यादृग्वैरेतः सिंचतेतादृग्जायते तद्यदेतया सवितार रेतोभूतँ सिंचति सावित्राणि तस्माद्वा एता माहुर्ति जुहोति ।

शतपथ 6।3।1।7

गर्भाधान के समय जैसा सत्व प्रधान वीर्य होगा वैसी ही सत्व प्रधान सन्तान होगी। इसी प्रकार अग्नि में जैसी श्रद्धा के साथ आहुति दी जायगी वैसे ही सत्व प्रधान देवताओं से सम्बन्ध होगा।

यज्ञ के अनेक महत्वों को ध्यान में रखते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने हवन यज्ञ करने के लिए स्वयं श्री मुख से अनुरोध किया है—

हूयन्तामग्नयः सम्यश ब्राह्मणेब्रह्मवादिभिः ।
अन्नंबहु विधतेभ्योदेयं वो धेनु दक्षिणाः ।

भागवत 10।15

अर्थात्—वेद जानने वाले ब्राह्मणों से अग्नियों में घृत आदि का हवन कराओ, ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के रसयुक्त भोजन तथा धेनु सहित दक्षिणा दो।

शृणु तत्र यथा पापमपकृष्येत भारत।
तपोभिः क्रतुभिश्चैव दानेन च युधिष्ठिर॥
यज्ञेन तपसा चैव दानेन च नराधिप।
पूयन्ते नर शार्दूल नरा दुष्कृत कारिणः॥
असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मख क्रियाम्।
प्रयतन्ते महात्मान स्तस्माद्यज्ञाः परायणम्॥
यज्ञैरेव महात्मनो बभूवुरधिकाः सुराः।

—महाभारत

हे युधिष्ठिर, तपों और यज्ञों से पाप क्षीण होता है, हे राजन्! दुष्कर्म करने वाले नर भी यज्ञ, तप, और दान करने से श्रेष्ठ पुरुष के समान पूजित होते हैं। असुर और सुर सभी पुण्य के हेतु यज्ञ क्रिया का प्रयत्न करते हैं। इसलिए सत्पुरुषों को यज्ञ करना चाहिए। यज्ञों से ही बहुत से सत्पुरुष देवता बन जाते हैं।

देव शक्तियों का संतुलन

वेद ने यज्ञ के तीन क्षेत्र हैं (1) ब्रह्माण्ड (2) देह (3) संसार। (1) निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में अनेकों ज्ञात एवं अज्ञात प्रक्रियाएं चलती रहती है, उनके पीछे अनेक अदृश्य शक्तियां काम करती हैं, ग्रह नक्षत्रों का प्रभाव, ऋतुओं का परिवर्तन, इन्द्र, वरुण, रुद्र, मरुत आदि देव शक्तियों की गतिविधि, मानव जाति के भावों एवं कर्मों की प्रतिक्रिया आदि के कारण अखिल ब्रह्माण्ड में जो सूक्ष्म हलचलें होती रहती हैं उनको आकाशी यज्ञ माना गया है। (2) पंच तत्वों से देह का संचालन, प्राण, अपान, व्यान आदि वायु, वात पित्त, कफ, मनबुद्धि चित्त अहंकार, एवं पंच कोषों की गतिविधि को देह गत यज्ञ कहते हैं। इन दोनों यज्ञों के सुसंचालित रहने से संसार की सुख शान्ति स्थिर रहती है। दोनों में से जो भी यज्ञ बिगड़ जाता है उसी से अनेक प्रकार की विकृतियां एवं आपत्तियां पैदा हो जाती हैं। ब्रह्माण्ड यज्ञ में गड़बड़ी हो तो भूकम्प, दुर्भिक्ष, तूफान, अति वृष्टि, अनावृष्टि, रोग, महामारी आदि सामूहिक विद्वेष, विक्षोभ, युद्ध, भय, शोक सामने आते हैं। देह के यज्ञ में गड़बड़ी हो तो अस्वस्थता, दुर्बलता, अल्पायु, निराशा, चिन्ता दुर्भाव, मतिभ्रम, आदि की उत्पत्ति होती है।

(3) तीसरा यज्ञ 'हवन' है। इसके द्वारा उपरोक्त दोनों यज्ञों की विकृति एवं क्षति की पूर्ति की जाती है। जब वायु मण्डल में शीत की अधिकता होती है तो आग जला कर कमरे को गरम कर लेते हैं। जब शरीर में कोई विटामिन आदि पदार्थ कम पड़ जाता है तो उसे औषधियों या इंजेक्शनों द्वारा शरीर में पहुंचाते हैं। इसी प्रकार हवन द्वारा हव्य पदार्थों एवं शक्तिशाली वेदमंत्रों द्वारा पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में हो रहे यज्ञों का सन्तुलन ठीक करके संसार में सुख शान्ति की स्थापना की जाती है।

इन तीनों प्रकार के यज्ञों का वर्णन शास्त्रों में जगह जगह पर आता है। ब्रह्माण्ड गत देव शक्तियां लोक लोकान्तरों के जीवों की शान्ति सुरक्षा तथा उन्नति के लिए सदैव संलग्न रहती है। अपने आपको उनका निरन्तर परमार्थ में जुटाये रहना यह यज्ञ ही तो है।

अखिल ब्रह्माण्ड में देव शक्तियों का जो कार्य-यज्ञ-चल रहा है उसका वर्णन कई स्थानों पर आता है। गोपथ ब्राह्मण 1।13 में कहा गया है—

तमाहरत् येना यजत तस्याग्निर्होताऽऽसीत् वायुरध्वर्युः । सूर्य उद्गाता चन्द्रमा ब्रह्मा पर्जन्य सदस्यः ।

अर्थात्—अग्नि होता, वायु अध्वर्यु, सूर्य उद्गाता, चन्द्रमा ब्रह्मा और मेघ सदस्य हैं। यजुर्वेद में कहा गया है—

सप्तस्यासन परिधय स्त्रिसप्त समिधः कृताः देवा यज्ञ मतन्वानाऽअवघ्नन्पुरुषं पशुम् । यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत, वसन्तो स्यासोदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।

अर्थात्—यज्ञ की वेदी सात परिधियों वाली है। उसमें 21 समिधाएं हैं। ऐसा यज्ञ देवताओं द्वारा फैलाया हुआ है, पशु रूप पुरुष इस यज्ञ से बंधा हुआ है। पुरुष की हवि प्राप्त करके देवता इस यज्ञ को विस्तृत करते हैं।

अथर्ववेद 11।10।29 में देह को यज्ञ बताया गया है।

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ।।

अर्थात्—अस्थियों को समिधा, वीर्य को घी, मानकर आठ प्रकार के रसों को लेकर सब देवताओं ने पुरुष की देह में प्रवेश किया।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—

पुरुषो वै यज्ञः पुरुषस्तेन यज्ञो यदेनं पुरुषस्तनुते ।।

अर्थात्—यह पुरुष देह ही यज्ञ है क्योंकि इसी से यज्ञ किया जाता है।

जो देव शक्तियां आकाश में सृष्टि संचालन करती हैं वे ही मनुष्य शरीर में प्रवेश किये हुए हैं, दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। सर्दी, गर्मी, प्रकाश, वायु, अन्न, जल आदि ब्रह्माण्ड से पिण्ड को मिलते हैं। इसी प्रकार इन्द्रियां देव शक्तियों के आधीन हैं। प्रकाश न हो तो नेत्र क्या करें? वायु न हो तो नेत्र बेकार हैं, शब्द न हो तो कान क्या सुनें? पिण्ड और ब्रह्माण्ड गत दोनों ही क्रिया कलाप यज्ञ-आपस में सम्बन्धित हैं। एक यज्ञ से दूसरा यज्ञ होता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—"यज्ञाद्यज्ञं निमिमा इतिं" अर्थात् मैं यज्ञ से ही यज्ञ को बनाता हूं। ऐसा ही वेद वचन भी है। "यज्ञो यज्ञेन कल्प ताम् । यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवाः ।" अर्थात् यज्ञ द्वारा ही यज्ञ बने हैं। देवता यज्ञ से ही यज्ञ कर रहे हैं। उस यज्ञ का घी-वसन्त ऋतु, ईंधन-ग्रीष्म ऋतु और हवि शरद ऋतु है।

इसी प्रकार देह में जो देव शक्तियां काम कर रही हैं उनके परमार्थ यज्ञ के कारण ही हम जीवन धारण किये हुए हैं। वायु द्वारा श्वांस प्रश्वास, अग्नि द्वारा पाचन, वरुण द्वारा रस रक्त का प्रवाह, पृथ्वी से हड्डियां, सूर्य द्वारा नेत्र, पूषा द्वारा श्रवण शक्ति, आदि का संचालन होता है। इनके अतिरिक्त देह के विभिन्न भागों में विभिन्न देवताओं के स्थान हैं। मस्तक का ब्रह्मरंध्र, सहस्रदल कमल, कुण्डलिनी शक्ति का कूर्म, आज्ञाचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत

चक्र, सूर्यचक्र, इड़ा पिंगला सुषुम्ना आदि में देवों का निवास है। मन बुद्धि चित्त अहंकार एवं अनेक मानसिक संस्थानों से भी अदृश्य लोकों की देव शक्तियां सम्बन्धित हैं।

सर्वाह्यास्मिन्देवता शरीरेऽधि समाहिताः ।

प्राणाग्नि उपनिषद 4

इस शरीर में ही सब देवता समाये हुए हैं।

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वाह्मिन्देवता गावो गोष्ट इवासते ।।

अथर्व 11।8।32

इसलिए इस पुरुष को जानने वाला ज्ञानी 'यह ब्रह्म है' ऐसा कहता है। क्योंकि जैसे गौशाला में गौएं रहती हैं वैसे ही इसमें सब देवता रहते हैं।

इन पिण्ड और ब्रह्माण्ड के मध्य में निरन्तर होते रहने वाले यज्ञों में परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक इन दोनों का सम्बन्ध सूत्र ठीक रहता है तब तक शरीर और मन पूर्ण स्वस्थ रहता है जब यह सम्बन्ध बिगड़ने लगता है तो उनमें विकृति पैदा हो जाती है।

ब्रह्माण्ड गत देव शक्तियों की स्थिति में थोड़ा भी हेर फेर हो जाने पर लोक लोकांतरों में नाना प्रकार के उपद्रव आरम्भ हो जाते हैं। आकस्मिक विपत्तियां एवं बाधाएं खड़ी होती हैं।

देह गत एवं आकाश गत देवताओं की अप्रसन्नता अव्यवस्था एवं असंतुलन को ठीक करने की चिकित्सा 'यज्ञ' है। वेदमंत्रों के महत्वपूर्ण उच्चारण, विशेष वृक्षों की समिधा, विशेष प्रकार के हव्य एवं विशेष विधि विधानों का सामूहिक आयोजन इन देवों को सन्तुलित प्रसन्न एवं परिपुष्ट बनाकर सभी प्रकार की स्थिरता एवं सुखदायक अनुकूलता उत्पन्न करता है।

----*----**

यज्ञ द्वारा आरोग्य लाभ

****

यज्ञ में आरोग्य वर्धक एवं रोग निवारक अद्‌भुत गुण हैं। जहां यज्ञ होते हैं वहां सामूहिक रोगों की निश्चित रूप से कमी होती है। जल वायु का परिमार्जन एवं संशोधन होने से उनके रोग कारण दोष हट जाते हैं और आरोग्य वर्धक गुण बढ़ते हैं फल स्वरूप अनेक रोगों से जनता अपने आप मुक्त हो जाती है। यज्ञ करना एक बड़ा अस्पताल खोलने के समान है जिससे अगणित रोग ग्रस्तों तथा भविष्य में बीमार पड़ने वाले लोगों का इलाज उनके घर बैठे ही हो जाता है। चिकित्सा पर जो धन, समय, श्रम, चिन्ता, काम में हानि आदि की कठिनाई होती है उससे अनेक रोग बच जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ करना अस्पताल खोलने से भी अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

यज्ञ के आरोग्य वर्धक और रोग निवारक गुणों का वर्णन करने वाले अनेकों मन्त्र वेदों में भरे पड़े हैं उनमें से कुछ यहां दिये जाते हैं—

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धाना रतन्वं पुषेम ।

अथर्व 5।3।1

हे अग्नि, हम आपको यज्ञ में प्रदीप्त करते हैं, आप हमारे शरीर को पुष्ट और तेज को प्रदीप्त करो।

यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीति एव। तमाहरामि निर्ऋतेरूपस्था दस्यार्षमेनं शत शारदाय ।

अथर्व 3।11।2

यदि रोगी अपनी जीवन शक्ति को खो भी चुका हो, निराशाजनक स्थिति को पहुंच गया हो, यदि मरण काल भी समीप आ पहुंचा हो तो भी उसको मैं मृत्यु के चंगुल से बचा लेता हूं और सौ वर्ष जीने के लिए पुनः बलवान कर देता हूं।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् । इन्द्रौ यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्थ दुरितस्य पारम् ।

—अथर्व 3।11।3

हजारों शक्ति से युक्त, सौ वर्ष की आयु देने वाले इस हवन द्वारा रोगी को मौत के पंजे से बचाता हूं, प्रभु इसे समस्त पापों तथा रोगों से मुक्त करें।

कोई पदार्थ अपने स्थूल रूप में जितना शक्तिशाली होता है उसकी अपेक्षा वह सूक्ष्म रूप में अधिक प्रभावशाली एवं विस्तृत होता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लिखा है कि—"बादाम साबुत खाने की अपेक्षा पीसकर खाने में अधिक गुणकारी है। पीसने की अपेक्षा घिसकर खाना अधिक लाभदायक है।" कारण स्पष्ट है जो वस्तु जितनी बारीक होती जाती है—सूक्ष्म बनती जाती है उतने ही उसके गुण बढ़ते जाते हैं। रोटी के ग्रास यों ही अधकुचले निगल लिये जायं तो वह भोजन उतना लाभदायक न होगा जितना कि खूब चबा चबाकर बारीक करके खाया हुआ भोजन। सोने या चांदी का टुकड़ा किसी को खिलाया जाय तो उससे किसी लाभ की आशा नहीं किन्तु यदि उसी सोने या चांदी को सूक्ष्म करके भस्म या वर्क बनाकर खिलाये जाते हैं तो उसका रोग निवारक एवं बल वर्धक प्रभाव पड़ता है। औषधि विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि किसी औषधि को जितना ही बारीक किया जाता है अधिक घोटा जाता है उतनी ही वह अधिक गुणकारी बनती जाती है कारण यही है कि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म का गुण विशेष होता है। यज्ञ में हवि सामग्री को अग्नि द्वारा स्थूल से सूक्ष्म बनाया जाता है, फलस्वरूप उसकी शक्ति एवं उपयोगिता भी बहुत बढ़ जाती हैं।

अग्नि में जलाने से कोई वस्तु नष्ट हो जाती है ऐसा सोचना ठीक नहीं। विज्ञान बताता है कि कोई भी पदार्थ कभी नष्ट नहीं हो सकता केवल उसका रूपांतर होता रहता है। जो वस्तु अभी मूर्त रूप में दिखाई दे रही है वह यदि अग्नि से, जल से, तोड़ फोड़ देने से या किसी अन्य प्रकार से नष्ट करदी जाय तो यह नाश केवल उसके मूर्त रूप का ही होता है। उसके समस्त परमाणु ज्यों के त्यों अक्षुण्य रहते हैं उनका रूप भले ही बदल जाय पर उनका अस्तित्व बराबर बना रहता है। हवन में जलाई हुई सामग्री बर्बाद नहीं हो जाती केवल उसका रूप बदलता है। पहले वह मूर्त बनती है और विस्तृत क्षेत्र में फैल कर अपना व्यापक असर दिखाती है।

मिर्च को यदि साधारण रीति से सूंघा जाय तो उसमें कोई विशेष बात न मालूम पड़ेगी। यदि उसे कूटा जाय तो कूटते समय जो उसके सूक्ष्म परमाणु इधर उधर उड़ेंगे उनसे पास बैठे हुए लोगों को खांसी आवेगी। यदि उसी मिर्च को जलाया जाय जो जितनी दूर तक वायु में उसके परमाणु फैलेंगे उतनी दूर तक के लोग खांसने लगेंगे। मिर्च अपने मूर्त रूप में जितनी शक्तिशाली थी उसकी अपेक्षा कूटने पर और उसकी अपेक्षा जलने पर अधिक परिमाण में और अधिक क्षेत्र में अपना प्रभाव दिखा सकी। "सूक्ष्मता में अधिक शक्ति" के इस सिद्धान्त के आधार पर यज्ञ की उपयोगिता बहुत कुछ समझी जा सकती है।

रोगों के कीटाणु बहुत ही बारीक होते हैं। उन्हें खुली आंखों से तो देखना भी असम्भव है। बढ़िया सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों की सहायता से ही वे देखे जाते हैं। साधारणतया एक इंच स्थान में तीस हजार कीटाणु रहते हैं। कभी कुछ कम होते हैं तो कभी-कभी वे और भी अधिक छोटे होने के कारण एक इंच में और भी अधिक संख्या में रह सकते हैं। औषधियों के कण स्वभावतः इतने बारीक नहीं हो सकते इसलिए वे सभी कीटाणुओं तक नहीं पहुंच सकते किन्तु वही औषधि यदि अग्नि में जलाई जाती है तो वह वायु रूप होकर अधिक सूक्ष्म बन जाती है और उन बारीक से बारीक रोग कीटाणुओं के पास आसानी से पहुंच कर उन्हें नष्ट करने में समर्थ हो सकती है। मोटे रूप में खिलाने पर औषधि द्रव्य जितना गुण करते हैं। उसकी अपेक्षा वायु रूप होने पर उनका गुण निश्चय ही अधिक होगा क्योंकि वे श्वास के साथ, रोम कूपों के द्वारा शरीर के प्रत्येक स्थान तक स्वल्प काल में प्रचुर परिमाण में पहुंच सकती हैं। औषधि को खाने पर वह पेट में पचती है तब रक्त में मिलने पर अपना प्रभाव उस रोगी अंग तक पहुंचाती है पर हवन द्वारा उस औषधि को रोगी अंग के किसी भाग तक आसानी से पहुंचाया जा सकता है। जो कार्य इंजेक्शन की सुइयों से भी कठिन होता है वह वायु भूत इंजेक्शन से आसानी से हो सकता है। हवन द्वारा औषधियों के प्रभाव को शरीर के गहरे से गहरे स्थान में सुगमता पूर्वक पहुंचाया जा सकता है।

जर्मनी के प्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री डॉक्टर हनीमैन होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति के आविष्कर्ता थे। उनका कथन है कि जो रोगी अधिक निर्बल हैं, औषधि को नहीं पचा सकते उन्हें खिलाने की अपेक्षा औषधि सुंघाना अधिक उपयुक्त है। उनने सिद्ध किया है कि केवल आमाशय ही शरीर में किसी वस्तु को पहुंचाने का माध्यम नहीं है। नासिका आदि द्वारा भी उस प्रभाव को भीतर पहुंचाया जा सकता है। उनने अपनी पुस्तक "आर्गेनन आफ दी मेडीशन्स" पुस्तक की 190 वीं धारा में इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्टीकरण किया है और बताया है कि श्वास द्वारा शरीर के भीतर औषधि का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पहुंचता है। होम्योपैथी में औषधियों को तीव्र गन्धों से बचाने का आदेश है ताकि उनका प्रभाव कम न हो जाय उसी प्रकार होम्योपैथी औषधि सेवन करने वाले रोगी को भी कहा जाता है कि वे तमाखू, हींग, कपूर आदि तीव्र गन्धों को उपयोग न करें जिससे उनका प्रभाव शरीर में पहुंचने पर औषधि का कार्य बिगड़ने न पावे।

होम्योपैथी के विद्वान आविष्कर्ता ने औषधियों के वायुभूत गुण का जो पता लगाया है उसे हमारे ऋषियों ने लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व जाना था और औषधियों को वायु भूत करके रोगियों के शरीर में पहुंचाने की प्रणाली अपनाई थी आयुर्वेद में नस्य का विस्तृत विधान है। अनेक रोगों पर अनेक प्रकार की औषधियों के नस्य लिखे हुए हैं उन औषधियों के धुआं लगने से रोगों पर आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ता है। यज्ञ भी उसी विधान शृंखला का एक भाग है।

सामूहिक रूप से जनता के रोग निवारण एवं आरोग्य वृद्धि में इससे बड़ी सहायता मिलती है। विशेष रोगों के रोगियों को विशेष प्रकार की औषधियों का हवन करने से उनके रोग निवारण में विशेष सहायता पहुंचती है।

ऐलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान में भी औषधियों को वायुभूत करके उपयोग में लाने का विधान है क्रियोजूट, यूल्कप्टस आइल आदि की सुंघनियां जुकाम रोगों के लिए बिकती हैं 'कैमीकल प्रापर्टीज' की राय है कि जायफल, जावित्री, बड़ी इलाइची, चन्दन आदि को आग में जलाने से उनके उपयोगी भाग नष्ट नहीं होते वरन् और अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं। चेचक के टीका का आविष्कार करने वाले डॉक्टर हैफकिन ने 'घी' जलाने से रोग कृमि मर जाने की सचाई को स्वीकार किया है। कर्नन किंग ने घी में केशर मिलाकर जलाने को रोग निवारक माना है। हवन की अनेक सामग्रियों में तेल रहता है, अग्नि में सबसे पहले वही जलता है और उसके परमाणु एक हजार से लेकर दस करोड़ वां भाग प्रति सेन्टीमीटर व्यास में देखे गये हैं। यह हलका पन इतना ऊंचा है कि थोड़ी ही देर में व्यापक क्षेत्र में फैल जाना उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।

रोगों की चिकित्सा में रोग नाशक औषधियां दी जाती हैं वे रोग कीटाणुओं को मारती हैं पर साथ ही उनका मारक गुण स्वस्थ जीवन कणों को भी मारता है जिससे रोग नष्ट होने के साथ अपनी जीवनी शक्ति का भण्डार भी बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। यह दोष यज्ञ द्वारा रोग निवारण की प्रक्रिया में नहीं है। उसमें जिन औषधियों की आहुति दी जाती है वे मारक गुणवाली नहीं वरन् पोषक गुण वाली होती है फलस्वरूप रोगी के स्वस्थ कीटाणु उनसे बलवान होते हैं और अपने बल पराक्रम से रोग कृमियों पर विजय प्राप्त करते हैं। इससे रोगी बिना किसी प्रकार की हानि उठाये बीमारियों से पीछा छुड़ा सकता है। इतना ही नहीं जो रोगी पौष्टिक आहार आमाशय द्वारा नहीं पचा सकते वे हवन द्वारा इस आहार को वायु द्वारा ग्रहण करके शरीर को लाभ पहुंचा सकते हैं। बीमार रोगी को घी और मेवा आदि खिलायें तो उसे वह पचा न सकेगा और वह वस्तुएं उसे हानि पहुंचावेंगी परन्तु यदि इन्हीं पदार्थों को रोगी के निकट हवन किया जाय तो वह उनके सूक्ष्म गुणों को ग्रहण कर लेगा।

कभी कभी हैजा, चेचक प्लेग आदि का प्रकोप होने की सम्भावना होती है तो डॉक्टर लोग उसकी पूर्व सुरक्षा के रूप में उस रोग के टीके **(**इंजेक्शन**)** लगाते है ताकि भविष्य में उस व्यक्ति पर उस रोग के आक्रमण की सम्भावना न रहे। उनका कहना है कि इस टीके की औषधि से रक्त में ऐसा प्रभाव उत्पन्न हो जाता है कि उस पर रोग का आक्रमण सफल नहीं हो सकता डाक्टरों की यह खर्चीली एवं आडम्बर पूर्ण प्रक्रिया यज्ञ द्वारा अधिक अच्छी तरह हो सकती है।

हवन करने से उसमें जलाई हुई औषधियां सूक्ष्म होकर निकटवर्ती लोगों के शरीर में प्रवेश करती हैं और उनके रक्त में ऐसा प्रभाव छोड़ देती है कि फिर वहां रोगों का आक्रमण नहीं हो सकता और पूर्व सुरक्षा की उचित व्यवस्था अपने आप हो जाती है।

आजकल बड़े बड़े मेलों में हैजा आदि रोगों के टीका लगाने में बहुत धन खर्च होता है और टीका लगाने वालों की सुई चुभने का तथा उसकी प्रतिक्रिया में ज्वर आदि का कष्ट सहना पड़ता है फिर भी हैजा आदि की समुचित रोक नहीं होती। प्राचीन काल में ऐसे पर्वों पर बड़े बड़े यज्ञ होते थे, जिनके कारण अधिक जन समूह इकट्ठा होने पर रोग आदि बढ़ने का भय तो दूर उन उल्टे आगन्तुकों को आरोग्य लाभ होता था। आज तो समय की गति ही दूसरी है। लोग अपने महत्व पूर्ण विज्ञान को भूलते जाते हैं उसे घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और दूसरों के अन्धानुकरण को अपनी बुद्धिमत्ता और प्रगतिशीलता मानते हैं।

चतुर वैद्य जानते हैं कि कुछ रोगों के रोगियों के लिए अथवा कुछ लंघन करने वालों के लिए घी लाभदायक नहीं। फल स्वरूप वे घर में घी की कढ़ाई चढ़ाने का निषेध कर देते हैं। क्योंकि यदि घर में पूड़ी आदि तली जायेंगी तो उनका घृत वायु द्वारा उड़कर रोगी के पेट में पहुंचेगा और लंघन आदि में विघ्न पड़ेगा। बड़ी बूढ़ी स्त्रियां अब भी इस सम्बन्ध में कुछ विचार रखती हैं वे कुछ रोगों के घर में होने पर घी तेल की कढ़ाई नहीं चढ़ाती। यह मान्यताएं उसी सिद्धान्त पर आधारित हैं जिनके अनुसार यज्ञ द्वारा हविष्य को वायु भूत करके रोगी तक पहुंचाने के विधान की सिद्धि होती है।

हवन की उष्ण वायु से परिमार्जित वस्तुओं की स्वच्छता एवं स्थिरता बढ़ जाती है। यह अनुभव में आई हुई बातें हैं कि यज्ञ धूम्र से सुवासित किये हुए ऊनी या रेशमी कपड़ों में कीड़े नहीं लगते। यदि बोतल में हवन की वायु भरकर उसमें जल या कोई द्रव पदार्थ रखें तो वह बहुत समय तक नहीं सड़ता। हवन के धुएं से सुवासित जल से धोये जाने पर सड़े गले घाव और फोड़े अच्छे हो जाते हैं। वायु परिवर्तनार्थ कतिपय रोगी पहाड़ों पर जाते हैं। डॉक्टर बताते हैं कि अमुक पहाड़ की वायु अधिक प्राणप्रद हैं क्योंकि उसमें ऑक्सीजन एवं ओजोन तत्व अधिक रहता है। जो लोग पहाड़ पर नहीं जा सकते वे हवन द्वारा ही शुद्ध वायु का वह लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यह कहना ठीक नहीं कि—आग जलाने से कार्बनडाई ऑक्साइड निकलती है और वह फेफड़ों को हानिकर होती है, इस मोटी बात को आज के साइंटिस्ट ही जानते हैं और हमारे ऋषि मुनि इससे परिचित न थे सो बात नहीं है। उन्होंने प्रत्येक विज्ञान का—वायु विज्ञान का भी विशेष अन्वेषण किया था और यज्ञ द्वारा अनेकों सूक्ष्म लाभ उत्पन्न करने के साथ इस

फेफड़ों को हानि पहुंचाने वाली बात का भी पूरा ध्यान रखा था। समिधाएं केवल उन्हीं वृक्षों की ली हैं जिनकी गैस फेफड़ों के लिए हानिकर नहीं होती। हवन सामग्रियां भी ऐसी हैं जो इस हानिकर वायु को बहुत कम मात्रा में पैदा करती हैं और लाभ दायक तत्वों की प्रचुरता के कारण उस हानि कारक दोष को दवा देती हैं।

यज्ञ के आस पास जल सिंचन के लिए नाली होती है जिसमें भरा हुआ पानी उस कार्बन को खींचता है। इसी प्रकार यज्ञ के निकट जो मिट्टी के कलश स्थापित किये जाते हैं उनमें भरा हुआ जल भी इस कार्बन को खींचता है। मिट्टी के कलश की एक विशेष उपयोगिता यह है कि उसके भीतर भरा हुआ जल घड़े के बाहरी भाग को भी आद्र बना देता है और वह नमी घड़े की सारी दीवार को चारों ओर कार्बन गैस को खींचने एवं सोखने वाली बना देती है। इस प्रकार हवन के समय जो थोड़ी कार्बन गैस निकलती भी है वह जल की नाली एवं जल भरे हुए मिट्टी के कलशों में खिंच आती है। उसका हानिकारक प्रभाव मनुष्य को हानि पहुंचाने के लिए शेष नहीं रहता।

रोगनाश में हवन कितना सहायक एवं उपयोगी होता है इस सम्बन्ध में प्रो. टिलवर्ट, डा. टाटलिट, डा. हेफकिन की खोजें बहुत उत्साह वर्धक है। उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टि कोण से अनेक वस्तुओं के धुएं बहुत ही उपयोगी सिद्ध किये हैं।

रसायन शास्त्र के फ्रान्सीसी विज्ञान वेत्ता डॉक्टर त्रिले ने 'अग्नि और धुएं का वायु पर क्या प्रभाव पड़ता है' इस सम्बन्ध में गहरी शोध की है। उन्होंने विभिन्न पदार्थों के जलाने से उत्पन्न धूम्रों के गुण दोषों की जांच करके पता लगाया है कि कतिमय वस्तुएं ऐसी हैं जो अपने साधारण रूप की अपेक्षा जलने पर कहीं अधिक लाभदायक बन जाती हैं। उनका कहना है कि शकर जलाने से 'कार्मिक आल्डीहाइड' नामक गैस बनती है जो वायु में छाये हुए हैजा, महामारी, क्षय, चेचक आदि के रोग कीटाणुओं को नष्ट करती है। गन्ने की साधारण खांड की अपेक्षा मुनक्का, छुहारा, किशमिश आदि मधुर पदार्थों से जो गैस उत्पन्न होती है वह कृमिनाश के अतिरिक्त पोषण का भी विशेष गुण है। फार्मेलिन नामक एक पदार्थ डाक्टरों की दुकान पर बिकता है यह मकानों की शुद्धि एवं कीटाणु नाश के लिए काम में लाया जाता है। यह फार्मेलिन लकड़ियों को जलाकर बनाई हुई गैस का द्रव रूप ही है। साधारण लकड़ियों की गैस बनी फार्मेलिन जब इतनी उपयोगी है तो हवन में प्रयुक्त होने वाली विशेष गुण वाले वृक्षों की विशेष समिधाओं का यज्ञ धूम्र कितना उपयोगी होता होगा इसका अनुमान लगाना कुछ कठिन नहीं है।

यज्ञ से राजयक्ष्मा जैसे असाध्य एवं कष्ट साध्य समझे जाने वाले रोग भी दूर हो जाते हैं। जिन रोगों में साधारण औषधियां काम नहीं करती उनमें विधि पूर्वक किया हुआ यज्ञ विशेष उपयोगी सिद्ध होता है। चरक ऋषि का भी ऐसा ही मत है—

प्रयुक्तया यथा चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरोजितः
तां वेद विहितामिष्टि मारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।।

चरक चिकित्सा खण्ड 8।122

प्राचीन काल में जिस यज्ञ के प्रयोग से राज यक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था, रोग मुक्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य को चाहिए कि उसी वेद विहित यज्ञ का आश्रय लें।

अथर्व वेद में कहा गया है कि यज्ञ द्वारा इन्द्र और सूर्य की संजीवनी शक्ति रोगी को प्राप्त होती है और वह रोग मुक्त होता है। यथाः—

मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात चक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिर्जग्राह यद्येत देनं तस्या इन्द्राग्नि प्रमुमुक्तमेनम् ।

अथर्त 3।11।1

हे व्याधि ग्रस्त रोगी, तुझको सुख के साथ चिरकाल तक जीने के लिए गुप्त यक्ष्मा और प्रकट तपैदिक रोग से हवन द्वारा मुक्त करता हूं। इस रोगी को, रोग से इन्द्र सूर्य एवं यज्ञ छुड़ा देंगे।

प्राचीन काल में आरोग्य वृद्धि और रोग निवारण के लिए यज्ञ होते थे। उनको भैषज्य यज्ञ कहते थे। उनका ब्रह्मा कोई आरोग्य शास्त्र का मर्मज्ञ विद्वान होता था जो सूक्ष्म वैज्ञानिक परीक्षा द्वारा यह जान लेता था कि इस समय वायु मण्डल में क्या विकार बढ़ जाने से कौन रोग फैला हुआ है और उसके निवारण के लिए किन औषधियों का हवन करना चाहिए। व्यक्तिगत रोगों के लिए भी ऐसे हवनों का आयोजन किया जाता था। रोगी के शरीर में कौन सी व्याधि बढ़ी हुई है, कौन से तत्व घट बढ़ गये हैं उनकी पूर्ति करके एवं शरीर गत धातुओं का संतुलन ठीक करने के लिए किन औषधियों की आवश्यकता है वह ऐसा निर्णय करता था और उन औषधियों की सामग्री बनाकर, उसी प्रकृति के वेद मन्त्रों से आहुतियां दिलाकर, हवन कराया जाता था। वैसा ही पुरोडास एवं यज्ञावशिष्ठ रोगी के लिए तैयार किया जाता था, रोगी यज्ञ धूम्र के वातावरण में रहता था और उसी वायु से सुवासित जल वायु एवं आहार ग्रहण

करता था। तद्नुसार वह कष्ट रोगों से छुटकारा पाता था। ऐसे भेषज यज्ञों के अनेक वर्णन ग्रन्थों में आते हैं:—

भैषज्य यज्ञा वा एते।
ऋतु सन्धिषु व्याधिर्जायते तस्माद्तु सन्धिषु प्रयुज्यन्ते।

—शतपथ

अर्थात्—यह भैषज यज्ञ है। ऋतु परिवर्तन के समय जो व्याधियां उत्पन्न होती हैं उनके निवारण के लिए इनका प्रयोग होता है।

भेषज वृती हवा एष यज्ञो यत्रैवं विद्व ब्रह्मा भवति।

छान्दोग्य 4।17।18

अर्थात्—भैषज यज्ञों में आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञाता ब्रह्मा होता है।

आज वह यज्ञ चिकित्सा की महत्वपूर्ण विद्या लुप्त प्रायः हो गई है। परन्तु यदि इस दिशा में अभिरुचि रखन वाले मनीषी लोग प्रयन्त करें तो इस महत्वपूर्ण विज्ञान को पुनर्जीवित करके असंख्य रोगियों की प्राण रक्षा की जा सकती है।

----*----**

यज्ञ द्वारा अमृतमयी वर्षा

****

यज्ञ से वर्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कहते हैं कि यज्ञ से इन्द्र देव प्रसन्न होते हैं और वर्षा की कमी नहीं रहने देते। पूर्व काल में जब इस पुण्य भूमि में पर्याप्त यज्ञ होते थे तो खूब वर्षा होती थी और अन्न, वनस्पति, पशु, दूध आदि से यह देश सदा भरा पूरा रहता था। वर्षा का जल कृषि के लिए सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसमें आकाशस्थ अनेक खाद्य सम्मिश्रित हो आते हैं जिससे अन्न वनस्पति बढ़ते भी खूब हैं और उनमें पौष्टिक तत्व भी अधिक होते हैं। नहर आदि के पानी से सींचने पर पौधों की उतनी वृद्धि नहीं होती जितनी की वर्षा के जल से होती है। इस प्रकार जो विटामिन, क्षार एवं पोषक तत्व वर्षा से सींचे हुए पेड़ के फल बीजों में होता है वह अन्य प्रकार की सिंचाई से नहीं होता। वर्षा का जल स्वच्छता की दृष्टि से बहु उच्च कोटि का होने के कारण स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद होता है। वर्षा की नमी हवा में रहने से पशु पक्षी आदि भी प्रसन्न एवं परिपुष्ट होते हैं। इसी नम हवा से रज वीर्यों में प्रजनन शक्ति बढ़ती है कुत्ते आदि अनेक पशु वर्षा के उपरांत ही गर्भ धारण करते हैं। वर्षा की उपयोगिता अनेक दृष्टियों से है।

वर्षा को देवाधीन समझा जाता है। क्योंकि मनुष्य की इच्छा एवं क्रिया द्वारा उसको चाहे जब नहीं बरसाया जा सकता। वर्षा की इस अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए ऋषियों ने प्रयत्न और अन्ततः यज्ञ द्वारा अभीष्ट वर्षा करने में सफलता प्राप्त की। यज्ञ द्वारा वर्षा करना और रोकना उनके लिए सरल था। अपनी इसी सफलता का उद्घोष करते हुए उन्होंने यज्ञ की महत्ता गाई और कहा:—

अन्नेनभूता जीवन्ति, यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्
पर्जन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमयं ततः ।।

कालिका पुराण 32।8

अन्न से ही प्राणी जीते हैं। वह अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है और वर्षा यज्ञ द्वारा होती है। यह सम्पूर्ण विश्व यज्ञमय ही है।

यज्ञेनाऽसप्याग्यिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवाः ।
आप्यायनं वै कुर्वन्ति यज्ञाः कल्याण हेतवः ।।

पद्म पुराण सृष्टि खंड 3।124

यज्ञ से देवता परिपुष्ट होते हैं। यज्ञ से वर्षा होती है और मनुष्यों का पालन होता है। यज्ञ ही कल्याण का हेतु हैं।

यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्यायन्ते तु धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याण हेतवः।।

विष्णु पुराण 6।1।8

यज्ञ से देवताओं का अभिवर्धन होता है। यज्ञ द्वारा वर्षा होने से प्रजा का पालन होता है। हे धर्मज्ञ, यज्ञ ही कल्याण के हेतु हैं।

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्म समुद्भवः ।।

गीता 3।14

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है वर्षा यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्म से होता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य मुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।

मनु 3।76

अग्नि में विधि विधान पूर्वक दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है उससे वर्षा होती है। वर्षा से अन्न होता है और अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

उपरोक्त मन्त्र में बताया गया है कि अग्नि में डाली हुई आहुति प्राणियों को प्राप्त होती है और वह वर्षा तथा अन्नोत्पत्ति का कारण बनती है। विज्ञान से सिद्ध है कि अग्नि जलने से कार्बनडाई ऑक्साइड गैस बनती है। इस गैस का पृथ्वी पर एक पर्त फैला रहता है जिसका काम यह है कि सूर्य की किरणों की गर्मी को पृथ्वी पर रोक कर रखे। यदि यह पर्त पतला होगा तो गर्मी ठहरेगी नहीं और भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जायगी। रेगिस्तानों में यह पर्त पतला होता है फलस्वरूप दिन में कितनी ही धूप पड़े रात को यहां की जमीन तथा वायु ठण्डी होती है। ऐसी स्थिति में वहां कृषि एवं वृक्ष, वनस्पति नहीं उगते, वर्षा करने वाले बादलों को पकड़ने में भी उस प्रदेश का वायुमंडल असमर्थ रहता है इसलिए वहां वर्षा की सदा कमी रहती है। जिन प्रदेशों में कार्बनडाई ऑक्साइड गैस का पर्त पृथ्वी की सतह पर मोटा होता है वहां सूर्य की किरणों द्वारा पृथ्वी पर आने वाली उर्वरा शक्ति एवं गर्मी सुरक्षित एवं संग्रहीत रहती है और उस भूमि में वृक्ष वनस्पति खूब होते हैं।

कांच में यह गुण है कि सूर्य की किरणों की गर्मी को अपने में से भीतर आने देता है पर उल्टी वापिस नहीं निकलने देता। जिन कमरों में कांच के रोशनदान लगे होते हैं वहां थोड़ी सी धूप जाकर भी कमरे में अपना पूरा प्रभाव कर सकती है। किन्हीं किन्हीं नर्सरियों में ऐसे पौधे होते हैं जिनको अधिक गर्मी चाहिये उनके लिये कांच के ढक्कनदार घर बना दिये जाते हैं जिनसे होकर धूप भीतर तो घुस जाय पर बाहर न निकले। फलस्वरूप उन पौधों को पर्याप्त गर्मी प्राप्त होती रहती है और वे उष्ण प्रदेश में ही जीवित रहने वाले पौधे शीत प्रदेशों में भी जीवित रहते हैं। सूर्य की किरणों की गर्मी को भीतर घुस जाने देना पर बाहर न निकले देने का जो कार्य कांच करता है वही कार्य पृथ्वी पर फैला हुआ कार्बनडाई ऑक्साइड गैस का पर्त भी करता है। यह पर्त जितना ही मोटा और मजबूत होगा, पृथ्वी को सूर्य की बहुमूल्य उर्वरा शक्ति को अपने में धारण करने और सुरक्षित रखने में सुविधा होगी।

ज्वालामुखी पहाड़ों से यह कार्बन गैस निकलती है। उस प्रदेश में उसका एक मोटा पर्त जमीन पर फैल जाता है फलस्वरूप ज्वाला मुखी पर्वतों के आस पास वृक्ष वनस्पतियों का बाहुल्य रहता है और वहां वर्षा भी अधिक होती है। फ्रांस में यूवरीन नामक एक चश्मा है जिसमें से प्रायः कार्बन निकलती रहती है। इस चश्मे के आस पास का क्षेत्र सदा हरियाली से हरा भरा रहता है। इसलिए यह यज्ञ से उत्पन्न कार्बन पृथ्वी को उर्वरा बनाती है और अन्न, फल तथा वनस्पतियों से हमें भरा पूरा रखती है।

यह सोचना ठीक नहीं कि अग्नि जलाने से ऑक्सीजन वायु खर्च होती है और कार्बन उत्पन्न होती है इसलिए हवन स्वास्थ्य के लिए अहितकर होगा। हवन में एक तो ऑक्सीजन खर्च ही कितनी होती है। उससे कहीं ज्यादा जो कल कारखानों, रेल, मोटर आदि में हो जाती है। फिर यदि थोड़ी ऑक्सीजन जले और कार्बन बने भी तो उसकी पूर्ति उन वृक्षों, वनस्पतियों से हो जाती है जो हवन द्वारा उत्पन्न होती है। वृक्ष पौधों से दिन भर स्वच्छ प्राण प्रद वायु निकलती रहती है। हवन की कार्बन का हानिकारक तत्व नष्ट करने के लिए तो पहले से ही कलश आदि की स्थापना करली जाती है।

वैज्ञानिक लोग बादलों में बर्फ का चूरा हवाई जहाजों से छिड़क कर उड़ते हुए बादलों को भारी करते हैं और उससे वर्षा कराने का प्रयत्न करते हैं। कृत्रिम वर्षा का यह प्रयोग अभी सफल नहीं हो सका है। पर यज्ञ द्वारा वर्षा कराने के प्रयोग बहुधा सफल होते हैं।

बादल जब पोले होते हैं। तो हवा उनमें भीतर भर जाती है और उन्हें इधर से उधर उड़ा ले जाती है। यदि यह बादल अपेक्षा कृत सघन हो जाते हैं या कोई ऐसा कारण बन जाता है कि वायु उनके भीतर न घुस पावे तो यही बादल भारी होकर बरसने लगते हैं। हवन द्वारा यह

आवश्यकता इस प्रकार पूरी होती है कि होमा हुआ घी सूक्ष्म बनकर वायु द्वारा बादलों तक पहुंचता है और उसकी चिकनाई का एक पर्त बादलों के ऊपर चढ़ जाता है जो वायु को उनके भीतर जाने से रोकता है फलस्वरूप बादल भारी होकर बरसने लगते हैं।

पानी में चिकनाई डाली जाय तो वह उसके भीतर नहीं ठहरती वरन् ऊपर आकर पर्त की तरह फैल जाती है। हवन का धुंआ बादलों के ऊपर एक चिकनाई का पर्त चढ़ा देता है। हवा चिकनाई को पार नहीं कर पाती। देखा जाता है, कि जाड़े के दिनों में बहुत से लोग चेहरे पर वैसलीन, मक्खन, आदि मल लेते हैं जिससे ठण्डी वायु त्वचा तक नहीं पहुंचती और चेहरे की चमड़ी फटने की दिक्कत नहीं होती। जिस प्रकार वैसलीन चेहरे की त्वचा तक हवा पहुंचने से रोकती है वैसे ही बादलों के ऊपर फैला हुआ हवन के धुंए का पर्त ऐसी ढाल का काम करता है जो हवा को बादलों के भीतर घुसकर उन्हें उड़ा देने से रोकता है। यह रोक ही वर्षा का कारण बन जाती है।

एक टोकरी में पानी, एक में घी भर कर आग पर गर्म किया जाय तो पानी में बुलबुले उठने लगेंगे, घी यद्यपि जलेगा तो अवश्य, पर उसमें बुलबुले न उठेंगे। बुलबुले उठने का कारण यह है कि पानी के गर्म होने पर हवा उसके भीतर प्रवेश करती है, उसके विपरीत घी को भेद कर हवा कटोरी के पेंदे में नहीं पहुंच पाती और बुलबुले नहीं उठते। यह इस बात का प्रमाण है कि चिकनाई को पार करके हवा भीतर नहीं जाती। हवन द्वारा बादलों के ऊपर चिकनाई का आवरण चढ़ाकर उन्हें हवा द्वारा इधर उधर उड़ा दिये जाने से रोकता है और वर्षा होने लगती है। चिकनाई ठण्ड पाकर जमती है और अपने साथ पानी को भी जमा देती हैं। जाड़े के दिनों में जब घी जमता है तो उसका जलांश भी जम जाता है। हवन का भी बादलों को घना करता है, जमाता है और उन्हें बरसने के लिए विवश करता है।

वर्षा कराने और रोकने में अतिवृष्टि और अनावृष्टि रोकने में यज्ञों की सामर्थ्य अद्भुत है।

''निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु''

इच्छानुसार वर्षा कराना, वर्षा पर मानुषी आधिपत्य कराना यज्ञ भगवान के हाथ में है। केवल जल वर्षा ही नहीं, यज्ञ से उस प्राण की वर्षा भी होती है जो समस्त प्राणियों को स्वस्थ, सजीव और चिरस्थाई बनाता है। उस प्राण से ही यह पृथ्वी स्थिर है। अमृत प्राण जो यज्ञ का प्रधान उपहार है इस धरती माता को हरी भरी बनाये हुए है। इसी से कहा गया है—

''यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति''

—अथर्व.

"यज्ञ ही इस पृथ्वी को धारण किये हुए हैं।"

----***----

आध्यात्मिक यज्ञ

****

अथर्व वेद 7।103।1 में कहा गया है:—

को यज्ञ कामः ? क उ पूर्ति काम ?

अर्थात्—यज्ञ की चिन्ता रखने वाला कौन है? उस यज्ञ को पूरा करने की फिकर किसे है?

वेद भगवान की यह चिन्ता स्वाभाविक है। मनुष्यों से वेद पूछता है—मनुष्यों, क्या तुममें कोई ऐसा है जो यज्ञ की कामना करे? यज्ञ की फिक्र रखे? यह चिन्ता अकारण नहीं है। कहीं कोई विरले ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो सच्चे यज्ञ की चिन्ता करते हैं।

साधारण अग्नि होत्र तो प्रायः होते ही रहते हैं, बड़े यज्ञों का भी लोप नहीं हुआ है, वे भी यदा कदा कराये ही जाते हैं। फिर यह पूछना कि—'हे मनुष्यों**!** क्या तुममें कोई ऐसा है जो यज्ञ की चिन्ता करता हो? उसे पूरा करने की चिन्ता करता हो?' अवश्य ही रहस्यमय होना चाहिए। यहां साधारण अग्नि होत्र से वेद भगवान का अभिप्राय नहीं है। वे उस वास्तविक यज्ञ की ओर संकेत करते हैं जिसका यह अग्नि होत्र स्थूल रूप है।

हवन में विश्व कल्याण के लिए, देवों को प्रसन्न करने के लिए बहुमूल्य सामग्री होमी जाती है और कहा जाता है 'इदन्नमम' यह मेरा नहीं है। अपनी उत्तम से उत्तम वस्तुओं को, शक्तियों को, सामर्थ्यों को, विश्व कल्याण के लिये लोक सेवा में लगा देना, भगवान की दी हुई वस्तुओं को विराट् पुरुष, विश्व मानव के चरणों में अर्पित कर देना, और अर्पित करते समय किसी प्रकार के अहसान का अहंकार का भाव न लाना ही यज्ञ है। 'इदन्न मम' यह मेरा नहीं है, मेरा तो इस संसार में कुछ भी नहीं है, जो कुछ है सब प्रभु का है। फिर प्रभु की वस्तु प्रभु के चरणों में अर्पण करते हुए लोभ एवं संकोच करने की भी क्या जरूरत? अभिमान और अहसान भी किस बात का? प्रभु ने जो शक्तियां हमें दी हैं वे इन्द्रिय भोगों के लिये नहीं हैं, उनके द्वारा जो कमाई होती है उसे अपने लिए ही जोड़ जोड़ कर जमा करना यह तो अमानत में खयानत है। परमात्मा ने बिना मूल्य बिना कोई बदला लिए हमें अनेक वस्तुएं, शक्तियां, सुविधाएं और साधन सामग्रियां इसलिए दी हैं कि हम भी उनका उपयोग उसके लिए उसी प्रकार करें। परमात्मा हमें देता है और हम परमात्मा को उसके विराट् रूप विश्व मानव को, समाज को सौंप दें यह आदान प्रदान, परस्पर विनियम आनन्द प्रद एवं सद्भावों की वृद्धि करने वाला है। इसी प्रक्रिया के नाम यज्ञ हैं। यदि प्रभु की दी हुई वस्तुओं को अपनी संकुचित स्वार्थ पूर्ति के लिए ही

सीमित रखें तो यह ईश्वर की इच्छा और व्यवस्था के प्रतिकूल आचरण है। परमात्मा चाहता है कि ऐसा न हो। मैं प्रजा के लिए त्याग करता हूं प्रजा मेरे लिए त्याग करे। जिस प्रकार निस्वार्थ दान का आचरण मैं निरन्तर करता हूँ वैसा ही आचरण लोग भी करें और मेरे सच्चे अनुयायी बनें। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ के इस मूल भूत उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया गया है:—

प्रजापतिर्वा ऽएत दगो कर्मा करोत्ततो देवा अकुर्वन् ।

शत. 6।2।3।11

अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने आरम्भ में जिस प्रकार महान यज्ञ किया, उसी प्रकार का यज्ञ हम भी करते हैं।

सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने अनेक प्रकार की वस्तुएं रचीं। वह उसने अपने लाभ के लिए नहीं वरन् प्रजा की सुख सुविधा के लिए बनाईं। उसका निर्माण कार्य केवल परमार्थमय था। मनुष्य के जीवन आरम्भ को भी सृष्टि माना जाय तो भी परमात्मा गर्भस्थ बालक के लिए, नवजात शिशु के लिये जो जो सुविधाएं तथा सुख सामग्रियां बनाकर तैयार कर देता है उसे देखकर उसकी परमार्थ प्रियता का, यज्ञ भावना का सहज ही पता चल जाता है। इसी का अनुकरण हमें करना है अपनी सांसारिक और आन्तरिक सामर्थ्यों को परमात्मा के निमित्त ही अर्पित करना है। हमारी भावना यही होनी चाहिये—

मेरा मुझको कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ।।

इस यज्ञ भावना का संसार में लोप सा होता देखकर वेद भगवान को चिन्ता हुई। परमात्मा ने यज्ञ किया—मनुष्य को सब कुछ दिया उसकी इच्छा थी कि यह लोग भी इस यज्ञ प्रक्रिया को जारी रखें। यह मुझे दें—मैं फिर इन्हें दूँ। इस प्रकार दान का अलौकिक सुख इन जीवों को मिलता रहे।

''देहि मे ददामिते''

—यजु 3-50

तुम मुझे दो—मैं तुम्हें दूँगा।

आज सर्वत्र यह क्रम टूटता दिखाई पड़ता है लोग परमात्मा की दी हुई वस्तुओं को ले तो खुशी से लेते हैं, जो प्राप्त नहीं है, उसके लिए झगड़ते हैं, प्रार्थना करते हैं और यदि उनकी मनोवांछित अभिलाषा से कम मिलता है तो परमात्मा पर क्रोध भी करते हैं और उसे गालियां

देने में भी नहीं चूकते। अपने स्वार्थ की तो उन्हें खूब फिक्र रहती है पर इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि परमात्मा ने जो कुछ हमें दिया था, यज्ञ भावना से, त्याग और परमार्थ की भावना से दिया था और इसलिए दिया। कि इन वस्तुओं एवं शक्तियों का उपयोग हम भी वैसे ही करें और आरम्भ किये हुए यज्ञ को जारी रखें। इसके विपरीत सब लोग अपनी अपनी ही आपापूती में लगे हैं। परमात्मा भी हमें खूब दे, संसार के अन्य समस्त जीव भी हमें सब कुछ दें, पर हम किसी को कुछ न दें। सब के दिये हुए को अपने पास समेट कर रखें, खुद ही उसका उपभोग करें। यह व्यापक रूप से छाई हुई स्वार्थ परता—परमात्मा के यज्ञ उद्देश्य के प्रतिकूल है। हवन आदि भी लोग करते हैं पर उसमें भी स्वार्थ ही प्रधान होता है। अपने जीवन को, अपनी विचारधारा को, अपने लक्ष एवं कार्यक्रम को यज्ञमय बना लेने की सच्ची इच्छा आज किस में है? इसी अभाव से दुखी होकर वेद भगवान् ने पूछा है:—"को यज्ञ कामः? क उ पूर्ति काम?" यज्ञ की चिन्ता रखने वाला कौन है? उसे पूरा करने की फिक्र रखने वाला कौन है? परमात्मा से जो अनन्त ऋण प्राप्त हो रहा है उसका प्रत्युपकार करने, या उस भावना का प्रवाह संसार में जारी रखने वाली काय प्रणाली अपनाने की इच्छा की कमी देखकर ही परमात्मा पूछता है कि— कृतघ्नियों! मेरी सृष्टि रचना के महान् उद्देश्य को नष्ट क्यों कर रहे हो! स्वार्थपरता से ऊंचे उठकर परमार्थमयी यज्ञ भावना को क्यों नहीं अपनाते? विश्व हित लोक सेवा और प्रभु पूजा की चिन्ता क्यों नहीं करते?

अग्नि होत्र के स्थूल लाभ पिछले पृष्ठों पर बताये जा चुके हैं, पर उसका वास्तविक स्वरूप है—स्वार्थपरता का त्याग और त्याग संयम, सेवा, सदाचार, परोपकार, उदारता, सहृदयता आत्म, निर्माण आदि सद्भावनाओं को चरितार्थ करना। इसी वास्तविक यज्ञ का बाह्य प्रदर्शन एवं स्थूल रूप हवन है। हवन को आध्यात्मिक यज्ञ का नाटक भी कह सकते हैं। जैसे नाटक देखकर उस नाटक में दिखाई हुई भावना जागृत होती हैं उसी प्रकार अग्नि होत्र को देख कर हम आत्माहुति देने का, आत्म त्याग एवं अपनेपन—स्वार्थपरता को छोड़ना सीखते हैं। हवन से यही प्रवृत्ति सर्वत्र नाचती दीखती है।

हवन कराने वाले पंडितों और विद्वानों की कमी नहीं। दक्षिणा हो तो वे आसानी से कहीं भी उपलब्ध हो सकते हैं। पर ऐसे आचार्यों की भी आज भारी कमी है जो स्वयं मन से अपने आचरण से ऐसा यज्ञ करें और यजमान को भी ऐसा ही आत्म त्याग का हवन करना सिखावें। यह भी इस संसार में एक बड़ा भारी अभाव है। इस अभाव को पूरा करने के लिए प्रार्थना की गई हैं:—

य इ मं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणोवोच स्तमि—हेहे व्रवः।

—अथर्व

हे प्रभो, ऐसा गुरू भेजो जो हमें मन से यज्ञ करना सिखावे।

जब तक मन से यज्ञ करना न आवे तब तक हवन मात्र से यज्ञ का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। यज्ञ का वास्तविक उद्देश्य अपने आपको परमात्मा के चरणों में सौंप देना है। मन बुद्धि चित्त अहंकार का अन्तःकरण चतुष्टय, दसों इन्द्रियां, दसों प्राण आदि आन्तरिक सम्पदाओं को भी जब जीव-परमात्मा को सौंपता है। इनका आहुति, भगवान में लगा देने का होम करता है तभी सच्चा यज्ञोद्देश्य प्राप्त होता है। इस यज्ञ की चर्चा उपनिषदों में इस प्रकार है:—

"तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नीः उरो वेदी वेद शिखां चाग्ह्योता, प्राण उदगाता, चक्षुरध्वर्युः मनो ब्रह्मा, श्रोत मग्नीत यन्यु रवं तदाह्वनीयः उदगाता ।"

इस आध्यात्मिक यज्ञ में आत्मा यजमान, श्रद्धा यजमान की पुत्री, हृदयवेदी, वेद शिखा, वाणी होता, प्राण उद्गाता, चक्षु अध्वर्यु, मन ब्रह्मा, कान आग्नीध्र, मुख आहवनीय अग्नि है।

इसी प्रकार का वर्णन और भी है:—

बाग्वै यज्ञस्य होता ।
चक्षुर्वै यज्ञस्या ध्वर्युः ।
प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता ।
मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा ।

वृहदारण्यक 3।1।3-6

वाणी यज्ञ का होता, चक्षु यज्ञ का अध्वर्यु, प्राण यज्ञ का उद्गाता और मन यज्ञ का ब्रह्मा है।

यज्ञ पुरुष परमात्मा ही है। उसके चरणों में अपने को समिधा की भांति समर्पित कर देने से अपना स्वरूप भी वैसे ही यज्ञमय हो जाता है जैसे हवन की अग्नि में पड़ी हुई समिधा तथा सामग्री अग्नि रूप हो जाती है। परमात्मा की आज्ञाएं, प्रेरणाएं, तथा सतोगुणी प्रवृत्तियां अपने अन्तःकरण में धारण करना, अभ्यास, वैराग्य, स्वाध्याय, भक्ति आदि साधनों से ईश्वरीय प्रकाश को अपनी अन्तःभूमिका में अधिकाधिक धारण करना भी यज्ञ है। सर्व व्यापक परमात्मा को सब में समाया हुआ देखकर गुप्त से गुप्त दुष्कर्मों से बचना चाहिये। कोतवाल को सामने खड़ा देखकर चोर जिस प्रकार ठीक उसके सामने ही चोरी करने का साहस नहीं करता उसी प्रकार परमात्मा को सर्व व्यापक समझने वाला व्यक्ति भी कोई कुविचार एवं कुकर्म नहीं कर सकता क्योंकि जब उसे अपने अन्तःकरण में परमात्मा बैठा दिखाई पड़ता है तब उसके सामने कुविचार कैसे करें?

इसी प्रकार विश्व के कण कण में जब प्रभु दिखाई पड़ता है तो कौन सा गुप्त स्थान ऐसा हो सकता है जहां वह अपनी चोरी को छिपाले ? इसी प्रकार जो सर्वत्र प्रभु की विद्यमानता अनुभव करेगा वह सभी जड़ चेतनों के साथ सद्व्यवहार के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। इसलिए यज्ञ पुरुष भगवान को सर्वव्यापी मानकर उसे अपनी अन्तरात्मा में धारण करना भी आध्यात्मिक यज्ञ है। इस यज्ञ निष्ठा को सर्वत्र यज्ञ पुरुष का ही रूप देखने की ब्रह्म दृष्टि को योगी जन सदैव अपनाते रहते हैं। शास्त्रों में भी इसका समर्थन है:—

तस्मात्सर्वगतः ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।

गीता 3।15

सर्व व्यापक ब्रह्म, सदैव यज्ञ में रहता है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ।।

गीता 4।24

अर्पण **(**हवन क्रिया**)** ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है, ब्रह्म रूप अग्नि में हवन किया जाता है और ब्रह्म ही हवन कर्ता है। इस प्रकार जिसकी बुद्धि में सभी कर्म ब्रह्म रूप हो जाते हैं वह ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।।

—गीता 9।16

मैं क्रतु हूं, मैं यज्ञ हूं, मैं स्वधा हूं, मैं औषधि हूं, और मैं ही मंत्र, घृत, अग्नि और हवन हूं।

गीता ने आध्यात्मिक यज्ञ को भली प्रकार समझाने के लिए उसके छोटे विभाग भी किये हैं। दैव यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, आत्मयज्ञ, तप यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, प्राण यज्ञ, संयम यज्ञ आदि की चर्चा करते हुए यह बताया है कि आत्म कल्याण के, प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलते हुए जो भी सत्साधन कार्य में लाये जाते हैं वे सब यज्ञ रूप ही हैं:—

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहति ।
श्रोत्रादीनीन्द्रियाएयन्ये संयमाग्निषु जुंहति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुव्हति ज्ञानदीपिते ।।
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।
अपाने जुव्हति प्राणं प्राणोऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।
अपरे नियताहाराः प्राणान्तपाणेषु जुव्हति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ।

गीता 4।25—31।

उपरोक्त श्लोकों में जिन यज्ञों की चर्चा है उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(1) योगियों का दैव यज्ञ—सूर्य अग्नि आदि देवताओं से अपनी इन्द्रियों का सम्बन्ध अनुभव करते हुए, उस सम्बन्ध की शक्ति को बढ़ाना।

(2) ब्रह्म यज्ञ—ज्ञान रूपी ब्रह्म अग्नि में अपने कर्म बन्धनों को होमना।

(3) संयम यज्ञ—संयम के तप रूपी अग्नि में इन्द्रियों की वासना को जलाना।

(4) इन्द्रिय यज्ञ—इन्द्रिय शक्ति का मर्यादित सीमा में प्रयुक्त करके उनकी शक्ति का सदुपयोग करना।

(5) आत्म यज्ञ—आत्मा रूपी अग्नि में प्राणों की गति विधि का उत्सर्ग करना।

(6) द्रव्य यज्ञ—अपनी भौतिक सम्पदा को सत्कर्मों में लगाना।

(7) तप यज्ञ—शारीरिक कष्ट सहिष्णुता तितिक्षा एवं द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति का उपार्जन।

(8) योग यज्ञ—योगाभ्यास द्वारा आत्मोविकाश।

(9) स्वाध्याय यज्ञ—सद्ग्रन्थों द्वारा, सत्संग द्वारा एवं चिन्तन मनन द्वारा आत्म ज्ञान का सम्पादन।

(10) ज्ञान यज्ञ—सद्ज्ञान की अभिवृद्धि।

(11) प्राण यज्ञ—अपान में प्राण का लय, प्राण में अपान का समर्पण, इनकी गतियों का सन्तुलन करने के लिए कुम्भक का अभ्यास।

(12) आहार यज्ञ—भोजन की पवित्रता एवं उत्कृष्टता का साधन।

इन सब यज्ञ साधनों से मनुष्यों के सब पाप नष्ट होते हैं और ब्रह्म की प्राप्ति की दिशा में उसके कदम तेजी से बढ़ते जाते हैं।

यह आध्यात्मिक यज्ञ अन्तिम लक्ष है, स्थूल यज्ञ इसकी प्रथम सीढ़ी है। जैसे साकार मूर्ति पूजा से अभ्यास बढ़ा कर निराकार ब्रह्म की उपासना की जाती है। वैसे ही अग्नि होत्र द्वारा यज्ञ भावनाओं का विकास कर अपने आपको ब्रह्मार्पण करते हुए स्वयं यज्ञ रूप बनना होता है। यही यज्ञ का परम रहस्य है। यह परमार्थ प्रियता, परस्पर सहयोग, सद्भावना की वृत्ति, संयम, त्याग, उदारता, धर्म प्रियता, आस्तिकता एवं ईश्वर उपासना की भावना ही यज्ञ का वास्तविक रहस्य है।

एक बार ब्रह्म ज्ञानी राजा जनक ने सब ऋषियों से यज्ञ का वास्तविक रहस्य पूछा था और कहा था जो कोई उस रहस्य को बतावेगा उसे सौ गौएं दान दी जायगी। अन्य ऋषियों ने स्थूल यज्ञों का वर्णन तो बहुत किया पर उसका अन्तिम लक्ष्य, प्रधान उद्देश्य कोई न बता सका। तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने यज्ञ का मर्म बताते हुए आत्म संयम और प्रभु परायणता का प्रतिपादन किया। इससे संतुष्ट होकर जनक ने याज्ञवल्क्य को निर्धारित दान देते हुए कहा:—

'वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनु शतं ददामीति'

हे यज्ञवल्क्य—आप अग्नि होत्र के रहस्य को जानते हैं, इसलिए आपको सौ गौएं भेंट करता हूं।

गीता ने इस तथ्य का भली प्रकार स्पष्टीकरण किया है:—

श्रेयान्द्रव्य मयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परंतपः ।

गीता 4।33

हे अर्जुन—द्रव्यमय-वस्तुओं से होने वाले यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

गीता 3।9

यज्ञ के निमित्त किये हुए कर्मों के अतिरिक्त और सब कर्म बन्धन रूप हैं।

यहां यज्ञ का अर्थ परमार्थ पूर्ण एवं अनासक्त भावना से किये हुए सत्कर्म ही से है। हवन तो मनुष्य हर घड़ी कर नहीं सकता, हवन के अतिरिक्त भी उसे बहुत से काम करने पड़ते हैं। यहां तो परमार्थ की कर्त्तव्यमयी स्वार्थ रहित भावना द्वारा जीवन का प्रत्येक कार्य करने का आदेश है। जो कर्म इस भावना से नहीं किये जाते अर्थात् स्वार्थ की संकुचित बुद्धि से किये जाते हैं वे जीवन को जन्म मरण की फांसी में बांधने वाले सिद्ध होते हैं।

इस यज्ञ भावना से रहित व्यक्ति को उसकी स्वार्थ परमा के कारण सर्वत्र निन्दा, घृणा, दण्ड, द्वेष एवं दुर्भावना का शिकार बनना पड़ता है। सच्चे मन से उसे कोई नहीं चाहता, उसका कोई सच्चा मित्र भी नहीं होता, फल स्वरूप सांसारिक दृष्टि से भी वह उन्नति नहीं कर पाता और न सच्चे सहयोग से मिलने वाला सुख ही उसे प्राप्त होता है। ऐसा स्वार्थी मनुष्य चाहे कितना ही धनी हो जाय लोक निन्दा, सन्मित्रों के अभाव एवं अपनी दूषित मनोवृत्ति के कारण उत्पन्न होते रहने वाली नाना प्रकार की कठिनाईयों से सदा चिन्तित, भयभीत एवं दुखी रहता है। कहां भी है:—

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यःकुरुसत्तम ।

गीता 4।31

हे अर्जुन, यज्ञ (भावना) रहित मनुष्य को इस लोक में भी सुख नहीं, फिर परलोक का सुख तो होगा ही कैसे?

इसलिए भगवान ने यही कहा है कि परमार्थ को प्रधान और स्वार्थ को गौण रखो। कर्तव्य कर्म करते हुए जितना कुछ मिल सके उसी से सन्तुष्ट रहो। अनीति की मिठाई से नीति की सूखी रोटी का अधिक मान करो। क्योंकि ईमानदार और कर्त्तव्य परायण व्यक्ति को भले ही स्वल्प साधन एवं थोड़ी वस्तुएं प्राप्त हों पर वह उस थोड़े से ही पूर्ण स्वास्थ्य, सद्भाव पूर्ण परिवार, एवं आनन्दमय जीवन का अधिकारी बन सकता है। जब कि अनीतिवान् व्यक्ति प्रचुर साधन सामग्री के स्वामी होते हुए भी बीमारी, गृह कलह, राज दण्ड, शत्रुता, वासना आदि के उपद्रवों से घिरे हुए नाना प्रकार के दुख पाते रहते हैं और अपना धन इन्हीं नालियों में होकर बहाते रहते हैं।

धर्म कर्त्तव्य को यज्ञ मानना और उसी के प्रसाद स्वरूप जो यज्ञाशिष्ठ (पुरोडास) प्राप्त हो उससे संतुष्ट रहना जीवन निर्वाह का एक परम पुनीत मार्ग है। गीता में इस जीवन नीति की बड़ी प्रशंसा की है:—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।

गीता 4।31

यज्ञ से बचे हुए अमृत को खाने वाले व्यक्ति सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।

गीता 3।13

यज्ञ से बना हुआ अवशिष्ट खाने वाला सर्व पापों से छूट जाता है। जो केवल अपने लिए ही बनाता है वह पाप खाता है।

यह यज्ञ भावना ही संसार के पारस्परिक सहयोग को कायम रखे हुए हैं। इसे त्याग कर तो मनुष्य असुर हो जाता है और हिंसक पशुओं की तरह एक दूसरे को लूट खाने में जुट पड़ता है। ऐसी अवस्था में तो मनुष्य जाति का तथा संसार का नाश ही हो सकता है।

इस संसार का ही नहीं समस्त लोकों, नक्षत्रों और मण्डलों, ब्रह्माण्डों और अणु परमाणुओं का कार्यक्रम भी पारस्परिक सहयोग, त्याग एवं आदान प्रदान से ही चल रहा है। यही भावना सब को परस्पर जोड़े हुए है। वेद भी इस तथ्य का प्रतिपादन करते हैं—

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः ।

ऋग 1।264।36

यह यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नाभि है—बांधने वाला है।

यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः ।

अथर्व 9।10।14

यज्ञ ही समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का केन्द्र मूल है।

इस यज्ञ भावना की रक्षा करना और बढ़ाना हम सब का परम पावन आध्यात्मिक कर्त्तव्य है। इसी कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिलाने के लिए वेद भगवान हम सबसे पूछते हैं:—

को यज्ञ कामः ? क उ पूर्ति कामः ?

यज्ञ की चिन्ता कौन रखेगा? उसकी पूर्ति कौन करेगा? इसका उत्तर हमें अपने को इसके लिये उपस्थित करके देना चाहिये।

----***----

यज्ञ द्वारा तीन ऋणों से मुक्ति

******

स्थूल यज्ञ में देव पूजा इसलिए भी की जाती है कि देवतत्वों, देव आदर्शों, देव गुणों एवं देव कर्मों की ओर अभिरुचि एवं प्रवृत्ति बढ़े। पूजा के पीछे कोई भावना न हो, कोई उद्देश्य एवं आदर्श न हो तब तो वह देव पूजा एक अन्धपरम्परा मात्र रह जायगी। ऐसी पूजा से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता।

कोई व्यक्ति किसी सत्पुरुष के दर्शन को तो दौड़ा जाय पर उसकी शिक्षाओं पर ध्यान न दें तो उस दर्शन मात्र से उसे क्या लाभ होगा? जिस महा पुरुष के प्रति उसे श्रद्धा है उसकी शिक्षाओं का तथा विशेषताओं का अनुकरण किया जाय तो बिना दर्शन के भी लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अनेकों रूढ़िवादी अन्धविश्वासी केवल देव पूजा का कर्म काण्ड करके अपना कर्तव्य पूरा काम लेते हैं। देवत्व को अपने में धारण करना देव पूजन का प्रधान उद्देश्य हैं। यदि हमारे विचार और कार्य असुरता से भरे हुए हैं, तो देव पूजन करने की चिह्न पूजा से क्या लाभ? अध्यात्म यज्ञ में अपनी अन्तरात्मा में देवतत्वों का आवाहन किया जाता है और दैवी सम्पदाओं से अपने को परिपूर्ण बनाया जाता है। गीता के 16 वें अध्याय में सद्भावनाओं, सद्गुणों और सत्व कार्यों के 26 लक्षणों को दैवी सम्पदा बताया गया है। जिनमें इन तत्वों की अधिकता होने लगे, समझना चाहिए कि वह देव उपासक है। इसके विपरीत लक्षणों वाला व्यक्ति चाहे वह कितने ही विधि विधान सहित देव पूजा करता हो—देव पूजक होते हुए भी असुर रहने वाले रावण की तरह निन्दनीय ठहराया जायगा। अध्यात्म यज्ञ की देव पूजा का वास्तविक तात्पर्य अपने में देवत्व की अभिवृद्धि करना ही है।

अग्नि पूजा का आध्यात्मिक मर्म कर्तव्य निष्ठा है। अपने धर्म मार्ग को न छोड़ना, कर्तव्य धर्म रूपी हवन में अपना सब कुछ झोंक देना—होम देना ही सच्चा अग्नि पूजन है। अपने आवश्यक कर्तव्यों को पूरा करने में मनुष्य को सदैव जागरूक रहना चाहिये। अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, विश्व के प्रति, समस्त प्राण धारियों के प्रति जो कर्तव्य हैं उन्हें पूरा करने में दत्त चित्त रहना—यज्ञ भावना का ही प्रतीक है।

यजुर्वेद 2।131 में पितृ यज्ञ का वर्णन है। इसका तात्पर्य है पितृ जनों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करना। पिता को गार्हपत्याग्नि, माता को दक्षिणाग्नि आचार्य को आह्वनीय अग्नि कहा गया है। इन तीन अग्नियों में पितृ यज्ञ किया जाता है। इसका तात्पर्य है इन तीनों का

आदर करना, इनकी सामर्थ्यों को बढ़ाने के लिए सहयोग देना, तथा इनका आज्ञानुवर्ती होना। यही सच्चा पितृ यज्ञ है। इसी प्रकार मनुष्य जाति के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नर मेध, राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य पालन करना अश्वमेध, अपनी इन्द्रियों को कुमार्ग गमन से बचाकर सन्मार्ग में लगा देना गो मेध, अपनी आत्मा के कल्याण के लिए अपनी शारीरिक, मानसिक तथा सांसारिक समस्त सम्पदाओं को लगा देना सर्वमेध है। इन्हीं महान् यज्ञों तक यजमान को पहुंचाना अग्नि होत्र का प्रधान लक्ष्य है।

यज्ञ में भावना ही प्रधान है। जैसी उच्च या निकृष्ट भावना से कोई कर्म किया जाता है उसके अनुकूल ही उसका परिणाम मिलता है। कोई कार्य बाह्य दृष्टि से कितना ही उत्तम क्यों न दीखता हो, पर यदि उसके पीछे नीच उद्देश्य छिपा हुआ है तो उसका कोई अच्छा परिणाम न होगा। भावना की निकृष्टता के कारण विष मिले हुए दूध के समान वह गन्दा हो जायगा। इसके विपरीत यदि उच्च भावना से प्रेरित होकर कोई ऐसा कार्य भी करना पड़े जो देखने में निन्दनीय प्रतीत होता हो, तो भावना की उत्कृष्टता के कारण वह भी शुभ फलदायक होता है। डाक्टर का फोड़ा चीरना—एक निष्ठुर कार्य प्रतीत होता है पर उसके मन में रोगी का दुख दूर करने की भावना है। इसलिए वह चीर फाड़ की निष्ठुरता भी दया ही है। इसी प्रकार बहेलिए का चिड़ियों को दाना फेंकना चाहे बाहरी आंखों से दान या दया का कृत्य भले ही दीखे, पर उसका वास्तविक उद्देश्य चिड़ियों को पकड़ना है। इस लिए वह दाना फेंकना भी उसकी अधोगति का ही कारण बनता है। गीता ने भावना की प्रधानता को ध्यान में रख कर अन्य कर्मों की भांति यज्ञ को भी सात्विक, राजस, तामस अर्थात् उत्तम, मध्यम, निकृष्ट विभागों में बांटा है:—

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधि दृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ।

(गीता 17।11)

जो यज्ञ, शास्त्र विधि से नियत किया हुआ है तथा उसे करना कर्तव्य ही है ऐसा मानकर, फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है, वह यज्ञ सात्विक है।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।

(गीता 17।12)

जो यज्ञ केवल प्रदर्शन के लिए अथवा फल को भी लक्ष रखकर किया जाता है उसे हे अर्जुन—तू राजस जान।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।

(गीता 17।13)

शास्त्र विधि से हीन, अन्न दान से रहित एवं बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किये हुए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

इन यज्ञों का फल उनके बाह्य रूप के अनुसार नहीं वरन् कर्त्ता की भावना के अनुसार होता है:—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।

(गीता 14।18)

सतगुण में स्थित हुए मनुष्य ऊपर उठते हैं, उच्च गति को प्राप्त करते हैं, रजोगुण में स्थित बीच में ही लटकाते रहते है, तथा निकृष्ट मार्ग पर चलने वाले तामस मनुष्य अधोगामी होते हैं।

क्रिया यज्ञ में विधि विधान के शास्त्रोक्त होने का ध्यान रखा जाता है और भाव यज्ञ में आन्तरिक भावना की पवित्रता, सात्विकता, सचाई एवं सदुद्देश्य को महत्त्व दिया जाता है। उच्च भावना रखकर किये जाने वाले साधारण कार्य भी यज्ञ रूप हो जाते हैं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह स्वयं ही अपनी सब जरूरतें पूरी नहीं कर लेता। वरन् अनेक व्यक्तियों, पशुओं, वृक्षों, वनस्पतियों तथा ईश्वरीय शक्तियों की सहायता से उसका जीवन क्रम चलना सम्भव होता है। यदि दूसरों का सहयोग उसे न मिले तो उसका काम एक क्षण के लिए भी न चले। यहां तक कि जीवन धारण करना भी दुर्लभ हो जाय। अन्न, वस्त्र, औषधि, घर, जूते, पुस्तक, आदि वस्तुएं प्राप्त करने के लिए सहस्रों दूसरों का सहयोग नित्य अपेक्षित होता है। जो ज्ञान, विद्या, शिक्षा, स्वभाव, पद, कीर्ति आदि हमें उपलब्ध हैं वह भी दूसरों के सहयोग से ही है। गर्भ में आने के समय से लेकर चिता में जलने तक हर घड़ी मनुष्य दूसरों के सहयोग, कृपा भाव, दान, अनुग्रह प्राप्त करता रहता है। इसलिए उसे उचित है कि इन ऋणों से अपने को उऋण करने के लिये कृतज्ञता पूर्वक संसार की सेवा करे। अपने ऊपर लदे हुए दूसरों से असंख्य उपकारों का ऋण चुका कर उऋण होने का प्रयत्न करे। शास्त्र का भी ऐसा ही आदेश है:—

जायमानो वै ब्राह्मणास्त्रिमिर्ऋणौर्ऋणवान् जायते ।
ब्रह्मचर्येण ऋषिम्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजयापितृभ्यः ।

तैत्तिरीत संहिता 3।10।5

द्विज, जन्मते ही ऋषि ऋण, देवऋण, और पितृऋण, इन तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषि ऋण से, यज्ञ द्वारा देव ऋण से और सन्तति को सुयोग्य बनाने से पितृ ऋण से छुटकारा मिलता है।

ऋषि, देव, पितृ हमारे ऊपर अनन्त कृपा पूर्वक हमें बहुत कुछ देते हैं। सद्ज्ञान ऋषियों का दिया हुआ है। अनेक साधन सामग्री तथा सुखोपभोग की सामग्री देवों द्वारा दी हुई है। असमर्थ अवस्था में सामर्थ्य प्रदान करने वाले वे उपकार पितृओं के हैं, जिनके द्वारा सब प्रकार से दीन हीन नवजात शिशु पाला पोषा जाता है और अन्त में सब प्रकार की सामर्थ्यो से परिपूर्ण मनुष्य बन जाता है। इन दोनों के उपकार प्राप्त न हों तो मनुष्य की कैसी दुर्गति हो इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

इन ऋणों से उऋण हुए बिना कोई व्यक्ति छुटकारा नहीं पा सकता। जो लोग दूसरों का कर्ज मारने की चेष्टा करते हुए "विरक्त" बनने का ढोंग रचते हैं, वे वस्तुतः कृतघ्न हैं। उन्हें मुक्ति तो क्या मिलेगी, उलटे हजारों गुनी जटिल बन्धन पाश में बंधना पड़ेगा। साधु या संन्यासी तो ईश्वर उपासना करते हुए अधिकाधिक लोक सेवा करने के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ते हैं। स्वार्थ परता को न छोड़कर कर्त्तव्य पालन एवं लोक सेवा द्वारा उऋण होने की कठिनाई या मेहनत से जी चुराकर जो आलस्य और हराम खोरी पर उतर आते हैं और कहते हैं संसार तो माया है, दूसरों के लिए हम कोई प्रयत्न क्यों करें, ऐसे लोगों को साधु महात्मा या त्यागी वैरागी कहना भी इन पवित्र शब्दों को कलंकित करना है। साहु वह है साधु वह है, जो अपना ऋण दूसरों पर छोड़े, जो स्वयं सब का कर्जदार बैठा है और बदला चुकाने के समय सतराता है वह तो पक्का चोर है। उसे न तो साहु कह सकते हैं और न साधु। प्रत्येक व्यक्ति को उपरोक्त तीन ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिए। इस उऋणता के उपाय तैत्तिरीय संहिता के उपरोक्त वाक्य में बता दिये गये हैं।

(1) ब्रह्मचर्य द्वारा ऋषि ऋण से छुटकारा मिलता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल स्त्री सम्भोग न करना ही नहीं है। वरन् उसका वास्तविक तात्पर्य सभी इन्द्रियों का संयम करना और ब्रह्म में चरण रखना अर्थात् आस्तिकता को अपनाना है। इन्द्रियों के संयम से, शारीरिक और मानसिक शक्तियों की रक्षा होती है और असंयमी आचरण के कारण जो समय, धन, स्वास्थ्य एवं आत्मबल नष्ट होता है वह बच जाता है। इस असंयम से बचे हुए और संयम द्वारा बढ़े हुए बल को जब मनुष्य आस्तिकता में धर्म मार्ग में लगाता है तो वह व्यक्ति सब दृष्टि में महान् बन जाता है उसकी सर्वांगीण उन्नति होती है। ऋषि स्वयं महान होते हैं, हमें भी ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए अपने को ज्ञान, धर्म, बल, संगठन आदि सभी दृष्टियों से बलवान बनाना चाहिये।

ताकि ऋषि पक्ष की परम्पराओं को आगे बढ़ाने के लिये अपने को आदर्श एवं उदाहरण के रूप में उपस्थिति कर सकें।

(2) देव ऋण से छुटकारा यज्ञ द्वारा होता है। यज्ञ द्वारा देव शक्तियां परिपुष्ट कैसे होती हैं, उसका विज्ञान पीछे बताया जा चुका है। अध्यात्म क्षेत्र में यज्ञ का अर्थ है त्याग। अपने निर्वाह के लिए अपनी सामर्थ्य का न्यूनतम भाग उपभोग करना और अधिकतम भाग लोकहित के लिए लगा देना यही यज्ञ भावना है। देव हमें नाना प्रकार के सुख साधन देते हैं। हमें किसी को कुछ नहीं देना चाहिए? अवश्य ही देना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए 'देव' वे कहलाते हैं कि जो देते हैं। देने वालों की श्रेणी में अपने को रखने से हम भी 'देव' बन सकते हैं। धन देना ही दान नहीं है। ज्ञान, समय, श्रम, सलाह, सद्भाव, शिक्षा, सहयोग, आदि देकर हम अपनी स्थिति के अनुसार दूसरों को बहुत कुछ देते रह सकते हैं। देने की भावना हो तो प्रतिक्षण वैसे अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। ऋषि मुनि तो पूर्णतया निर्धन होते थे, पर वे इतना देते थे कि उनके दान की तुलना धन कुबेर भी नहीं कर सकते। देने की—किन्तु विवेक पूर्वक देने की भावना से हम देव ऋण से मुक्त होते हैं किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कार्य एवं पात्र कुपात्र का विचार न किया जाय, तो वह दान हत्या के समान भयंकर दुखदायी भी होता है। इसलिए देव श्रद्धा से छुटकारा पाने के लिए विवेकपूर्ण त्याग करते रहने का हमें निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

(3) तीसरा ऋण है—पितृ ऋण। पितर हमें सुयोग्य बनाते हैं। हम भी भावी सन्तान को सुयोग बनावें। आज के युग में अधिक बच्चे पैदा करना एक राष्ट्रीय पाप है। क्योंकि जब जनसंख्या की अधिकता से अन्न पूरा न पड़ता हो, अन्न के अभाव से अनेक लोग भूखों मरते हों, तब उनके ग्रास छीनने के लिए और नये हिस्सेदार बढ़ाना कोई बुद्धिमानी नहीं है। बच्चों की संख्या बढ़ाने के लिए नहीं वरन् उनकी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। भावी पीढ़ी के उचित निर्माण के लिये ध्यान न दिया जायगा तो भविष्य अन्धकारमय बनेगा। आज कुसंस्कारों की बढ़ोतरी से नई पीढ़ियां, उद्दण्डता, उच्छृंखलता, अवज्ञा, आलस, विलासिता आदि बुराइयों की ओर बढ़ रही हैं, इस बाढ़ को न रोका गया तो भविष्य का ईश्वर ही मालिक है। इसलिए बच्चों को भविष्य के सुयोग्य नागरिक एवं महान् सत्पुरुष बनाने के लिए प्रयत्न करते हुए पितृ ऋण से उऋण होना चाहिए। अपने या पराये जिन बच्चों की ऐसी सेवा की जाय वह पितृ ऋण की उऋणता ही है।

पितर का अर्थ गुरु भी है। जिन प्रकार सत्पुरुषों ने हमें सद्ज्ञान दिया और अच्छे मार्ग पर चलाने के लिए अनेक प्रकार प्रयत्न किये, वैसे ही हमारे लिए उचित है कि दूसरों को सद्ज्ञान

देने और सत् मार्ग पर लगाने के लिए प्रयत्न करें। यह पितृ परम्परा जारी रखने की भावना सब की हो तो दूसरों को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करते हुए सम्पूर्ण विश्व को सुयोग बनाया जा सकता है।

तीनों ऋणों से उऋण होने के लिये हममें से प्रत्येक को ध्यान रखना चाहिए। ऋषि, देव और पितृ भी इस यज्ञ भावना से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। उनका यज्ञ यह यज्ञ भावना ही है। इसी को यज्ञ से यज्ञ करना कहते हैं। देवों की महानता इस यज्ञों के यज्ञ—आध्यात्मिक यज्ञ पर निर्भर थी। इसी से वे इतने उच्च अधिकारी बने।

यज्ञैन यज्ञ यमय जन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे सन्ति देवाः ।

—यजुर्वेद

देवताओं ने यज्ञ से यज्ञ किया जो प्रथम धर्म था। इसी से ये उस महान् स्वर्ग को गये जहां पूर्व काल में ऋषि गये हैं।

देवों ने हमें मार्ग दिखाया। हमारा कर्त्तव्य है कि इस यज्ञ मार्ग पर चलते हुए उस महान परम्परा को कायम रखे और उऋणता का आत्म सन्तोष प्राप्त करते हुये जीवन के महान् लक्ष्य को उपलब्ध करें।

----*----**

अग्नि की शिक्षा तथा प्रेरणा

****

अग्नि भगवान के स्थूल रूप का पूजन करने के लिए सुन्दर सुन्दर हवन सामग्रियों से कुण्ड रूपी मुख में आहुतियां दी जाती हैं। सूक्ष्म पूजन के लिए अग्नि रूपी तेजस्वी भगवान को अपने अन्तःकरण में धारण करना होता है और उनके गुणों को अपनाकर स्वयं अग्नि रूप बनना होता है।

अग्नि भगवान से ऐसी ही प्रार्थना यजमान करता है कि—

ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेद स्तेन इध्मस्व वर्धस्व च इद्धय वर्धय ।

आश्वलायन गृह्य सूत्र 1।10।18

अर्थात्—"हे अग्नि देव, आप प्रदीप्त होओ और हमें भी प्रदीप्त करो। जो गुण आप में है उन्हें ही हम धारण करें" ऐसी प्रार्थना इस मन्त्र में दी गई है। अग्नि यज्ञ का सच्चा उपासक वही कहा जायगा, जो अपने इष्ट देव में तन्मय होकर उसके समान गुणों वाला बनने का स्वयं भी प्रयत्न करे।

स्थूल अग्नि की स्थापना और पूजन का स्थान हवन कुण्ड है ही। साथ ही उस यज्ञ की सूक्ष्म महत्ता को स्थापित करने का वास्तविक स्थान हृदय-अन्तःकरण है। उस अग्नि में स्वत्व गुण को धारण करके अपने को अग्नि रूप-अग्नि गुण सम्पन्न बनने का प्रयत्न ज्ञानी लोग अपनी ज्ञान बुद्धि द्वारा करते हैं तभी उनका जीवन अग्नि रूप यज्ञमय बनता है।

अविदन्ते अतिहितं यदासीत यज्ञस्यधाम परमं गुहायत् ।

ऋग् 1।811

यज्ञ का वास्तविक निवास स्थान हृदय रूपी गुफा में है। वह अत्यन्त गुप्त है। परन्तु ज्ञानी सत्पुरुष उसे प्राप्त कर लेते हैं।

यज्ञ को अग्नि होत्र कहते हैं। अग्नि ही यज्ञ का प्रधान देवता है। हवन सामग्री को अग्नि के मुख में ही डालते हैं। अग्नि को ईश्वर रूप मानकर उसकी पूजा करना ही अग्नि होत्र है। अग्नि रूपी परमात्मा की निकटता का अनुभव करने से उसके गुणों को भी अपने में धारण करना चाहिए एवं उसकी विशेषताओं को स्मरण करते हुए अपने आपको अग्निवत् होने की दिशा में

अग्रसर बनना चाहिए। नीचे अग्नि देव से प्राप्त होने वाली शिक्षा तथा प्रेरणा का कुछ दिग्दर्शन कर रहे हैं।

(1) अग्नि का स्वभाव उष्णता है। हमारे विचारों और कार्यों में भी तेजस्विता होनी चाहिए। आलस्य, शिथिलता, मलीनता, निराशा, अवसाद यह अन्ध तामसिकता के गुण हैं, अग्नि के गुणों से यह पूर्ण विपरीत हैं। जिस प्रकार अग्नि सदा गरम रहती है कभी भी ठण्डी नहीं पड़ती, उसी प्रकार हमारी नसों में भी उष्ण रक्त बहना चाहिए, हमारी भुजाएं काम करने के लिए फड़कती रहें, हमारा मस्तिष्क प्रगति शील बुराई के विरुद्ध एवं अच्छाई के पक्ष में उत्साह पूर्ण कार्य करता रहे।

(2) अग्नि में जो भी वस्तु पड़ती हैं उसे वह अपने समान लेती है। निकटवर्ती लोगों को अपना गुण, ज्ञान एवं सहयोग देकर हम भी उन्हें वैसा ही बनाने का प्रयत्न करें। अग्नि के निकट पहुंच कर लकड़ी कोयला आदि साधारण वस्तुएं भी अग्नि बन जाती है, हम अपनी विशेषताओं से निकटवर्ती लोगों को भी वैसा ही सद्‌गुणी बनाने का प्रयत्न करें।

(3) अग्नि जब तक जलती है तब तक उष्णता को नष्ट नहीं होने देती। हम भी अपने आत्मबल से ब्रह्म तेज को मृत्यु काल तक बुझने न दें।

(4) हमारी देह "भस्मान्तँ शरीरम्" है। यह अग्नि का भोजन है। न मालूम किस दिन यह देह अग्नि की भेंट हो जाय इसलिए जीवन की नश्वरता को समझते हुए सत्कर्म के लिये शीघ्रता करें और क्षणिक जीवन के क्षणिक सुखों के निमित्त दुष्कर्म की मूर्खता से बचें। जीवन की गति विधि ऐसी रहे कि किसी समय मृत्यु सामने आखड़ी हो, देह अग्नि को भेंट करनी पड़े तो किसी प्रकार का पछतावा न हो। अग्नि रूपी यमराज का हम नित्य दर्शन एवं पूजन करते हुए उसके साथ आत्मसात होने की तैयारी करते रहें।

(5) अग्नि पहले अपने में ज्वलन शक्ति धारण करती है तब किसी दूसरी वस्तु को जलाने में समर्थ होती है। हम पहले स्वयं उन गुणों को धारण करें जिन्हें दूसरों में देखना चाहते हैं। उपदेश देकर नहीं वरन् अपना उदाहरण उपस्थित करके ही हम दूसरों को कोई शिक्षा दें सकते हैं। जो गुण हममें होंगे, वैसे ही गुण वाले दूसरे लोग भी हमारे समीप आवेंगे और वैसा ही हमारा परिवार बढ़ेगा। इसलिए जैसा वातावरण हम अपने चारों ओर देखना चाहते हों पहले स्वयं वैसे बनने का प्रयत्न करें।

(6) अग्नि जैसे मलीन वस्तुओं का स्पर्श करके स्वयं मलीन नहीं वरन् दूषित वस्तुओं को भी अपने समान पवित्र बनाती है वैसे ही दूसरों की बुराइयों से हम प्रभावित न हों। स्वयं बुरे न बनने लगें वरन् अपनी अच्छाइयों से उन्हें प्रभावित करके पवित्र बनावें।

(7) अग्नि जहां रहती है वहीं प्रकाश फैलाती है। हम भी ब्रह्म अग्नि के उपासक बन कर ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैलावें। अज्ञान के अन्धकार को दूर करे "तमसो मा ज्योतिर्गमय" हमारा प्रत्येक कदम अन्धकार से निकलकर प्रकाश की ओर चलने के लिए पड़े।

(8) अग्नि की ज्वाला सदा ऊपर को उठती रहती है। मोमबत्ती की लौ को नीचे की तरफ उलटें तो भी वह ऊपर की ओर से उलटेगी। उसी प्रकार हमारा लक्ष्य, उद्देश्य एवं कार्य सदा ऊपर की ओर ही रहे, अधोगामी न बने।

अग्नि में जो भी वस्तु डाली जाती है उसे वह अपने पास नहीं रखती वरन् उसे सूक्ष्म बनाकर वायु को, देवताओं को बांट देती है। हमें जो वस्तुएं सम्पदाएं ईश्वर की ओर से—संसार की ओर से—मिलती है उन्हें केवल उतनी ही मात्रा में ग्रहण करें जितने से जीवन रूपी अग्नि को ईंधन प्राप्त होता रहे। शेष का परिग्रह, संचय या स्वामित्व का लोभ न करके उसे लोकहित के लिए ही अर्पित करते रहें। अग्नि में चाहे करोड़ों रुपयों की सामग्री होमी जाय वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कुछ नहीं चुराती और न पीछे के लिये संग्रह करती है वरन् तत्क्षण उस सामग्री को सूक्ष्म बनाकर वायु को लोकहित के लिये बांट देती है। वैसे ही हमें जो ज्ञान, बल, बुद्धि, विद्या आदि उपलब्ध हैं उनका उपयोग स्वार्थ के लिए नहीं, परमार्थ के लिए ही करें।

(10) जैसी अग्नि हवन कुण्ड में जलती है वैसी ही ज्ञानाग्नि अन्तःकरण में, तप अग्नि इन्द्रियों में, कर्म अग्नि देह में प्रज्वलित रहनी चाहिए। यही यज्ञ का आध्यात्मिक स्वरूप है।

----***----

यज्ञ और पशुबलि

****

यज्ञों की अनेक कोटियों में एक कोटि 'पशु यज्ञ' की भी आती है। एक ही शब्द के कई अर्थ होते हैं। पशु शब्द के भी अनेक अर्थ हैं पर कुछ संकुचित विचार के व्यक्ति वेद और यज्ञ की मूल भूत भावना के विपरीत उसका अर्थ पशु हिंसा करने लगे। अर्थ का अनर्थ हुआ। मध्य कालीन युग में लोगों ने सचमुच ही पशु यज्ञ का वास्तविक रूप न समझ कर पशु हत्या आरम्भ करदी और घोड़े, गाय, बकरे सर्प एवं मनुष्य तक मार मार होमने शुरू कर दिये।

यह हत्या काण्ड जब फैला तो उसके विरुद्ध जनता में घोर घृणा उत्पन्न हुई। यज्ञों की निन्दा हुई। लोग यज्ञों का विरोध करने लगे। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने इस प्रकार की हिंसा का डट कर विरोध किया और धीरे धीरे वह अनर्थ बन्द होता गया। अब जीवों को मार कर हवन तो नहीं होता पर 'दुर्गा' आदि पर भैंसे बकरे काटने की प्रथा अब भी विद्यमान है। इन अज्ञान मूलक बातों का जितना विरोध हो उतना ही उत्तम है और हमारे पवित्र धर्म को कलंकित करने वाली यह घृणित प्रथाएं जितनी जल्दी बन्द हो जायं उतना ही उत्तम है।

वैदिक पशु याग का वास्तविक तात्पर्य क्या है, नीचे की पंक्तियों में इस पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

उपनिषद् का वचन है—

"काम क्रोध लोभादयः पशवः"

अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह यह पशु हैं। इन्हीं को मार कर यज्ञ में हवन करना चाहिए। अलंकारिक रूप से यह आत्म शुद्धि की, कुविचारों, पाप तापों, कषाय कल्मषों से बचने की शिक्षा है।

यज्ञ को "अध्वर" भी कहते हैं। अध्वर का अर्थ है—वह कार्य जिसमें हिंसा न होती हो। यज्ञ के ऋत्विजों में एक सदस्य तो विशेष रूप से नियुक्त होता है कि कहीं कोई हिंसा तो इस पुण्य कार्य में नहीं हो रही है। इस निरीक्षक को 'अध्वर्यु' कहते हैं। विचार करने की बात है कि जिस यज्ञ में हिंसा न होने का इतना ध्यान रखा गया है "पांच भू संस्कार" की क्रिया में छोटे छोटे जीव जन्तुओं की प्राण रक्षा के लिए पहले से ही पूरी सावधानी बरतने की व्यवस्था है। उस कार्य में पशु सरीखे बड़े बड़े जीवों की निर्दय हत्या करने का विधान कैसे हो सकता है।

जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में पशु यज्ञ का वर्णन है वह केवल अलंकार रूप है। उसमें एक कथानक बनाकर किसी सूक्ष्म विज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। लोग उस आर्य शैली के वास्तविक तात्पर्य को भूलकर अर्थ का अनर्थ करने लगे। शतपथ ब्राह्मण में पशु यज्ञ का वर्णन इस प्रकार मिलता है:—

पुरुषं हवै देवा अग्रे पशुमाले भिरे ।
तस्यालब्धस्य मेधेऽपचक्राम ।
सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽश्वमालभन्त ।
तस्यालब्ध्स्य मेधोपचक्रास ।
स गां प्रविवेश । ते गामा लभन्त ।
तस्या लब्धाया मेधोपचक्राम ।
सोऽविं प्रविवेश । तेऽविभालभन्त ।
तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम ।
सोऽजं प्रविवेश । नेऽजमालभन्त ।
तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम ।
स इमां पृथिवीं प्रविवेश । तंखनन्त ।
इवान्वीषुः । तं अन्तर्विंदन् ।
तौ इमौ ब्रीहियिवा । स यावद्रीर्यवद्ध
ह वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः
तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति । य एवमेतद्वेद ।
अन्ना सा संपद्यदाहुः पांक्त पशुरिति ।

—शतपथ ब्रा. 1|2|3|6-9

अर्थात्—आरम्भ में देवों ने पुरुष का बलिदान किया। उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह घोड़े में प्रविष्ट हुआ। उन्होंने घोड़े को मारा। मारते ही उससे पवित्र भाग चला गया और वह गौ में प्रविष्ट हुआ। उन्होंने गौ की बलि की, उसी समय उसमें से भी वह पवित्र भाग चला गया और वह मेंढे में चला गया। उन्होंने मेंढे की बलि की, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और बकरे में प्रविष्ट हुआ। उन्होंने बकरे को मारा उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह इस पृथ्वी में प्रविष्ट हुआ। तब देव उस पृथ्वी को खोदने लगे। भूमि खोदने से उनको चावल और जौ प्राप्त हुए। इन चावल और जौ से जो हवि किया जाता है, उसका वीर्य और बल उतना ही होता है कि जितना वीर्य पूर्वोक्त हवियों का होता है।

उपरोक्त कथानक का तात्पर्य यह है कि पुरुष, घोड़ा, गौ, मेंढा, बकरा आदि से तो देव काल में ही पवित्र भाग तिरोहित हो चुका है। इनकी पवित्रता पहले ही समाप्त हो गई है, इसलिये वेदों के आरम्भ काल में ही ब्राह्मण ग्रन्थों ने यह घोषित कर दिया था कि अब केवल जौ चावल आदि पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले पदार्थों में ही हवि के योग्य पवित्र तत्व है। पशुओं में वह पवित्र तत्व नहीं है कि वे हवि के काम आ सके। इस कथानक में पशु वध का समर्थन नहीं वरन् अलंकारिक रूप से निषेध किया गया है। इसमें तो अन्नादि पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न वनस्पतियों को ही पवित्र हवि माना है। ऐसी ही मान्यता ऐतरेय ब्राह्मण में भी प्रकट की गई है।

पशुभ्यो वै मेध उदक्रामंस्तौ ब्रीहि श्चैव यवश्च भूतावर्जयाताम् ।

—एतरेय 2।2।21

पशुओं में से हवनीय तत्व पृथ्वी में चला गया जो चावल और जौ के रूप में ऊपर आया है।

मेध शब्द, का मेधा और मेधावी अर्थ के अर्थ है। मेधा को अंग्रेजी में 'कलचल' कहते हैं। किसी वस्तु को सुव्यवस्थित ढंग से बनाना, सुधारना या उन्नति करना, मेध शब्द का वास्तविक अर्थ है। गोमेध, अश्वमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ गाय घोड़े या मनुष्य मारकर हवन करना नहीं वरन्। गो-पृथ्वी, मेध-उन्नत करना। भूमि को कृषि के लिए भली प्रकार तैयार करना ही गो मेध है। अश्व=राष्ट्र, मेध=उन्नत करना। राष्ट्र की उन्नति समृद्धि एवं सुरक्षा के प्रयत्न करना एवं एक विश्व राष्ट्र (लीग आफ नेशन्स) की स्थापना ही अश्व मेध है। इसी प्रकार मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना, दोष दुर्गुणों से मुक्त करना नर मेध है।

मनुस्मृति में नर यज्ञ शब्द अतिथि पूजन के लिए काया है।

"नृ यज्ञो अतिथि पूजनम्"

यदि कोई व्यक्ति अतिथि पूजन न करके मनुष्यों को मारना आरम्भ करदे तो इसे मनु का दोष नहीं वरन् उसकी बुद्धि का ही दोष कहा जायगा।

चरक संहिता में 'अजा' औषधि का वर्णन है:—

अजानामौषधि रज शृङ्गीति विज्ञायते ।

—चरक. चिकित्सा प्र. 1

क्या उपरोक्त वाक्य में वर्णित अजा बूटी के स्थान पर बकरी की औषधि बनावेगा?

महाभारत में भी अजा का अर्थ औषधि और बीज ही किया गया है:—

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्य मिति वा वैदिकी श्रुतिः ।
अज संज्ञानि बीजानि, छागं नो हन्तुमर्हष ।।
नैष धर्मः सत्तां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ।

महाभारत शान्ति 337

अर्थात् बीजों का यज्ञ में हवन करना चाहिए ऐसी ही वेद की श्रुति है। 'अज' संज्ञक बीज होते हैं, इसलिए बकरे का हनन करना उचित नहीं। जिस कर्म में पशु की हत्या होती है वह सज्जनों का धर्म नहीं।

एतरेय ब्राह्मण 1।2।10 में "पशवो वा इला" इस पृथ्वी को ही पशु कहा गया है। अन्य स्थानों पर जीवात्मा को भी पशु कहा गया है। क्या इन सब को काट काट कर होमा जायगा?

अन्न से बनी हुई वस्तु तथा (रोटी पूरी आदि) खाद्य पदार्थों को भी पशु माना गया है और उसके विभिन्न भागों की पशु अंगों से तुलना की गई है। देखिए—

यदा पिष्ठान्यथलोमानि भवन्ति ।
यदाप आनयति अथ त्वग्भवति ।

यदासंयोत्थय मांसं भवति । संतत इव हि तर्हि भवति संततामिव हि मांसं यदाश्रृतोऽथास्ति भवति । दारुण इव हि तर्हि भवति । नारुण मित्यास्थि । अथ यदुद्वासयन्नभिधारयति तं मज्जानं ददाति ऐषो सा सम्पद्यदाहुः पांक्तः पशुरिति ।

—शतपथ 1।2।3।9

अर्थात्—अन्न का पिसा हुआ आटा ही रोम (बाल) है। जब उस पिसे हुए आटे में जल मिलाते हैं तो वह चमड़ा हो जाता है (क्योंकि चमड़े के समान कोमल होता है। जब वह आटा गूंथा जाता है तो मांस कहलाता है (क्योंकि तब वह मांस के समान चिकना होता है)। जब वह सेंका जाता है तब अस्थि कहलाता है (क्योंकि अस्थि कड़ी होती है)। जब उसमें घी डाला जाता है तो उसका नाम मज्जा होता है।

प्राचीन आर्य ग्रन्थों में पशुओं को मार कर हवन करने का कोई विधान नहीं है। पशुओं के नाम से मिलते जुलते शब्दों का अर्थ ठीक प्रकार न समझ कर अन्धकार युग में अज्ञानी लोगों ने हवन में पशुवध करने का अनर्थ भी किया है। इस अनर्थ मूलक प्रथा को प्रचलित कराने में ब्राह्मणों की स्वार्थपरता भी कारण रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भगवान बुद्ध ने पशु बलि

प्रारम्भ होने के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला है। पाली के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सुत्त निपात" के "ब्राह्मण धाम्मिक सुत्त" भाग से कुछ उद्धरण नीचे उपस्थित करते हैं।

"भगवान बुद्ध जब श्रीवस्ती नगरी के जेतवन विहार में थे तब एक कोसल देशीय वृद्ध ब्राह्मण उनके पास आये और भगवान से पूछा, क्या इस काल में प्राचीन ब्राह्मणों का धर्म पालन करने वाला कोई ब्राह्मण है? बुद्ध ने उत्तर दिया—इस काल में ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं दीखता। क्योंकि ब्राह्मणों के जो धर्म एवं गुण हैं वे उनमें दिखाई नहीं पड़ते। उन्होंने ब्राह्मणत्व के इस पतन का दुःख पूर्ण इतिहास बताते हुए कहा—

सुखुमाला महाकाया वण्णवन्तोय यसस्सिनो ।
ब्राह्मण सेहि धम्मेहि किच्चाकिच्चेसु उस्सुका ।।
यावलोके अवत्तिंसु सुखमेधित्थ यम्पजा ।।15।।

जब तक ब्राह्मण कोमल भावनाओं वाले, स्वस्थ, सुकर्मी, यशस्वी, सत्कर्मों में उत्साही रहे तब तक संसार में प्रजा के सुख की वृद्धि होती रही।

तेसं आसीविपल्लासो दिस्वानअणुतो अणुं ।
राजिनो च वियाकारं नारियो समलङ्कता ।।16।।
रथेचाजञ्ञ संयुत्ते सुकतेचित्त सिव्वने ।
निवेसने निवेसेच विभते भाग सोभिते ।।17।।
गोमण्डलपरिव्वूल्हं नारीवरगणायुतं ।
उलारं मानुसं भोगं अभिज्झायिंसु ब्राह्मण ।।18।।

उन ब्राह्मणों की गतिविधि उलटी हो गई। धीरे धीरे वे तप त्याग छोड़कर राजकीय ठाठ बाटों, सुन्दर सुन्दर स्त्रियों, बढ़िया घोड़ों वाले रथों, चित्र विचित्र परिधानों, अनेक कमरों वाले महलों, गौओं, तथा रमणियों के भोग विलास में ललचा कर वे ब्राह्मण लोग फंस गये।

ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा ओक्काकं तदुपागमुं ।
पभूत धनसिधञ्ञो यजस्सु वहु ते धनं ।।19।।

तब वे मन्त्रों के संग्रह से एक यज्ञ पद्धति बनाकर राजा इक्ष्वाकु के पास गये और कहा तेरे पास बड़ा धन धान्य है तू यज्ञ करे।

ततो च राजा सञ्ञत्तौ ब्राह्मणेहि रथेसभो ।
अस्समेधं पुरिसमेधं सम्मापासं वाजपेय्यं निरग्गलं ।।
एते यागे यजित्वान ब्राह्मणानं अदाधनम् ।।20।।

तब ब्राह्मणों की आज्ञानुसार राजा ने अश्वमेध, पुरुषमेध, शम्याप्रास **(**सत्रयाग**)** वाजपेय, निरर्गल **(**सर्वमेध**)** यागों को करके ब्राह्मणों को धन दिया।

गावो सयनञ्च वत्थञ्च नारियो समलंकता ।
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते सुकते चित्त सिव्वने ।।21।।
निवेसनानि रम्मनि सुविभत्तानि भागसो ।
नानाधञ्ञस्स पूरेत्वा ब्राह्मणानं अदाधनं ।।22।।

गायें, गलीचे, कीमती पोशाकें, रूपवती स्त्रियां, बढ़िया रथ, रंगीन चित्र, विशाल भवन तथा नाना प्रकार के धान्यों से पूरित धन ब्राह्मणों को दिया।

तेच तत्थ धनं लद्धा सन्निधिंसमरोचयुं ।
तेसं इच्छावतिण्णानं भीय्योतण्हा पवड्ढथ ।
ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा ओक्काकं पुनुवागमुं ।।23।।

उन ब्राह्मणों ने राजा से धन प्राप्त करके अमीर होना चाहा। उनकी तृष्णा और अधिक बढ़ी। तब वे उस समय के मन्त्रों का संग्रह करके पुनः इक्ष्वाकु राजा के पास गये और बोले—

यथा आपाच पठवी हिरञ्ञं धन धानियं ।
एवं गावो मनुस्सानं परिक्खारो सोहि पाणिने ।
यजस्सु वहु ते वित्तं यजस्सु वहु ते धनं ।।24।।

जैसे जल, पृथ्वी, स्वर्ण और धन धान्य है वैसे ही गाय भी आवश्यक वस्तु है। तू इन का यज्ञ करे। तेरे पास बहुत धन है तू यज्ञ करे।

ततो च राजा सञ्ञत्तो ब्राह्मणेहि रथे सभो ।
नेकसत सहस्सियो गावो अञ्ञे अघातयि ।।25।।

तब ब्राह्मणों से प्रेरणा पाकर राजा ने सैकड़ों हजारों गौओं का यज्ञ में वध किया।

न पादा न विसाणेन नारसुहिंसन्ति केनचि ।
गावो एलक समाना सोरता कुम्भ दूहना ।।
ता विसाणे गहत्वान राजा सत्येम घातयि ।।26।।

भेड़ के समान दीन गोंए जो न पैर से न सींग से न किसी अन्य अंग से किसी को दुख देती हैं, वरन् घड़े भर भर कर दूध देती हैं उनके सींगों को पकड़ कर राजा ने वध किया।

ततो च देवता पितरो इन्दो असुर रक्खसा ।
अधम्मो इति पक्कन्दुं यं सत्थं निपती गवे ।।27।।

तब देवता, पितर, इन्द्र, असुर और राक्षस सब एक स्वर से चिल्लाये कि यह गौर पर शस्त्र चलाना और अधर्म है।

तयो रोगा पुरे आसु इच्छा अनसनं जरा ।
पसूनञ्च समारम्भा अट्टान वुतिमागमुं ।।28।।

प्राचीन काल में केवल तीन रोग थे—तृष्णा, भूख और बुढ़ापा। पर यज्ञों में पशुवध करने से 98 प्रकार के रोग फैल गये।

एसो अधम्यो ओक्कन्तो पुराणो अहु ।
अदूसिकायो इञ्जन्ति धम्मा धंसेन्ति याजका ।।29।।

इस प्रकार यह पापकर्म **[**पशु यज्ञ**]** आरम्भ हुआ और इस अधर्म से यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण धर्म से पतित हो गये।

एवं धम्मे वियापन्ने विभिन्न सुद्दवेस्सिका ।
पुथु विन्ना खत्तियां पतिं भरिया अवमञ्ञथ ।।30।।

ब्राह्मणों के पतित होने पर क्षत्रिय भी धर्मच्युत हुए, वैश्य और शूद्र भी अपनी मर्यादा छोड़ कर छिन्न भिन्न हो गये। स्त्रियां पतियों का अपमान करने लगी।

उपरोक्त उद्धरण में पशु बलि का प्रचलन ब्राह्मणों की स्वार्थ परता से हुआ मालूम होता है। शास्त्र का मर्म ठीक प्रकार से न समझना और एक शब्द के जो कई अर्थ होते हैं उनको ठीक प्रकार न समझ कर अर्थ को अनर्थ कर बैठने का अज्ञान भी इसका कारण हो सकता है। जो भी हो पशु वध सो भी यज्ञ जैसे पवित्र कार्य में सम्बन्ध करना कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।

विचार करने की बात है कि नित्य प्रति की अनिवार्य हिंसा के दुख से दुखित होकर उसका प्रायश्चित करने के निमित्त जिस संस्कृति में नित्य पांच यज्ञ करने का विधान है उससे जानबूझ कर बड़े बड़े पशु मार कर होमने की बात भी हो सकती है ऐसी कल्पना करना भी कठिन है देखिए—

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डिनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्
तासांक्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षि भिः ।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञा प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।

[मनु. 3।68, 69]

प्रत्येक ग्रहस्थ के यहां चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली, और जल पात्र यह पांच हिंसा के स्थान हैं। इनको काम में लाने से ग्रहस्थ पाप में बंधता है। इनसे छूटने के लिए पंच महायज्ञ ऋषियों ने कहे हैं।

इतिहास में ऐसे अश्वमेधों का वर्णन उपलब्ध है जिसमें घोड़ा तो क्या चींटी तक की भी हत्या नहीं की गई। देखिये—

तस्यं यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः
वृहस्पतिरुपाध्ययस्तत्र होता वभूवह ।।
प्रजापति सुताश्चात्र सदस्याश्चा भवंस्त्रयः ।
ऋषिर्सेधातिथिश्चैव ताण्ड्य श्चैव महानृपिः
ऋषिः शान्तिर्महाभागस्तथा वेदशिराश्चयः
ऋषि श्रेष्ठश्च कपिलः शालिहोत्र पितास्मृताः
आद्य कठस्तैत्तिरिश्च एते षोडस ऋत्विजः
संभूताः सर्व सम्भारास्तास्मिन् राजन्महाक्रतौ ।
न तत्र पशुधातोऽभूत सराजै-रास्थितोऽभवत् ।

महा. शान्ति 33-38

उस राजा का बहुत विशाल अश्वमेध हुआ। उसमें वृहस्पति उपाध्याय थे। प्रजा पति के पुत्र सदस्य बने। मेध तिथि, ताण्ड्य, शान्ति, वेदशिराः, कपिल, कठ, तैत्तिदि और बड़े बड़े ऋषि उस यज्ञ में ऋत्विज थे। उस यज्ञ में सामग्री तो विपुल थी पर एक भी पशु का वध न हुआ।

कोई निर्दोष जीव चाहे यज्ञ में मारकर देवी के ऊपर चढ़ाया जाय चाहे वह कसाई खाने में काटा जाय, हर हालत में हत्या ही है, और उसका परिणाम वही प्राप्त होता है जो हत्यारों को होना चाहिये। भागवत में ऐसे ही हत्यारे एक राजा के सम्बन्ध में वर्णन आया है—

भो भोः प्रजापते राजन्य शून्यश्य त्वयाध्वरे ।
संज्ञापितान् जीव संघान्निर्घृणेन सहस्त्रशः ।
एते ता सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ।
सम्परेतमयः कुटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ।

भागवत 4।25।7-8

हे राजन—तेरे यज्ञ में सहस्त्रों पशु निर्दयता पूर्वक मारे गये। वे तेरी क्रूरता को याद करते हुए क्रोध में भरे हुए तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।

यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग जाता है, इस मनगढ़ंत की मसखरी उड़ाते हुए एक तार्किक ने बहुत अच्छा प्रश्न उपस्थित किया है—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ।

यदि ज्योतिष्टोम में मारा हुआ पशु स्वर्ग चला जाता है तो यजमान अपने बाप को यज्ञ में क्यों नहीं हवन कर देता ताकि वह स्वर्ग को चला जाय।

यज्ञों के सम्बन्ध में यह कलंक लगाना किसी भी प्रकार उचित नहीं कि उनमें हिंसा का विधान है। मध्यकाल में कुछ लोगों ने ऐसे कुत्सित कर्म करके यज्ञ को बदनाम अवश्य कराया है पर उनके कृत्यों से यज्ञ की शाश्वत मूल भावना में वस्तुतः कोई परिवर्तन नहीं होता। यज्ञ का उद्देश्य महान् है। वह सम्पूर्ण संसार को प्राणदान करने वाला है। गंगा में कोई व्यक्ति गन्दगी फेंक दें तो उससे गंगा कलंकित नहीं होती। इसी प्रकार पशु हिंसा का अनर्थ उनके नाम पर किसी समय किया भी गया हो, तो भी यज्ञ भगवान का विशुद्ध रूप सदा पवित्र ही रहेगा।

असुरत्व से यज्ञ की रक्षा

****

ब्राह्मण को भू सुर भी कहते हैं। भू सुर का अर्थ है पृथ्वी का देवता। अन्य मनुष्य तो मानवता के साधारण नियमों का पालन करते हुए अपने कर्तव्य धर्म की रक्षा ही कर पाते हैं। पर ब्राह्मण इससे बहुत आगे बढ़ा होता है वह अपने ऊपर संयम, त्याग तपस्या के कठोर नियमों का पालन करके अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएं न्यूनतम बना लेता है, यहां तक कि भोजन वस्त्र में भी इतनी कमी करता है कि उसका जीवन निर्वाह अत्यन्त ही सरल हो जाय। कारण यह है कि ब्राह्मण को अपनी शक्तियों का अधिकतम भाग परमार्थ में, लोक सेवा में, भगवत् आराधना में लगाना होता है यदि वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और आवश्यकताओं को बढ़ालें तो फिर यह अपने अभीष्ट उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता। ब्राह्मण सदा से इस तथ्य को भली प्रकार समझते रहे हैं और सांसारिक प्रलोभनों से बचते रहे हैं। उनकी इस त्याग वृत्ति ने ही उन्हें भू सुर बनाया। समस्त समाज में वे श्रेष्ठ गिने गये। संसार ने उनके त्याग का प्रत्युपकार अपने अन्तःकरण की सच्ची श्रद्धा उनके चरणों पर उड़ेल कर, चुकाया।

इस गये गुजरे जमाने में भी उन सच्चे ब्राह्मणों के वंशजों का मान इसलिए होता है कि इनके पूर्वज किसी समय में भू सुर थे। आज ये अपने पूर्वजों जैसे श्रेष्ठ नहीं रहे तो भी उन भूसुरों की महानता का एक कण भी इनमें शेष होगा तो भी ये प्रणाम करने योग्य हैं। आज भी ब्राह्मण को अपने पूर्वजों की विशेषताओं के कारण मान प्राप्त होता है और उन्हें सब लोग झुककर प्रणाम करते हैं।

ब्राह्मणत्य को माता गायत्री और पिता यज्ञ है। भगवान मनु ने कहा है कि कोई व्यक्ति जन्म से ही ब्राह्मण नहीं होता वरन् स्वाध्याय, व्रत, होम, वेदज्ञान, तप, यज्ञ आदि द्वारा उसे ब्राह्मण बनाया जाता है। यथा:—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनज्ययासुतैः
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मी य क्रियते तनुः ।

स्वाध्याय, व्रत, होम, त्रियै विद्या के ज्ञान, धार्मिक सन्तानोत्पादन, यज्ञ तथा महायज्ञों से यह शरीर ब्राह्मण किया जाता है।

वेद जननी गायत्री की उपासना से स्वाध्याय, व्रत, वेदज्ञान आदि का आरम्भ होता है और यज्ञ का तपश्चर्या से सम्बन्ध है। इस प्रकार गायत्री माता और यज्ञ पिता से ही ब्राह्मणत्व

का जन्म होता है। माता पिता की महिमा बढ़ाना, उनके महत्व को उज्ज्वल एवं प्रकाशवान् करना सत्पुत्र का कर्तव्य है। पूर्व काल में ब्राह्मण लोग बड़े प्रयत्न, उत्साह, लगन एवं श्रम ले स्वयं गायत्री उपासना करते थे और सभी द्विजों को इस कल्याण कारक मार्ग पर प्रवृत्त करके उन्हें सुख शान्ति के परमलक्ष्य तक पहुंचाने का पुण्य लाभ करते थे। इसी प्रकार वे स्वयं यज्ञ करते थे और अन्य अधिकारियों को प्रेरणा पूर्वक यज्ञ कराके विश्व कल्याण के एक महान् परमार्थ का आयोजन करते थे। उन्हें यज्ञादिक में कोई दान दक्षिणा मिलती थी तो उसके एक कण को उपयोग भी व्यक्तिगत भोग ऐश्वर्य में नहीं करते थे वरन् इस हाथ लेकर उसे यज्ञ, गुरुकुल, ग्रन्थ निर्माण, सत्संग आयोजन, चिकित्सा, आदि कार्यों में लगा देते थे। ब्राह्मण का कर्त्तव्य ही यह था—(1) विद्या पढ़ना-विद्या पढ़ाना (2) दान लेना—दान देना (3) यज्ञ करना-यज्ञ कराना। स्पष्ट है कि ब्राह्मण जीवन की गति विधि परमार्थमय ही होती थी। वह वेद विद्या (गायत्री) यज्ञ और परमार्थ (दान) में निरन्तर संलग्न रहता था।

समय के कुचक्र ने ब्राह्मण का भी पतन कर दिया। वह अपने कर्तव्य धर्म को भुलाकर लोभ में फंसने लगा। कष्ट साध्य तपश्चर्याओं और लोक सेवा की प्रवृत्तियों से आंख चुरा कर—पैर पूजने और दक्षिणा बटोरने के लालच में फिसलने लगा। धीरे-धीरे जब यह प्रवृत्ति अधिक बढ़ी तो उसने दक्षिणा बटोरा ही अपना लक्ष्य बना लिया। जिस कार्य में उन्हें अधिक दक्षिणा मिले उसे ही करना उनने लक्ष्य बनाया। लोगों से कहने लगे स्वाध्याय, उपासना, तप, यज्ञ आदि से समय और धन खर्च करने की अपेक्षा भरपूर दक्षिणा हमें दो और स्वर्ग के अधिकारी बन जाओ। ऐसे अनेक श्लोक उनने पुस्तकों में सम्मिलित कर लिये और "दक्षिणावाद" का झण्डा गाड़ दिया। सारे धर्म कर्म की धुरी दक्षिणा बन गई।

ब्राह्मण को उसकी शारीरिक आवश्यकता की वस्तुएं अन्न, वस्त्र, दूध (गौ) यज्ञ में दी जाती थीं ऐसा प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है:—

गांदद्यात् यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा।

—कात्यायन

यज्ञ के अन्त में ब्राह्मण को गौ और वस्त्र देना चाहिए।

गौ, अन्न, वस्त्र, जैसी सस्ती और अधिक संख्या में जमा करने में असुविधा जनक वस्तुओं को लेने के स्थान पर उनने सोना चांदी आदि कीमती और अधिक मात्रा में आसानी से संग्रह हो सकने वाली वस्तुओं के विधान बनाये। यथा—

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।

सर्वेषामेव दानानं सुवर्णं दक्षिणेप्यते ।।

सोने का दान ही परमदान है। सोने की दक्षिणा ही विशेष दक्षिणा है। सब दानों में स्वर्ण का दान ही प्रशंसनीय है।

एकादश स्वर्ण निष्काः प्रदातव्या सदक्षिणाः ।
पलान्येकादश तथा दद्याद्वित्तानुसारतः ।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ।

यज्ञ कराने वाले को 11 अशर्फी देनी चाहिए। अपनी सामर्थ्य यदि ठीक हो तो 44 तोले सोना देना चाहिए। अन्य ब्राह्मणों को भी शक्ति भर दक्षिणा देनी चाहिए।

"दक्षिणा च फलप्रदा ।"

दक्षिणा ही फल देने वाली है।

सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूता च दक्षिणा ।

सब कर्मों में दक्षिणा ही सार है।

दक्षिणा दक्षतेः समर्धयात् कर्मणः व्यृद्ध समर्वयतीति ।

यदि यज्ञ कर्म में कुछ न्यूनता रह जाती है तो दक्षिणा बढ़ा देने से उसकी पूर्ति हो जाती है।

माषाणं षोडशादूर्ध्वं कुर्याद्धेम पवित्रकम् ।
तेभ्यः स्वल्पतरं न्यूनं न कुर्वीत् कदाचन ।

सोलह मासे से अधिक भारी सोने की पवित्री बना बनावें। इससे जरा भी कम वजन न हो।

वस्त्र युग्मं महावस्त्रं केयूरं कर्णभूषणम् ।
अङ्गु विभूषणाश्चैव मणि मन्थस्य भूषणम् ।।
कण्ठामरण युक्तानि प्रारम्भे धर्म कर्मणः ।
पुरोहिताय दत्वाऽथ ऋत्विग्भ्यश्चापि दावयेत् ।

—लिंग पुराण

धोती, दुपट्टा, दुशाला, कानों के आभूषण, कर्ण फूल, अंगूठी, कंकण, गले का हार यह वस्तुएं धर्म कर्म आरम्भ करते ही पुरोहित और ऋत्विजों को दान करें।

दक्षिणात्ह्युत्तमा मध्याचाधमेति त्रिधामता ।

तत्र सौवर्ण निष्काणि दस साहस्रिकोत्तमा।
तदर्धं मध्यमा प्रोक्ता तृतीय त्रिसहस्रिका।

—महाणावे

दक्षिणा तीन प्रकार की कही गई हैं। उत्तम 10 हजार निष्क [36250 रुपया] मध्यमा 5 हजार निष्क [18125 रुपया] अधम दक्षिणा तीन हजार निष्क [10875 रुपया] होती है।

कभी कभी ऐसा भी होता था कि मन चाही दक्षिणा न दे सकने पर यजमान लोग दक्षिणा उधार कर देते थे। उधार पटाने की जब उनमें सामर्थ्य न होती थी, ब्राह्मण तकाजा करते थे, फिर भी वह वसूल न हो पाता था, ऐसी दशा में यजमान को नरक जाने का भय दिखाया गया। देखिए।

कर्ताकिर्मणि पूर्णोऽपि तत्क्षणात् यदि दक्षिणाम्
न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवे नाज्ञानतोऽयवा।
मुहूर्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेद् ध्रु वम्।
एकरात्रे व्यतीते तु भवेद्दस गुणा च सा।
त्रिरात्रेवै दशगुणं सप्ताहे द्विगुणा ततः।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्द्धते।
सम्वत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटि गुणा भवेत्।
कर्म तद् यजमानानां सर्व वै निष्फलं भवेत्।
स च ब्रह्मस्त्रापहारी न कर्मार्होऽशुचिर्नरः।
दरिद्री व्याधि युक्तश्च तेन पापेन पातकी।
तद्गृहाधाति लक्ष्मी च शापं दत्त्वा सुदारुणम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्ध तर्पणम्।
एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तं पावका हुतम्।

—ब्रह्म वैतर्त

यज्ञ आदि कार्य पूरे हो जाने पर भी जो दैवयोग से अज्ञान वश दक्षिणा नहीं देता तो प्रति क्षण वह दक्षिणा दूनी होती जाती है। एक रात बीज जाने पर छह गुनी, तीन रात बीत जाने पर दस गुनी, सात दिन बीतने पर बीस गुनी, एक महीना बीत जाने पर लाख गुनी, एक वर्ष बीत जाने पर करोड़ गुनी हो जाती है। और यजमान का वह सब कर्म निष्फल ही जाता है। वह यजमान ब्रह्म-धन का चोर, सत्कर्मों के अयोग्य, और अपवित्र हो जाता है तथा उस भयंकर पाप के कारण दरिद्री एवं व्याधि ग्रस्त होता है। लक्ष्मी उसके घर से कठिन शाप देकर अन्यत्र

चली जाती है। पितृगण उसके हाथ का श्राद्ध तर्पण ग्रहण नहीं करते। देवता उसकी आहुति तथा पूजा को स्वीकार नहीं करते।

नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचितारं च दक्षिणाम् ।
मवेद् ब्रह्म स्वापहारी कुम्भी पाकं व्रजेद् ध्रुवम् ।
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः ।
ततो भवेत् स चाण्डालो व्याधि युक्ते दरिद्रकः ।
पातयेत् पुरुषान् सप्त पूर्वकान् वे पूर्व जन्मनः ।

उधार की हुई दक्षिणा का तकाजा करने पर भी यदि यजमान दक्षिणा नहीं देता तो वह ब्रह्म धन हारी निश्चय ही कुम्भी पाक नरक में पड़ता है वहां एक एक लक्ष वर्ष रहता है और यम दूतों द्वारा कुटता पिटता है। इसके बाद वह चाण्डाल, व्याधि ग्रस्त, दरिद्री बनता है। उसकी सात पीड़ी के पूर्वज नरक में चले जाते हैं।

यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीशठः
सपापी पुण्य हीनश्च **..................**

जो दक्षिणा रहित कर्म करता है वह मूढ़ बुद्धि, शठ, पापी, पुण्य हीन है।

लोभ अकेला नहीं बढ़ा। धन जमा करने के साथ साथ निमन्त्रण में बढ़िया बढ़िया स्वादिष्ट भोजनों, पकवानों और मिष्ठानों का स्वाद किससे छोड़ा जाता। निमन्त्रणों के स्वादिष्ट भोजनों के लिए झुण्ड के झुण्ड ब्राह्मण लालायित रहते। स्वल्प शक्ति वाले यजमान उतने लोगों को भोजन न करा पाते तो उनसे कहा जाता कि अमुक कार्य में इतने से कम ब्राह्मणों को भोजन कराये बिना काम नहीं चल सकता। क्योंकि यह शास्त्र की आज्ञा है।

गर्भाधानादि संस्कारे ब्राह्मणान् भोजयेद्दश
शतं विवाह संस्कारे पञ्चाशन्मेखलाविधौ ।
आवसथ्ये त्रियस्त्रिंशच्छ्रौताऽऽसधानेशतात्परम् ।
अष्टकं भोजयेद् भक्त्या तत्तत्संस्कारसिद्धये ।
सहस्रं भोजयेत् सोमे ब्राह्मणानां शतपशौ ।
चातुर्मास्येषु चत्वारि शतं पञ्च सुराग्रहे ।
अयुतं वाजपेये च ह्यश्वमेधे चतुर्गुणम् ।।

—यज्ञपार्श्व

गर्भाधान संस्कार में कम से कम 10, विवाह् में 100, यज्ञोपवीत संस्कार में 50, आवसथ्य में 33, श्रौता धान में 100 से भी अधिक और प्रत्येक संस्कारों की निर्विघ्न पूर्ति के लिए आठ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

सोम याग में एक हजार, पशु याग में सौ, चातुर्मास्य याग में चार सौ, देवाराधनादि कर्मों में पांच सौ, वाजपेय में दस हजार और अश्वमेध यज्ञ में चालीस हजार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

दक्षिणा के लिए आपस में संघर्ष होने लगे। सब को सम्मान मिले या न्यूनाधिक इस प्रश्न को लेकर आपस में झगड़े होने लगे और उसके लिए तरह् तरह् के विधान बनने लगे। यज्ञ में आचार्य बनने वालों ने अपना पक्ष मजबूत रखा:—

''आचार्ये द्विगुणं दद्यात्''

आचार्य को दूनी दक्षिणा दे।

''सर्वत्र द्विगुणं दद्यादाचार्याय तु दक्षिणाम्''।

अन्य ऋत्विजों से आचार्य को दूनी दक्षिणा दे।

आचार्यो यदि तुष्टः स्यात् सर्व शान्तिर्भविष्यति
आचार्य दक्षिणान् तस्याद्दीयतां प्रतिवासरम्
ऋत्विजभ्यो दक्षिणां दद्यात् यथाशक्ति ततः परम् ।

यदि आचार्य संतुष्ट है तो सब प्रकार शान्ति होगी। इसलिए आचार्य को नित्य दक्षिणा दे। ''इसके बाद'' ऋत्विजों को भी 'यथा शक्ति' दक्षिणा दे।

यज्ञ कराने की विधि अनेक ब्राह्मण जानते थे, पर सभी को यजमान न मिलते थे। कराने वाले अधिक और करने वाले कम हो गये तो पुरोहितों में फूट पड़ी। एक प्रदेश के निवासी दूसरे को बुरा कहने लगे। अपने को अधिकारी और दूसरों को अनधिकारी ठहराने लगे। किसी के सौन्दर्य में कोई कमी होती तो उसे भी यज्ञ कराने के अयोग्य ठहरा दिया जाता। इस प्रकार दूसरों को अयोग्य ठहरा कर अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए प्रयत्न होने लगे। अनेक प्रमाण भी बन गये यथा:—

मागधो वामनः कृष्णो द्विजो वर्ज्यो जपादिषु

मगध देश का निवासी, कद का ठिगना और काले वर्ण का ब्राह्मण जप आदि में वर्जित है।

द्विर्नग्न शुक्ल.........कुनखि वर्जम् ।

खुरदरे चमड़े का, गोरे वर्ण का,.........भद्दे नाखूनों वाला ब्राह्मण वर्जित है।

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराण पाठकाः
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीयाः कदा च न।

ज्योतिषी, अथर्व वेदी, काश्मीर देश निवासी, पुराणों का पाठ करने वाले ब्राह्मणों को श्राद्ध यज्ञ और बड़े दान में कदापि वरण न करना चाहिए।

आब्राह्मणस्तुषट्प्रोक्त इति शातातपोऽब्रवीत्।
आद्यस्तु राजभृत्यः स्याद् द्वितीयः क्रयविक्रयी
तृतीयो बहुयाज्ञारव्यश्चतुर्थोऽश्रौत याजकः।
पञ्चमो ग्रामयाजी च पष्ठेऽसन्ध्योद्विजोमतः।

यह छह प्रकार के ब्राह्मण अब्राह्मण (ब्राह्मणत्व से रहित) कहे गये हैं। (1) राज कर्मचारी (2) व्यवसायी (3) बहुत यज्ञ करने वाले (4) यज्ञ रहित (5) गांवों में हवन कराने वाले (6) सन्ध्या न करने वाले।

मागधो माथुरश्चैव कापटः कीकटानजौ।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पति समा यदि।

मागध [मगध देश वासी] माथुरा [मथुरा निवासी] कपटी, कीकट [विहार देश के निवासी] और आन देश (?) निवासी यह पांच प्रकार के ब्राह्मण यदि बृहस्पति के समान विद्वान हों तो भी इनको नहीं पूजना चाहिए।

कई ब्राह्मण कम दक्षिणा पर भी यज्ञ कराने को तैयार हो जाते, तो उनकी भर्त्सना की जाती और भय बताया जाता कि कम दक्षिणा का यज्ञ कराओगे तो सब कुछ नष्ट हो जायेगा। इसीलिए केवल उसी का यज्ञ कराओ जो भरपूर-मुंहमांगी—दक्षिणा दे।

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धधानो जितेन्द्रियः।
न त्वल्प दक्षिणैर्यज्ञैर्यजन्ते ह कथञ्चन।
इन्द्रियाणि यज्ञः स्वर्गमायुः कीर्ति प्रजापशून्।
हन्त्यल्प दक्षिणो यज्ञस्तस्यान्नाल्पधनोयजेत्।

ब्राह्मण चाहे यज्ञ के अतिरिक्त और कुछ शुभ कार्य भले ही करें पर न्यून दक्षिणा के यज्ञ कभी न करें। जिसमें थोड़ी दक्षिणा मिले उस यज्ञ से स्वास्थ्य, यश, स्वर्ग, आयु, कीर्ति, प्रजा पशु नष्ट होते हैं इसलिये कम दक्षिणा वाला यज्ञ न करें।

उपरोक्त श्लोक मानवीय ग्रन्थों में सम्मिलित कर दिये गये, जिससे धर्म भीरु यजमान उन्हें प्रामाणिक मानें और तद्नुसार कार्य करने को विवश हों। यों यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को दक्षिणा देना उचित और आवश्यक है, शास्त्रों में इसका उल्लेख भी है। साधारण विवेक बुद्धि से सभी यज्ञ करने वाले यथा शक्ति देते भी हैं पर "दक्षिणा वाद" को ऐसे निकृष्ट रूप में उपस्थित करने से यज्ञ कराने वालों का मान बड़ा नहीं, वरन् घटा ही। दक्षिणा और ब्रह्म भोज का बहुत बोझ होने पर यजमान लोगों के लिए यज्ञादि करना कठिन हो गया। उनकी उपेक्षा होने लगी और धीरे धीरे उनकी प्रथा ही घट गई। उसकी हानि सभी को हुई, ब्राह्मणों को सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी का पेट चीरने की कोशिश में केवल पछताना हाथ लगा। यजमान यज्ञ से प्राप्त होने वाले लाभों से वंचित हो गये। संसार में अवांछनीय वातावरण बढ़ा और उसकी शुद्धि न होने से जनता दैवी कृपाओं से वंचित होकर सुख शांति से वंचित हो गई। इस प्रकार 'दक्षिणा वाद' किसी के पक्ष में भी हितकर सिद्ध न हुआ, वरन् सभी की हानि हुई। यज्ञ रहित ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व से च्युत हुए और उनने अपनी वेदमाता तथा यज्ञपिता को उपेक्षित लांछित एवं अस्त व्यस्त दशा में डाल दिया।

यज्ञ में असुर अनेक प्रकार से विघ्न फैलाते हैं। ग्रन्थों में ऐसे अनेक वर्णन हैं। रामायण में उल्लेख है:—

जहँ जप यज्ञ जोग मुनि करहीं।
अति मारीच सुबाहु हि डरहीं॥
देखत जज्ञ निशाचर धावहिं।
करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

ताड़का राक्षसी द्वारा बार बार यज्ञ में विघ्न फैलाये जाने पर उसके रोकने के लिए विश्वामित्र जी ने राम को बुलाया था। यज्ञादि सत्कर्मों में असुर लोग इसलिए विघ्न फैलाते हैं कि सत् भावनाओं की वृद्धि से उनका विरोधी वातावरण पैदा होता है और अन्ततः उन्हें अपनी गतिविधि चलाना यहां तक कि जीवन धारण करना भी कठिन हो जाता है। असुरता तभी तक फलती फूलती है जब तक कि सतोगुणी देव शक्तियां सुप्त अवस्था में पड़ी रहती हैं। यज्ञ द्वारा उनका जागरण होने पर असुरता का निर्वाह कठिन हो जाता है। इसलिए असुर अपनी प्राण रक्षा के भय से यज्ञादि शुभ कर्मों में विघ्न फैलाते हैं।

"असुरता" एक भावना है जो अनेक मनुष्यों में पाई जाती है। "दक्षिणा वाद" भी एक असुरता है। स्वार्थ और लोभ को इतनी प्रधानता देना कि उससे एक शुभ कर्म की प्रगति में बाधा उपस्थित हो जाय सर्वथा निंदनीय है। विद्वानों का कर्त्तव्य है कि भूत काल की भूलों का

प्रायश्चित्य करने के लिए दूने उत्साह से यज्ञ पिता और गायत्री माता का गौरव बढ़ाने में उनका पुनरुत्थान करने में जुट जावें। स्वार्थ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि तो असुर हैं इन्हें किसी को भी विशेषतया ब्राह्मणों को तो अपने में स्थान देना ही नहीं चाहिए।

जब ऐसा देखा जाता है कि विवाहादि संस्कारों को उचित रीति से कराने में परस्पर सद्भाव पूर्वक सहयोग देने की अपेक्षा दोनों पक्षों के पण्डित मुर्गों की तरह आपस में इसलिए लड़ते हैं कि उनकी विद्वत्ता की छाप उपस्थित लोगों पर बैठ जाय और दूसरे पण्डित को लोग मूर्ख समझें। इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर कई बार वे लोग शुभ कर्म कर्त्ता के मन में ऐसा सन्देह पैदा कर देते हैं कि यह कार्य उस प्रकार करोगे तो उसका परिणाम बुरा होगा। बेचारा श्रद्धालु धर्म-प्रिय व्यक्ति संशय और भ्रम में पड़ जाता है और उस विचार को ही छोड़ बैठता है। पण्डित जी ने भ्रम इसलिए उत्पन्न किया था कि—"यह यजमान मुझे भारी विद्वान् माने, दूसरे लोग भी मेरी योग्यता को सबसे ऊपर मानकर मेरे ही यजमान बन जायं, मेरा सिक्का सब पर जम जाय।" पर उनकी यह इच्छा प्रायः पूरी नहीं होती। उन्हें यश और धन तो अपनी योग्यता और प्रारब्ध के अनुसार ही मिलता है पर एक अच्छे उत्साह में विघ्न अवश्य पड़ जाता है। 'अपना यजमान किसी दूसरे की सलाह क्यों ले रहा है? उनके अतिरिक्त और किसी पर श्रद्धा क्यों कर रहा है? उन्हीं के एक छत्र नेतृत्व में क्यों नहीं चलता? उनकी दक्षिणा के मार्ग में कोई अड़चन क्यों पैदा होती है?" इस प्रकार की ईर्ष्या द्वेष की भावनाओं से प्रेरित होकर अनेक पण्डित "बिल्ली खायेगी नहीं तो लुढ़का तो देगी ही।" वाली उक्ति चरितार्थ करते हैं। अपने को कुछ लाभ भले ही न हो पर अपनी नाक कटाकर भी दूसरे का शकुन बिगाड़ देने की नीति तो चरितार्थ हो ही जाती है।

यह भी 'असुर भावना' है। अनेक प्रकार के असुरत्वों में यह असुरत्व अधिक चिन्ता जनक है क्योंकि यह ब्राह्मणों, पण्डितों के मन में छिपकर बैठता है और वहां वह अपनी रक्षा के लिए 'पाण्डित्य' की मजबूत आड़ में छिप बैठता है। मुहम्मद...ने गायों का झुण्ड आगे करके पृथ्वीराज की सेना पर हमला किया था ताकि हिन्दू सेना गौ पर शस्त्र न उठाये और उनका आक्रमण सफल हो जाय। इसी प्रकार यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले असुर तत्व जहां अनेक प्रकार की अन्य अड़चनें उत्पन्न करते हैं वहां भोले भाले ब्राह्मणों को अपनी आड़ बनाकर भी भले कार्यों में विघ्न उत्पन्न करते रहते हैं। दक्षिणा आवश्यक है। वह सत्पात्रों को यज्ञ की पूर्णता के लिये अवश्य दी जानी चाहिए, पर 'दक्षिणा वाद' के असुर को इतना प्रबल न होने देना चाहिए कि उससे मूल उद्देश्यों पर ही आघात पहुंचे।

इस दिशा में हम सब को सावधान रहना चाहिये। जहां कहीं ऐसा असुरत्व छिपा हो, वहां से उसे हटाने का या असफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि यह अन्य असुरों की अपेक्षा अधिक भयानक है।

जो भोले व्यक्ति कोई शुभ आयोजन करने या कराने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं कर पाते, वे इस असुरत्व की प्रेरणा से विघ्न उत्पन्न करने में बड़े उत्साही और क्रियाशील बन जाते हैं।

----*----**

यज्ञ में सहयोग करना कर्त्तव्य है

****

यज्ञ की उपेक्षा करना, निन्दा करना, असहयोग करना या उसमें विघ्न उत्पन्न करना बहुत ही निन्दनीय बात है। शास्त्रकारों ने ऐसे लोगों की निन्दा की है और उन्हें अधोगामी बताया है। ऐसी बुराई से बचने का सभी को प्रयत्न करना चाहिए। यथा सम्भव स्वयं यज्ञ करना उचित है, कम से कम दूसरों के प्रयत्न में उत्साह जनक सहयोग तो अवश्य ही करना चाहिए।

तामिस्रमन्धतामिस्रं महा रौरव रौरवौ ।
असिपत्र वनं घोरं कालसूत्र मवीचिकम् ।
विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञ व्याधात कारिणाम् ।
स्थान मेतत् समाख्यातं स्वधर्म त्यागिनश्चये ।

विष्णु पुराण 6।1।41-42

वेद की निन्दा करने वाले तथा यज्ञ में विघ्न पहुंचाने वाले धर्मघाती के लिए तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महा रौरव, असिपत्र तथा कालसूत्र नामक नरक बने हुए हैं जहां वह चिरकाल तक घोर कष्ट पाता है।

देवान् ह वै यज्ञेन यजमानास्तानसुररक्षसानि ररक्षुर्न यक्ष्यध्वमिति । तद्यदरक्षं स्तस्माद्रक्षांसि ।

—शतपथ

एक समय देवगण यज्ञ कर रहे थे। राक्षसों ने उनके यज्ञ में अनेक प्रकार के विघ्न किये और कहा 'यज्ञ न करो'। इसी कारण उनकी 'राक्षस' संज्ञा हुई।

राजा बेन ने घोषणा की थी—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः कचित् ।

भागवत् 4।14।6

अर्थात् उनके राज्य में यज्ञ और दान न हों, उनकी यह नीति ही उसे दुर्गति को ले गई।

गीता में भगवान् ने यज्ञ रहित मनुष्य की भर्त्सना करते हुए कहा है कि ऐसे मनुष्यों के लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं।

नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।

गीता

हे अर्जुन, यज्ञ न करने वाले को इस लोक का भी सुख नहीं मिलता, फिर परलोक के सुख की तो बात ही क्या है।

नास्त्य यज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विन्दते शुभम्।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यतिच्छिन्न पर्णवत्

—शंख

यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वंचित हो जाता है। यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती और वह पेड़ से टूटे हुए पत्ते की तरह नष्ट हो जाता है।

या वै प्रजायज्ञे अनन्वाभक्ताः पराभूता वै ताः।
एवमेवैतद्या इमाः अपरा भूतास्ता यज्ञमुख आभजति।

(कृष्ण यजु. 3।1।20)

जो लोग यज्ञ में सहयोग नहीं करते वे निन्दनीय हैं। यज्ञ में सहयोग करने वाले लोग की प्रशंसा के पात्र हैं।

अयज्ञियो हतवर्चा भवति।

अथर्व. 12।2।37

यज्ञ रहित मनुष्य को तेज नष्ट हो जाता है।

इसलिए यज्ञ की न तो उपेक्षा करनी चाहिये और न उसका कभी असहयोग करना चाहिए। वरन् जहां सुन पाये कि अमुक जगह यज्ञ हो रहा है वहां बिना बुलाये जा पहुंचे और श्रद्धा पूर्वक परमार्थ बुद्धि से उसमें सहयोग करे। कहा भी है—

अनाहूतोऽध्वरं व्रजेत्।

अर्थात्—बिना बुलाया भी यज्ञ में सम्मिलित हो।

जो लोग सार्वजनिक यज्ञों की व्यवस्था करते हैं उन्हें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यज्ञ के निमित्त संग्रह हुए या दान में आये हुए धन में से एक पाई भी स्वार्थ में न लगावें। यज्ञ के धन में से चुराया हुआ पैसा मनुष्य की घोर दुर्गति का कारण होता है। यथा:—

यज्ञार्थंमर्थभिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः।

—मनु

यज्ञ के निमित्त इकट्ठे किये समस्त धन को जो यज्ञ में ही नहीं लगाता, वह सौ वर्ष तक मुर्गे या कौए के योनि में दुख भोगता है।

यज्ञार्थं लब्धमददद् मासः को कोऽपि वा भवेत् ।

—आचराध्याय 127

जो व्यक्ति यज्ञ के लिए एकत्रित धन को पूर्णतया यज्ञ में ही नहीं लगा देता वह कौए या मुर्गे की योनि में जाता है।

----*----**

यज्ञ में रही हुई त्रुटियां

****

यज्ञ में जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, कई बार वे सब उपलब्ध नहीं होतीं। कई बार यज्ञ आदि सत्कर्म करने की इच्छा रखने वाले की परिस्थिति वैसी नहीं होती कि उन सब वस्तुओं को जुटा सके। धनाभाव, समयाभाव अथवा जानकारी की कमी से वे सब वस्तुएं प्राप्त नहीं हो सकतीं, जिनका उस कर्म में विधान है। ऐसी दशा में कितने ही व्यक्ति निराश हो जाते हैं और उस शुभ कर्म को करने का विचार ही छोड़ देते हैं। कारण यह है कि कई अविवेकी मनुष्य इस प्रकार का भय लगा देते हैं कि पूर्ण विधान की सम्पूर्ण वस्तुएं पूरी पूरी मात्रा में न होंगी तो यज्ञ निष्फल जायगा या उसका विपरीत परिणाम होगा, कोई उलटी हानि होगी।

यह विचार धारा गलत है। पूरा न होने पर यथाशक्ति, सामर्थ्यानुसार या जितना भी बन पड़े उतना भी शुभ है। जो अशर्फी दान नहीं कर सकता, वह पैसा भी दान न करे यह कोई दलील नहीं है। जो अशर्फी या रुपया दान नहीं कर सकता, वह पाई पैसा जो कुछ भी सत्कर्म में लगा दे उतना ही उत्तम ही है। अन्य शुभ कर्मों की भांति यह बात यज्ञ पर भी लागू होती है। ऋषियों ने इस सम्बन्ध में भली प्रकार स्पष्टी करण किया है और बताया है कि लिखी हुई वस्तुएं उपलब्ध न होने पर उनके स्थान पर अन्य वस्तुएं लेकर भी काम चलाया जा सकता है या कम वस्तुएं भी ली जा सकती हैं। देखिये—

घृतार्थे गोघृतं ग्राह्यं तदभावे तु माहिषम् ।
आजं वा तदभावे तु साक्षातैलमयीप्यते ।।
तैलाभावे ग्रहीतव्यं तैलं जर्तिल सम्भवम् ।
तद्भावेऽतसीस्नेहः कौसुम्भः सर्पषोद्भवः ।
वृक्षास्नेहीऽथवा ग्राह्यः पूर्णलाभे परः परः ।
तदभावे यव व्रीहि श्यामाकान्यतमोद्भवः ।

—मण्डलन ।

यज्ञ में गाय का घी सर्वोत्तम है। वह न मिले तो भैंस का घी लें। उसके अभाव में बकरी का, वह भी न हो तो शुद्ध तेल–जर्तिल, तीसी, कसूम या सरसों का ले। वह भी प्राप्त न हो तो गोंद या जौ, चावल, सांवा आदि की चिकनाई से काम चलावे।

ऐसा ही मत बोधायन का भी है।

यथोक्तवस्त्व संपत्तौ ग्राह्यं तदनुकारियेत् ।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः
आज्यंद्रव्य मनादेशे जुहोतिषु विधीयते ।
दध्य लाभेपयः कार्यं मध्व लाभे तथा गुडः ।
घृत प्रतिनिधिं कुर्यात्पयोवादधिवा वुधः ।
आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्य मेव घृतं भवेत् ।
तदभावेमहिष्यास्तु आजमाविकमेववा ।
तदभावे तुतैलं स्यात्तदभावेतुजार्तिलम् ।
तदभावेतु कौसुम्भं तदभावे तु सार्पषम् ।

होमादि कर्म में विहित वस्तु प्राप्त न होने पर उसी के तुल्य अन्य पदार्थ से काम चलावें। जैसे जौ के न मिलने पर गेहूं, व्रीहि **(**बढ़िया चावल**)** न मिलने पर शालि के चावल, कुशों के अभाव में कांस या दूर्वा, दही के अभाव में दूध, मधु के अभाव में गुड़, घी के स्थान पर दूध या दही, लेवे। घी से मतलब गौ घृत का है पर वह न मिले तो भैंस, बकरी या भेड़ का लेले वह भी न मिले तो तिल के, कसूम के, सरसों आदि के तेल से होम करे।

शतपथ ब्राह्मण 11।2।4।4 में याज्ञवल्क्य जी आपतकालीन हवन के सम्बन्ध में इस प्रकार अपना अभिमत प्रकट करते हैं—

'यत्पयोनस्यात् केनं जुहुयात् ।'

प्रश्न—यदि दूध 'घी' न हो तो किससे हवन करे?

"व्रीहियवाभ्यामिति ।"

उत्तर—धान या जौ से करे।

'व्रीहि यवौ न स्यातां केन जुहुयात् ?'

प्रश्न—यदि धान और जौ न हों तो किससे हवन करे?

"या अन्या ओषधय इति"

उत्तर—जो और औषधियां हो उनसे करे।

"यदन्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति ?"

प्रश्न—यदि अन्य औषधि भी न हों तो क्या होम करे ?

"या आरण्या ओषधय इति"

उत्तर—जंगली अनाज से करे।

"यदि आरण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुयां इति ?"

प्रश्न—यदि जंगली अनाज भी न हो तो क्या करे?

'वानस्पत्येनेति'

उत्तर—वनस्पतियां हवन करे।

यदि वानस्पत्यं न स्यात् केन् जुहुयात् ?

प्रश्न—यदि वनस्पतियां भी न हों तो क्या करे?

'अद्भिरिति'

उत्तर—जल से करे।

'यदापोनस्युः केन जुहुयाइति ?'

प्रश्न—यदि जल भी न हो तो क्या करें?

नवाऽइह तर्हि किंच न सीदथैतद हुतैव सत्यं श्रद्धायामिति ।

यदि कुछ न हो तो बिना आहुति दिये ही श्रद्धा रूपी अग्नि में सत्य रूपी हविष्य की आहुति दे।

कुछ भी हव्य वस्तु न मिलने पर केवल समिधाओं से भी हवन करने का वेदों में उल्लेख आता है। देखिए—

यदग्ने कानि कानि चिदाते दारूणि दध्मसि ।
ताजुषस्वय विष्ठय ।
नहि मे अस्त्यध्यना न स्वधितिर्वनन्वति ।
अथैता दृग् भरामिते ।

ऋग्वेद 8।102।19, 20

अर्थात्—हे अग्नि देव, मैं केवल छोटी छोटी समिधाएं लाया हूं। इन्हें ही स्वीकार करो। मेरे पास न तो घी उत्पन्न करने वाली गौ है और न पेड़ काटकर बड़ी समिधाएं ला सकने लायक कुल्हाड़ी है। इसलिए जो कुछ लाया हूं उसे ही स्वीकार करो।

गीता में भगवान ने स्पष्ट किया है कि शुभ कर्मों का कभी अशुभ परिणाम नहीं होता "प्रत्यवायो न विद्यते" का आशय यही है कि सत्कर्म का अच्छा ही फल होता है बुरा नहीं। बुरा परिणाम तो कुविचारों या दुष्कर्मों से ही होना सम्भव है। सत्कर्मों में कोई त्रुटि रह भी जाय तो भगवान से सच्चे हृदय से क्षमा प्रार्थना कर लेने पर उसका दोष दूर होता है। यज्ञ के अन्त में

ऐसी ही क्षमा प्रार्थना की भी जाती है जिससे उसमें रही हुई त्रुटियों का सहज ही परिमार्जन हो जाता है। कहा गया है कि—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषुयत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिदिश्रुतिः ।

प्रमाद आदि कारणों से यदि कोई गलती यज्ञ कर्म में रह जाती है तो भगवान के स्मरण मात्र से ही उसकी पूर्णता हो जाती है।

ऐसे ही अभावों की पूर्ति के लिए क्षमा याचना स्वरूप यज्ञ के अन्त में भगवान से प्रार्थना की जाती है:—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्योवन्दे तमच्युतम् ।

जिनके स्मरण एवं नामोच्चारण से तप यज्ञ आदि की न्यूनता तुरन्त पूर्ण हो जाती है उन भगवान् को मैं भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हूं।

----***----

हवन संबंधी कुछ आवश्यक बातें

****

वैसे तो प्रत्येक कार्य ही विधि पूर्वक करना उचित है, परन्तु यज्ञ जैसे महान् धार्मिक कृत्य को तो और भी अधिक सावधानी, श्रद्धा, तत्परता पूर्वक करना चाहिए। जिन विधि विधानों का, नियमों का शास्त्रों में उल्लेख है उनका पालन करने में लापरवाही न करनी चाहिए। गीता ने ऐसे अधूरे और लापरवाही से किये हुए यज्ञ की निन्दा की है और उसे तामस ठहराया है।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धा विरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।

गीता 27।13

शास्त्र विधि से हीन अन्न दान से रहित, एवं बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किये हुए यज्ञ को 'तामस यज्ञ' कहते हैं।

यज्ञ के समय पालन करने योग्य कुछ नियमों की चर्चा नीचे की जाती है।

सुशुद्धैर्यजमानस्य ऋत्विग्मिय यथा विधि
शुद्ध द्रव्योपकरणैर्यष्टव्यमिति निश्चयः
तथा कृतेषु यज्ञेषु देवानां तोषणं भवेत् ।
श्रेष्ठ स्याद्देव संघेषु यज्वा यज्ञ फलं लभेत् ।

(महाभारत)

शुद्ध सुयोग्य ऋत्विजों से, विधि पूर्वक शुद्ध सामग्री से यजमान यज्ञ करावे। विधि पूर्वक यज्ञ सम्पन्न होने से देवता सन्तुष्ट होते हैं जिससे अच्छे सम्मान तथा यथोचित यज्ञ फल की प्राप्ति होती है।

होम देवार्चनाद्यास्तु क्रियास्वाचमने तथा ।
नैक वस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिकेतथा ।
वामेपृष्ठे तथा नाभौ कच्छत्रय मुदाहृतम् ।
त्रिभिः कच्छैः परिज्ञेयो विप्रो यः स शुचिर्भवेत् ।।
यज्ञोपवीते द्वेधार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावेतदिष्यते ।
खल्वाटस्वादि दोषेण विशिखश्चेन्नरोभवेत् ।

कौशीं तदाधारयीत ब्रह्मग्रन्थि युतांशिखाम् ।
कुश पाणि सदातिष्ठैद् ब्राह्मणोदम्भ अर्जितः ।
स नित्यं हन्ति पापानि तूल राशिमिवानिलः ।

होम, आचमन, सन्ध्या, स्वस्ति वाचन और देव पूजादि कर्मों को एक वस्त्र से न करें। नाभि पर तथा नाभि से वाम भाग में और एक पृष्ठ भाग में इस प्रकार धोती की तीन काछें लगाने से ब्राह्मण कर्म के योग्य शुद्ध होता है। श्रौत और स्मार्त कर्मों में दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिये। कन्धे पर अंगौछा न हो तो तीसरा यज्ञोपवीत उसके स्थान में ग्रहण करे। यदि गंजेपन के कारण शिर स्थान पर बाल न हों तो ब्रह्म ग्रन्थि लगाकर कुश की शिखा धारण करे। जो ब्राह्मण हाथ में कुश लेकर कार्य करता है वह पापों को नष्ट करता है।

संकल्पेन बिना कर्म यत्किंचित कुरुते नरः ।
फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् ।

संकल्प के बिना जो कर्म किया जाता है उसका आधा फल नष्ट हो जाता है। इसलिए संकलप पढ़ कर हवन कृत्य करावे।

जप होमोपवासेषु धौतवस्त्र धरो भवेत् ।
अलंकृतः शुचिर्मौनी श्रद्धावान् विजितेन्द्रियः ।।

जप, होम और उपवास में घुले हुए वस्त्र धारण करने चाहिए। स्वच्छ, मौन, श्रद्धावान् और इन्द्रियों को जीत कर रहना चाहिए।

अधोवायु समुत्सर्गे ग्रहासेऽनृत भाषणे ।
मार्जार मूषिक स्पर्शे आक्रुष्टे क्रोध संभवे ।
निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नयः स्पृशेत् ।

होम जप आदि करते हुए, अपान वायु निकल पड़ने, हंस पड़ने, मिथ्या भाषण करने, बिल्ली मूषक आदि के छू जाने, गाली देने, और क्रोध आ जाने पर हृदय तथा जल का स्पर्श करना ही प्रायश्चित है।

ग्रन्थों में अनेक विधि विधानों का अधिक खुलासा वर्णन नहीं है। संक्षिप्त रूप से ही संकेत कर दिये गये हैं। ऐसे प्रसंगों पर कुछ का स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

कर्त्रंगानामनुक्तौतु दक्षिणांगं भवेत्सदा ।
यत्रदिङ्नियमोनास्ति जपादिषु कथंचन ।
तिरुास्तत्रदिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्याऽपराजिता ।

आसीनः प्रह्वऊर्ध्वोवा नियमोयत्रनेदृशः ।
तदासीने न कर्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ।

जहां कर्त्ता का हस्त आदि नहीं कहा गया हो कि अमुक अंग से यह करे वहां सर्वत्र दाहिंना हाथ जानो। यहां जप होम आदि में जहां दिशा का नियम न लिखा हो वहां सर्वत्र पूर्व उत्तर और ईशान इनमें से किसी दिशा में मुख करके कर्म करे। जहां यह नहीं कहा गया हो कि खड़ा होकर, बैठकर या झुककर कर्म करे, वहां सर्वत्र बैठकर करना चाहिये।

सदोपवीतिनाभाव्यं सदा वद्ध शिखेन च ।
विशिखोव्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ।
तिलकं कुंकुमे नैव सदा मंगल कर्मणि ।
कारयित्वा सुमतिमान् न श्वेत चन्दनं मृदा ।

हवन आदि करते समय यज्ञोपवीत पहने, शिखा में गांठ लगाये रहे। खुली शिखा न रखे। सब मांगलिक कार्यों में केशर मिश्रित तिलक लगावे। सफेद चन्दन या मिट्टी का नहीं।

हविष्यान्नं तिला माषा नीवारा व्रीहयो यवाः
इक्षवः शालयो मुद्गा पयोदधि घृतं मधु ।
हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु ब्रीहय स्मृता ।
व्रीहीणामप्यलाभेतुदध्ना वा पयसाऽपिवा ।
यथोक्तघस्त्वसम्पत्तौग्राह्यं तदनुकल्पतः ।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालवः

तिल, उड़द, तिन्नी, भदौह धान, जौ, ईख, वासमती चावल, मूंग, दूध, दही, घी और शहद ये हविषान्न हैं। इनमें जौ मुख्य है उसके बाद धान। यदि धान न मिले तो दूध अथवा दही से काम चलावे। कही हुई वस्तु न मिले तो उसके स्थान पर अनुकल्प, समान गुण वाली वस्तु ले लेनी चाहिए।

स्नास्यतो वरुणस्तेजी जुह्तोऽग्नि श्रियं हरेत् ।
भुञ्जानस्य यमस्त्वायुः तस्यान्न व्याहरेत् त्रिषु ।।

स्नान करते समय बोलने वाले का तेज वरुण हरण कर लेता है। यज्ञ करते समय बोलने वाले की श्री अग्नि हरण करता है। भोजन करने में बोलने वाले की आयु यम हरण कर लेते हैं।

क्षुतृटक्रोध समायुक्तो हीन मंत्रो जुहोति यः
अप्रवृद्धे सूधमे वा सोऽन्धः स्यादन्य जन्मनि ।

भूख, प्यास क्रोध आदि से व्याकुल व्यक्ति, मन्त्र हीन, अप्रज्ज्वलित अग्नि में हवन करता है तो वह अगले जन्म में अन्धा होता है।

न मुक्त केशोजुहुयान्नानिपातित जानुकः
अनिपातितजानुस्तु राक्षसैहियते हविः ।

खुले बाल रखकर एवं जानु खुली रखकर हवन न करे। क्योंकि ऐसा करने से राक्षस हवि का हरण कर लेते हैं।

तिलार्धं तण्‌ुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा
यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्द्धंच घृतस्मृतम् ।

—आनन्द रामायण

तिल से आधे चावल, चावल से आधे जौ, जौ से आधी शकर, और आधा घी लेना चाहिए।

सर्व काम समृद्धयर्थं तिलाधिकयं सदैव हि ।

—त्रिकारिका

सब कामों में सफलता के लिए तिल अधिक लेने चाहिए।

शमीपलाश न्यग्रोध प्लक्षवैकंकतोद्भवाः ।
अश्वत्थोदुमवरोविल्वश्चन्दनः सरलस्तथा ।
शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः ।

शमी (छोंकर) पलाश (ढाक) बट प्लक्ष (पाकर) विकंकृत, पीपल, उदुम्बर (गूलर) बेल, चन्दन, सरल, शाल, देवदारु और खैर यह याज्ञिक वृक्ष है इनकी समिधा होम में लगावे।

पलाशाऽश्वत्थन्यग्रोध प्लक्षवैकंकतोद्भवाः ।
वैतसौदुम्वरो विल्वश्चन्दनः सरलस्तथा ।।
शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः

—ब्रह्म पुराण

ढाक, पीपल, बरगद, वैकंकत, वेंत, गूलर, बेल, चन्दन, साल, देवदारु, कत्था इनकी लकड़ी याज्ञिक कही गई है।

निवासा ये च कीटानां लताभिर्वेष्टिताश्च ये ।
अयज्ञिका गर्हिताश्च वल्मीकैश्च समावृताः
शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान् महीरुहान् ।

अन्यांश्चैवं विधान् सर्वान् यज्ञयांश्च विवर्जयेत् ।

—वायु पुराण

कीड़े मकोड़ों से भरे हुए लताओं से लिपटे हुए, इमली, कटहर, आदि वृक्ष यज्ञ के लिए उपयुक्त नहीं। कांटेदार, दीमकों की बावी वाले जिनमें पक्षी रहते हों, ऐसे वृक्ष यज्ञ के लिए ग्राह्य हों तो भी काम में नहीं लेने चाहिए।

मन्त्रेणोङ्कार पूतेन स्वाहान्तेन विलक्षणः ।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन्वै मंत्र देवताम् ।

आरंभ में ॐकार और अन्त में स्वाहा लगाते हुए मन्त्र देवता का ध्यान करते हुए स्वाहा के अन्त में आहुति छोड़े।

यदालेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ।

—मुण्डकोपनिषद्

जब अग्नि भली भांति जल चुके और उसकी लपटें उठने लगे तब उसमें आहुतियां देनी चाहिए।

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गरिणि च मानवः
मन्दाग्नि रामयावीं च दरिद्रश्चापि जायते ।
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथञ्चन ।

—छान्दोग परिशिष्ट

जो मनुष्य बिना प्रज्ज्वलित, बिना अंगार की अग्नि में आहुति देता है वह मन्दाग्नि आदि उदर रोगों का दुख पाता है। इसलिए प्रज्ज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए।

ऋत्विजा जुह्यता वह्नौ वहिः पतति यद्धविः ।
स ज्ञेयो वारुणो भागः पक्षेप्यो विमले जले ।।

—शौनक

अग्नि में हवन करते समय जो हवि बाहर गिर पड़े उसे वरुण का भाग मान कर पवित्र जलाशय में विसर्जित करना चाहिए।

उत्तानेन तु हस्तेन अंगुष्ठाग्रेण पंडितम् ।
संहतांगुलि पाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः ।।

सीधे हाथ से एवं अंगूठे के अग्रभाग से दबाये हुए, परस्पर मिली हुई अंगुली युक्त हाथ से हवन करे।

कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया
उदकेन बिना पूजा बिना दर्भेण या क्रिया ।

जल और कुश के उपयोग बिना पूजा सफल नहीं होती।

कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवर्द्धय ।

—हेमाद्रौ

कुश के स्थान पर दूब का उपयोग कर लेने से भी मंगल की वृद्धि होती है।

हवन के समय वेद मन्त्रों को सस्वर उच्चारण करने या छन्द, ऋषि, दुवता आदि का विनियोग पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यथा—

उपस्थाने जपे होमे दोहे च यज्ञ कर्मणि ।
हस्त स्वरं न कुर्वीत शेषास्तु स्वर संयुता ।

श्रोतोल्लास

उपस्थान, जप, गोदोहन **(**श्रौत याग**)** और यज्ञ कर्मों में हस्त स्वर लगाने की आवश्कयता नहीं है। अन्य कर्मों में लगावे।

जपेहोमे मखे श्राद्धेऽभिषेके पितृकर्मणि ।
हस्तस्वरं न कुर्वीत सन्ध्यादौ देव पूजने ।

—स्मार्त प्रभुः

जप, होम, यज्ञ, श्राद्ध, अभिषेक, पितृकर्म, संध्या तथा देव पूजन इनमें हस्त स्वर का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

उपस्थाने जपे होमे मार्जने यज्ञ कर्मणि ।
कण्ठ स्वरं प्रकुर्वीत......................

—स्मार्त प्रभुः

उपस्थान, जप, होम, मार्जन तथा यज्ञ में कण्ठ स्वर पर्याप्त है।

न च स्मरेत् ऋषि छनछः श्राद्धे वैतानिकेमखें ।
ब्रह्म यज्ञे च वै तद्वत्तथोङ्कार विवर्जयेत् ।

श्राद्ध, अग्निहोत्र, एवं ब्रह्म यज्ञ में ऋषि, छन्द, एवं ओंकार का स्मरण वर्जित है।

हवन करते समय किन किन उंगलियों का प्रयोग किया जाय इसके सम्बन्ध में मृगी और हंसी मुद्रा को शुभ माना गया है। 'मृगी' मुद्रा वह है जिसमें अंगूठा, मध्यमा और अनामिका उंगलियों से सामग्री होमी जाती है। हंसी मुद्रा वह है जिसमें सबसे छोटी उंगली कनिष्ठका का उपयोग न करके शेष तीन उंगलियों तथा अंगूठे की सहायता से आहुति छोड़ी जाती है।

होमे मुद्रा स्मृतास्तिस्रो मृगी हंसी च सूकरी ।
मुद्रां बिना कृतो होमः सर्वो भवति निष्फलः ।
शान्तके तु मृगी ज्ञेया हंसी पौष्टिक कर्मणि ।
सूकरी त्वभिचारे तु कार्ण तन्त्र विदुत्तमैः ।

—परशुराम कारिका ।

होम में मृगी, हंसी, तथा सूकरी यह तीन मुद्रा प्रयुक्त होती हैं। मुद्रा रहित हवन निष्फल होता है। शान्तिकर्मों में मृगी मुद्रा, पोष्टिक कर्मों में हंसी और अभिचार कर्मों में सूकरी मुद्रा प्रयुक्त होती है।

कनिष्ठा तर्जनी हीना मृगी मुद्रा निरुच्यते ।
हंसी मुक्त कनिष्ठा स्यात् कर संकोच सूकरी ।

—परशूराम कारिका ।

कनिष्ठा और तर्जनी उंगलियां जिसमें प्रयुक्त न हों वह मृगी मुद्रा है कनिष्ठा रहित हंसी मुद्रा होती है और हाथ को सकोड़ने से सूकरी मुद्रा बन जाती है।

यस्य देवस्य यो होमस्तस्य मन्त्रेण होमयेत् ।

[पद्म पुराण—भूमिखण्ड]

जो होम जिस देवता के उद्देश्य से किया जाय उसी के मन्त्र से हवन होना चाहिये।

देवयात्रा विवाहेषु यज्ञ प्रकरणेषु च ।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पष्टं न विद्यते ।

अत्रि स्मृति 246

देव यात्रा विवाह, यज्ञ एवं उत्सवों में छूतछात का विचार नहीं किया जाता।

शुभ मुहूर्त देखकर उत्तम वेला में शुभ कर्म करना सदा ही उचित है पर अनावश्यक रूप से अधिक लम्बे समय तक मुहूर्त आदि की अड़चन के कारण उसे टालना ठीक नहीं। क्योंकि

टालने से आज का उत्साह एवं संकल्प ठण्डा पड़ सकता है या कोई अन्य विघ्न उसमें रोड़ा अटका सकता है इसलिए शुभ कार्य को शीघ्र करना उचित है।

यदैव जायते वित्तं चित्तं श्रद्धा समन्वितम् ।
तदैव पुण्यकालोऽयं यतोस्त्रियत जीवितम्
अतः सर्वेषु कालषु रुद्रयज्ञ शुभप्रदः ।।

—परशुरामः

जब पैसे की सुविधा हो, जब चित्त में श्रद्धा हो तभी पुण्य काल **(**शुभ मुहूर्त**)** है। क्यों इस नाशवान् जीवन का कोई भरोसा नहीं। रुद्र यज्ञ के लिए सभी समय शुभ हैं।

जन्म मरण आदि के कारण जो सूतक हो जाते हैं उनमें शुभ कर्म निषिद्ध हैं। जब तक शुद्धि न हो जाय तब तक यज्ञ, ब्रह्म भोजन आदि नहीं किये जाते। परन्तु यदि वह शुभ कार्य प्रारम्भ हो जाय तो फिर सूतक उपस्थित होने पर उस कार्य का रोकना आवश्यक नहीं। ऐसे समयों पर शास्त्रकारों की आज्ञा है कि उस यज्ञादि कर्म को बीच में न रोक कर उसे यथावत् चालू रखा जाय। इस सम्बन्ध में कुछ शास्त्रीय अभिमत नीचे दिये जाते हैं—

यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ भ्रियेत वा ।
पूर्व संकल्पिते कार्ये न दोष स्तत्र विद्यते ।
यज्ञ काले विवाहे च देवयागे तथैव च ।
हूय माने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम् ।

दक्षस्मृति 6।19-20

यज्ञ हो रहा हो ऐसे समय यदि जन्म या मृत्यु का सूतक हो जाय तो इससे उस पूर्व संकल्पित यज्ञादि कर्म में कोई दोष नहीं होता। यज्ञ, विवाह, देवयोग आदि के अवसर पर जो सूतक होता है उसके कारण कोई कार्य नहीं रुकता।

न देव प्रतिष्ठोत्सर्गविवाहेषु देशविभ्रमे,
नापद्यपि च कष्टायामाशौचम् ।

—विष्णु स्मृति

देव प्रतिष्ठा, उत्सर्ग, विवाह आदि में उपस्थिति सूतक से बाधा नहीं।

विवाह दुर्ग यज्ञेषु यात्रायं तीर्थ कर्मणि ।
न तत्र सूतं तद्धत् कर्म याज्ञादि कारयेत ।

—पैठानसि

विवाह, किला बनाना, यज्ञ, यात्रा, तीर्थ कर्म के समय यदि सूतक हो जाय तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

यज्ञ करने वाले यजमान पर ही नहीं यह बात ऋत्विज् ब्रह्मा आचार्य आदि पर भी लागू होती है। उसके यहां कोई सूतक हो जाय तो वे यज्ञ करने कराने या उसमें भाग लेने के अनधिकारी नहीं होते। यथा—

ऋत्विजा यजमानस्य तत्पत्न्या देशिकस्यच ।
कर्ममध्ये तु नाशौचमन्त एव तु तद्भवेत् ।।

ऋत्विजों को, यजमान को, यजमान की पत्नी को, और आचार्य को—जन्म या मरण का सूतक नहीं लगता। यज्ञ कर्म की पूर्ति हो जाने पर ही उन्हें सूतक लगता है।

ऋत्विजां दीक्षितानां च याज्ञाकं कर्म कुर्वताम् ।
सत्रिव्रति ब्रह्मचरिदातृ ब्रह्म विदां तथा ।
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देश विप्लवे ।
आपद्यपि हि कष्टा यां सद्यःशौचं विधीयते ।

—याज्ञवल्क्य

ऋत्वज, दीक्षित, अन्नसत्रि, चान्द्रायण आदि व्रतों में तत्पर, ब्रह्मचारी, दानी, ब्रह्मज्ञानी, और याज्ञिकों की दान में, विवाह में, यज्ञ में, संग्राम में, देश विप्लव में और आपत्ति में सद्यः **(**तुरन्त**)** शुद्धि हो जाती है।

यज्ञ के मध्य सूतक हो जाने पर तात्कालिक स्नान कर लेने मात्र से उसकी शुद्धि हो जाती है। ऐसे अवसरों पर सूतक निवृत्ति के लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती। यथा—

यज्ञे विवाह काले च सद्यः शौचं विधीयते ।
विवाहोत्सव यज्ञेषु अन्तरामृत सूतके ।
पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ।

अत्रि सं. 98

यज्ञ और विवाह में जन्म या मृत्यु का सूतक **(**अशौच**)** आजाय तो उसकी सद्यः शुद्धि हो जाती है। उस पूर्व संकल्पित कार्य या विवाहादि में कोई बाधा नहीं पड़ती।
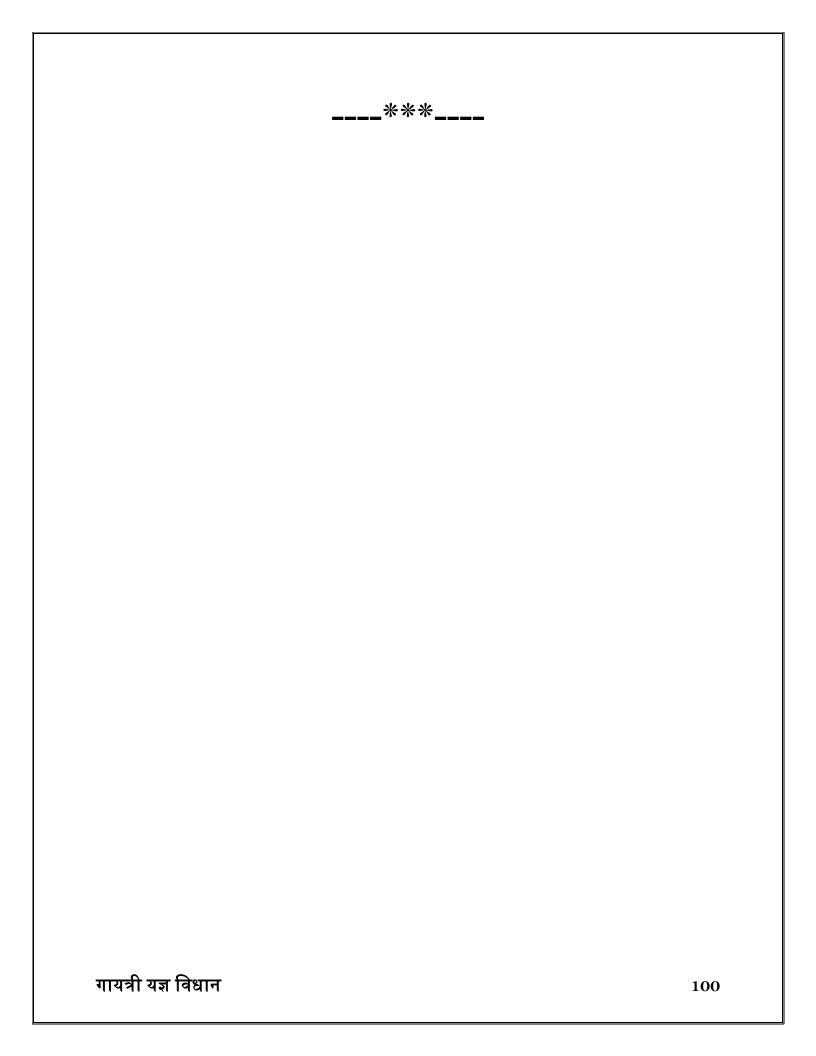
हवन सामग्री

******

प्रत्येक ऋतु में आकाश में भिन्न भिन्न प्रकार के वायुमण्डल रहते हैं। सर्दी, गर्मी, नमी वायु का भारीपन, हलकापन, धूलि, धुंआ, बर्फ आदि का भरा होना। विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं की उत्पत्ति वृद्धि एवं समाप्ति का क्रम चलता रहता है। इसलिए कई बार वायुमण्डल स्वास्थ्यकर होता है कई बार अस्वास्थ्यकर हो जाता है। इस प्रकार की विकृतियों को दूर करने और अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के लिए हवन में ऐसी औषधियां प्रयुक्त की जाती हैं जो इस उद्देश्य को भली प्रकार पूरा कर सकती हैं। वर्षा में हैजा, दस्त, फुन्सी, खुजली, आदि रोग फैलते हैं। शरद ऋतु में मलेरिया, जूड़ी, हड़फूटन, सिरदर्द आदि का जोर चलता है। शीत ऋतु में वातरोग, दर्द, खांसी, जुकाम, निमोनिया आदि बढ़ते हैं, गर्मियों में लू लगना, दाह, दिल की धड़कन, कब्ज आदि की अधिकता रहती है। क्योंकि इस समय वायुमण्डल में वैसे ही तत्वों की अधिकता रहती है। हवन के धूम्र से आकाश की आवश्यक सफाई हो जाती है। हानिकारक पदार्थ नष्ट होते और लाभदायक तत्व बढ़ते हैं। फलस्वरूप वायुमण्डल सब किसी के लिए आरोग्य वर्धक हो जाता है।

किस ऋतु में किन वस्तुओं का हवन करना लाभदायक है। और उनकी मात्रा किस परिणाम से होनी चाहिए इसका विवरण नीचे दिया जाता है। पूरी सामग्री की तोल 100 मान कर प्रत्येक औषधि का अंश उसके सामने रखा जा रहा है। जैसे किसी को 100 छटांक सामग्री तैयार करनी है तो छरीलावा के सामने लिखा हुआ 2 भाग [2 छटांक] मानना चाहिए इसी प्रकार अपनी आवश्यकतानुसार तोल में न्यूनता या अधिकता कर लेनी चाहिए।

यह सभी सामग्री भली प्रकार देखभाल कर लेनी चाहिए। बहुधा खोटे दुकानदार सड़ी गली, घुनी हुई, बहुत दिन की पुरानी हीन वीर्य अथवा किसी की जगह उसी शकल की दूसरी सस्ती चीज दे देते हैं। इस गड़बड़ी से बचने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। सामग्री को भली प्रकार धूप में सुखाकर उसे जौकुट कर लेना चाहिए।

वसन्त ऋतु

छरीलावा 2 भाग, तालीसपत्र 2 भाग, पत्रज 2 भाग, मुनक्का 5 भाग, लज्जावती 1 भाग, शतीलचीनी 2 भाग, कचूर 2।। भाग, देवदारु 5 भाग, गिलोय 5 भाग, अगर 2 भाग, तगर 2 भाग, केसर 1 का 6 वां भाग, इन्द्रजौ 2 भाग, गुग्गुल 5 भाग, चन्दन [स्वेत, लाल, पीला] 6 भाग, जावित्री 1 का 3 वां भाग, जायफल, 2 भाग, धूप 5 भाग, पुष्कर मूल 5 भाग, कमलगट्टा 2 भाग,

मजीठ 3 भाग, वनकचूर 2 भाग, दालचीनी 2 भाग गूलर की छाल सूखी 5 भाग, तेज वल [छाल और जड़] 2 भाग, शंखपुष्पी 1 भाग, चिरायता 2 भाग, खस 2 भाग, गोखरू 2 भाग, खांड या बूरा 15 भाग, गौ घृत 10 भाग।

ग्रीष्म ऋतु

तालपर्णी 1 भाग, वायविडंग 2 भाग, कचूर 2।। भाग, चिरोंजी 5 भाग, नागरमोथा 2 भाग, पीला चन्दन 2 भाग, छरीला 2 भाग, नर्मली फल 2 भाग, सतावर 2 भाग, खस 2 भाग, गिलोय 2 भाग, धूप 2 भाग, दालचीनी 2 भाग, लवंग 2 भाग, गुलाब के फूल 5।। भाग, चन्दन 4 भाग, तगर 2 भाग, तूम्बर 5 भाग, सुपारी 5 भाग, तालीसपत्र 2 भाग, पद्माख 2 भाग, दारु हल्दी 2 भाग, लाल चन्दन 2 भाग, मजीठ 2 भाग, शिलारस 2।। भाग, केसर 1 का 6 वां भाग, जटामांसी 2 भाग, नेत्रवाला 2 भाग, इलायची बड़ी 2 भाग, उन्नाव 2 भाग, आंवले 2 भाग, बूरा या खांड 15 भाग, घी 10 भाग।

वर्षा ऋतु

काला अगर 2 भाग, इन्द्र जौ 2 भाग, धूप 2 भाग, तगर 2 भाग, देवदारु 5 भाग, गुग्गुल 5 भाग, राल 5 भाग, जायफल 2 भाग, गोला 5 भाग, तेजपत्र 2 भाग, कचूर 2 भाग, बेल 2 भाग, जटामांसी 5 भाग, छोटी इलायची 1 भाग, बच 6 भाग, गिलोय 2 भाग, तुलसी के बीज 3 भाग, वायविडंग 2 भाग, श्वेत चन्दन का चूरा 5 भाग, नाग केसर 2 भाग, चिरायता 2 भाग, छुहारे 5 भाग, संखाहुली 1 भाग, मोचरस 2 भाग, नीम के पत्ते 5 भाग, गो घृत 10 भाग, खाण्ड या बूरा 15 भाग।

शरद् ऋतु

सफेद चन्दन 5 भाग, चन्दन सुर्ख 2 भाग, चन्दन पीला 2 भाग, गुग्गुल 5 भाग, नाग केशर 2 भाग, इलाइची बड़ी 2 भाग, गिलोय 2 भाग, चिरौंजी 5 भाग, गूलर की छाल 5 भाग, दाल चीनी 2 भाग, मोचरस 2 भाग, कपूर कचरी 5 भाग, पित पापड़ा 2 भाग, अगर 2 भाग, भारंगी 2 भाग, इन्द्र जौ 2 भाग, असगन्ध 2 भाग, शीतल चीनी 2 भाग, जायफल 2 भाग, पत्रज 2 भाग, चिरायता 2 भाग, केसर 1 का 6 वां भाग, किशमिस 6 भाग, बालछड़ 5 भाग, तालमखाना 2 भाग, सहदेवी 1 भाग, धान की खील 2 भाग, कचूर 2।।। भाग, घृत 10 भाग, खाण्ड या बूरा 15 भाग।

हेमन्त ऋतु

कूट 2 भाग, मूसली काली 2 भाग, घोड़ावच 2 भाग, पित पापड़ा 2 भाग, कपूर 2 भाग, कपूर कचरी 4 भाग, गिलोय 2 भाग, पटोल पत्र 2 भाग, दालचीनी 2 भाग, भारंगी 2 भाग, सोंफ 2 भाग, मुनक्का 3।।। भाग, गुग्गुल 5 भाग, अखरोट की गिरी 4 भाग, पुष्कर मूल 2 भाग, छुहारे 5 भाग, गोखरू 2 भाग, कोंच के बीज 1 भाग, बादाम 2 भाग, मुलहटी 2 भाग काले तिल 5 भाग, जावित्री 2 भाग, लाल चन्दन 2 भाग। मुश्कवाला 1, तालीस पत्र 2, गोला 5, तुम्वुरु 5, खाण्ड या बूरा 15, गोघृत 10, रासना 1।

शिशिर ऋतु

अखरोट 4, कचूर 2, वायविडंग 2, इलायची बड़ी 2, मुलहटी 2, मोचरस 2, गिलोय 2, मुनक्का 5, रेणुका **(संभालू)** 1, काले तिल 4, तज 2, चन्दन 4, चिरायता 2, छुहारे 4, तुलसी के बीज 4, गुग्गुल 3, चिरौंजी 2, काकड़ासिंगी 2, शतावर 2, दारू हल्दी 2, संख पुष्पी 2, पद्माख 2, कोंच के बीज 1, जटामांसी भोजपत्र 1, तुम्बुर 5, राल 5, सुपारी 2, घी 11।।, खाण्ड या बूरा 15।

सर्व ऋतु सामान्य हवन सामग्री

सफेद चंदन का चूरा 4, अगर 2।।, तगर 2।।, गुग्गुल 5, जायफल 1।, जावित्री 1। दालचीनी 2।। तालीसपत्र 2।। पानड़ी 2।।, लोंग 2।।, बड़ी इलायची 2।। गोला 5, छुहारे 5, नागर मौथा 2।।, गुलसुर्ख 5, इन्द्र जौ 2।।, कपूर कचरी 2।।, आंवला 2।।, किशमिश 5, बालछड़ 5, नाग केशर 1। तुम्बुर 5, सुपारी 5, नीम के पत्ते या राल 5, बूरा या खाण्ड 10, घी 10।

ब्रीहीन् यवान्वा हविषि

—कात्यायन श्रौत सूत्र 1।9।1

होमं समारमेत् सर्पिर्यव ब्रीहि तिलादिना ।

—अनुष्ठान प्रकाश

इन प्रमाणों से तिल, जौ, चावल और घृत को हवि द्रव्य माना गया है। इनका सम्मिश्रण प्रत्येक हवन सामग्री में होना चाहिए। कहीं-कहीं तो इन्हीं की प्रधानता रहती है और सुगन्धित द्रव्यों का बहुत कम भाग रखा जाता है। कुछ प्रमाण भी इस सम्बन्ध में उपलब्ध होते हैं। जिनमें कहा गया है कि सुगन्धित द्रव्यों एवं औषधियों की अपेक्षा यही द्रव्य अधिक होने चाहिए। यथा—

तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा
अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवैः समाः ।

—आनन्द रामायण

जौ से तिल दूने रखे और गुग्गुल आदि अन्य सुगन्धित पदार्थ यवों के बराबर ही रखे।

पञ्च भागा स्तिलाः प्रोक्ता स्त्रिभागो यव एव च ।
द्वौ भागौ तण्डुलस्योक्तौ भागैकं गुग्गुलादिकम् ।
रुद्र भागैः कृते होमे जायते सिद्धिरुत्तमा ।

पांच भाग तिल, तीन भाग जौ, दो भाग चावल, एक भाग गुग्गुल आदि सुगन्धित दुव्य इस प्रकार ग्यारह भाग हवनीय द्रव्य रखने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती।

इस उपरोक्त क्रम के कई भेद हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि तिल, जौ, चावल की मात्रा कम और सुगन्धित द्रव्यों की मात्रा अधिक होनी चाहिए। वस्तुतः होम द्रव्य चार प्रकार के कहे गये हैं (1) सुगन्धित केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि (2) पुष्टिकारक—घृत, फल, कन्द, अन्न, जौ, तिल, चावल आदि (3) मिष्ट—शकर, छुहारा, दाख आदि (4) रोक नाशक—गिलाये, जायफल, सोमवल्ली आदि। विशेष हवनों में स्थली पाक से भी होम होता है। उसमें खीर, हलुआ, लड्डू आदि मिष्ठानों का उपयोग होता है।

उपरोक्त चारों प्रकार की वस्तुएं हवन में प्रयोग होनी चाहिए। अन्नों के हवन से मेघ मालाएं अधिक अन्न उपजाने वाली वर्षा करती हैं। सुगन्धित द्रव्यों से विचार शुद्ध होते हैं, मिष्ट पदार्थ स्वास्थ्य को पुष्ट एवं शरीर को पुष्ट एवं शरीर को आरोग्य प्रदान करते हैं इसलिए चारों प्रकार के पदार्थों को समान महत्व दिया जाना चाहिए। यदि अन्य वस्तुएं उपलब्ध न हों तो जो मिले उसी से अथवा केवल तिल जौ चावल से भी काम चल सकता है।

समिधायें—

कुछ अन्य समिधाओं का भी वाशिष्ठी हवन पद्धति में वर्णन है। उसमें ग्रहों तथा देवताओं के हिसाब से भी कुछ समिधाएं बताई गई हैं। तथा विभिन्न वृक्षों की समिधाओं के फल भी अलग अलग कहे गये हैं। यथा—

समिदर्कमयी मानोः पालाशी शशिनस्तथा ।
खादिरी भूमिपुत्रस्य त्वपामार्गी बुधस्य च ।।
गुरौरश्वत्थजा प्रोक्ता शक्रस्यौदुम्बरी मता ।
शमीनां तु शनेः प्रोक्ता राहोर्दूर्वामयी तथा ।।
केतोर्दर्भमयी प्रोक्ताऽन्येषां पालाशवृक्षजा ।।1।।
आर्की नाशयते व्याधि पालाशी सर्वकामदा ।
खादिरी त्वर्थलाभायापामार्गी चेष्टदर्शिनी ।

प्रजालाभाय चाश्वत्थी स्वर्गायौदुम्बरी भवेत् ।
शमी शमयते पापं दूर्वा दीर्घायुरेव च ।
कुशाः सर्वार्थकामानां परमं रक्षणं विदुः ।।2।।
यथा बाणप्रहाराणां कवचं वारकं भवेत् ।
तद्वद्दैवोपघातानां शान्तिर्भवति बारिका ।।
यथा समुत्थितं यन्त्रं यन्त्रेण प्रतिहन्यते ।
तथा समुत्थितं घोरं शीघ्रं शान्त्या प्रशाम्यति ।।3।।

अब समित (समिधा) का विचार कहते हैं—सूर्य की समिधा मदार की, चन्द्रमा की पलाश की, मंगल की खैर की, बुध की चिड़चिड़ा की, बृहस्पति की पीपल की, शुक्र की गूलर की, शनि की शमी की, राहु की दूर्वा की, और केतु की कुशा की समिधा कही गई है। इनके अतिरिक्त देवताओं के लिए पलाश वृक्ष की समिधा जाननी चाहिए। मदार की समिधा रोग को नाश करती है पलाश की सब कार्य सिद्ध करने वाली, खैर की धन देने वाली, चिड़चिड़ा की इष्टसिद्ध करने वाली, पीपल की प्रजा (सन्तति) लाभ कराने वाली, गूलर की स्वर्ग देने वाली, शमी की पाप नाश करने वाली, दूर्वा की दीर्घायु देने वाली और कुशा की समिधा सभी मनोरथ को सिद्ध करने वाली होती है। जिस प्रकार बाण के प्रहारों को रोकने वाला कवच होता है, उसी प्रकार दैवोपघातों को रोकने वाली शान्ति होती है। जिस प्रकार उठे हुए अस्त्र को अस्त्र से काट जाता है, उसी प्रकार (नवग्रह) शान्ति से घोर संकट शान्त हो जाते हैं।

ऋतुओं के अनुसार समिधा के लिए इन वृक्षों की लकड़ी विशेष उपयोगी सिद्ध होती है।

वसन्त—शमी

ग्रीष्म—पीपल

वर्षा—ढाक-विल्व

शरद—पाकर या आम

हेमन्त—खैर

शिशिर—गूलर, बड़

यह लकड़ियां सड़ी घुनी, गन्दे स्थानों पर पड़ी हुई, कीड़े मकोड़ों से भरी हुई न हों, इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए।
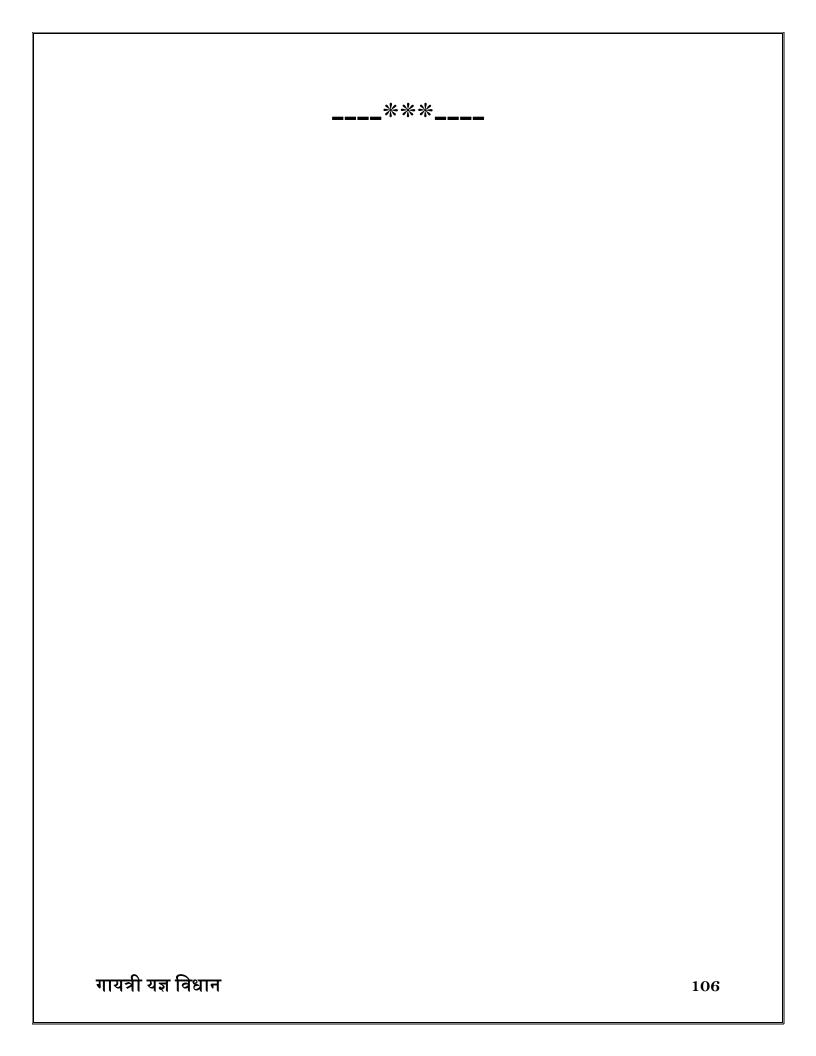
यज्ञ का मुहूर्त्त

****

विष्णु याग, रुद्र याग, लक्ष होम, कोटि होम, ज्योतिष्टोम आदि बड़े यज्ञों के लिए अलग-अलग मुहूर्त्त हैं। ज्योतिष के नियमों के आधार पर उनके मुहूर्त निकाले जाते हैं। पर साधारण यज्ञों के लिए बहुत गहराई तक जाने की, बहुत भारी खोज बीन करने की आवश्यकता नहीं है। साधारण शुभ दिन, तिथि, वार देखकर छोटे यज्ञों को कभी भी किया जा सकता है। यथा—

यदैव जायते वित्तं, चित्तं श्रद्धा समन्वितम्
तदैव पुण्य कालोऽयं यतोऽनियत् जीवितम्
अतः सर्वेषु कालेषु यज्ञकर्म शुभ प्रदः

—परशुरामः

ईश्वराराधनार्थ च सर्व पापापनुत्तये ।
यदि रुद्राद्यनुष्ठानं न मुहूर्तादि चिन्तयेत्

—दीपिका

जब पास में पैसा हो और चित्त में श्रद्धा हो तो उसी समय को पुण्य काल शुभ मुहूर्त्त मान लेना चाहिए। क्योंकि जीवन का कोई ठिकाना नहीं, आज हैं कल प्राण चला जा सकता है। इसलिए यज्ञ आदि शुभ कर्मों के सदा सभी दिन शुभ हैं।

परमात्मा की प्रसन्नता के लिए, पापों से छुटकारा पाने के लिए यदि रुद्र यज्ञ आदि का अनुष्ठान करे तो उसके लिए मुहूर्त देखने की आवश्यकता है।

सकाम यज्ञों में ही मुहूर्तों की बात बहुत खोज बीन के साथ की जाती है। पर निष्काम, भगवत्प्रीत्यर्थ किये जाने वाले हवनों में इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। फिर भी साधारण मुहूर्त्त का उल्लेख करते हैं—

सोम सौम्य गुरु शुक्र वासराः कर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः ।

रत्न माला

यज्ञ आदि शुभ कर्मों में सोम, बुद्ध, गुरु, शुक्रवार सिद्ध प्रद हैं।

शुक्ल पक्षे द्वितीयायां तृतीयायां तथैवच
मालापंचम्यामथ सप्तम्यां दशम्यां च विशेषतः

त्रयोदश्यां च कर्त्तव्यो द्वादश्यां च विशेषतः

शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, पंचमी सप्तमी, दशमी, द्वादशी और त्रयोदशी विशेष उत्तम हैं।

आद्रां शतभिषा स्वाती रोहिणी श्रावणं मृगः
पूर्वाषाढोत्तराषाढा ज्येष्ठा श्लेषा च रेवती ।
चित्रा हस्तो धनिष्ठास्यादनुराधा च सिद्धिदा ।
पुनर्वसु गुरोर्वीरे द्वादश्यां श्रवणे तथा ।
मृगशीर्षे तदा योगे विष्णु सर्वार्थ साधकः ।

—नारद संहिता

आर्द्रा, शतभिषा, स्वाति, रोहिणी, श्रावण, मृगशिर, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, श्लेषा, रेवती, चित्रा, हस्त, घनिष्ठता, यह नक्षत्र यज्ञ में शुभ माने गये हैं।

गुरु शुक्र अस्त में यज्ञ न करने की बात भी बहुत बड़े विशाल यज्ञों पर ही लागू होती है। छोटे मध्यम श्रेणी के यज्ञों के लिए उसका विचार आवश्यक नहीं। यथा—

शान्ति कर्मणि कुर्वीत रोगे नैमित्तिके तथा ।

गुरु भार्गव मौढ्येऽपि दोषस्तत्र न विद्यते ।

नैमित्तिक कर्मों में, रोग आदि के निवारणार्थ, तथा शान्ति प्रयोजनों के लिए हवन आदि करने में गुरु शुक्र के अस्त का दोष नहीं।

अमावस्या पूर्णमासी को दर्श पौर्षामास्य यज्ञ सदा होते हैं। इसलिये यह दोनों तिथियां हवन करने के लिए अतीव शुभ मानी गई हैं।

साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, पर्वों, त्यौहारों तथा उत्सवों के समय भी अलग से मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं हैं।

----*----**

कुण्ड एवं मण्डप का निर्माण

****

यज्ञ का मण्डप एवं कुण्ड बहुत ही सुन्दर तथा सुव्यवस्थित बने हुए तथा कलापूर्ण सुन्दरता के साथ सजे हुए होने चाहिए। कलापूर्ण वस्तुएं सुरुचिकर, आकर्षक एवं शोभनीय प्रतीत होती हैं, उनमें चित्त लगता है। कार्यकर्ताओं तथा दर्शकों का मन लगता है चित्त प्रसन्न होता है तथा उत्साह बढ़ता है। इसलिए ज्यों त्यों उलटे तिरछे कुण्ड-मण्डप बना लेने का निषेध किया गया है और इस बात पर जोर दिया गया है कि कला-व्यवस्था, नाप तौल, सौन्दर्य, शोभा आदि का ध्यान रखकर ही इनका निर्माण किया जाय।

यज्ञ का मण्डप किस प्रकार बनाया जाय तथा कुण्ड किस प्रकार तैयार किये जायं इस सम्बन्ध में अनेक स्वतन्त्र प्राचीन पुस्तकें उपलब्ध हैं। (1) विट्ठल दीक्षित कृत—'कुण्डसिद्धिः' (2) शंकर भट्ट कृत—'कुण्डार्क' (3) नारायण भट्ट कृत—'कुण्ड दर्पण' (4) अनन्त देवज्ञ कृत—'कुण्ड मार्तण्ड' (5) विश्वनाथ कृत—'कुण्ड कौमुदी' (6) लक्ष्मीधर भट्ट कृत—'कुण्ड कारिका' (7) कुण्ड शुल्व कारिका (8) महादेव गुरु कृत—'कुण्ड प्रदीप' (9) रामचन्द्राचार्य कृत—'कुण्डोदधि' (10) द्विवेदी विश्वनाथ कृत—'कुण्ड रत्नाकर' (11) श्रीधर कृत—'कुण्डार्णव' (12)

पेज मिसिंग 52-53

विधि विधानों में जहां विज्ञान का समावेश है वहां शोभा, सजावट, कला एवं सुरुचि प्रदर्शन भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

कुण्ड और मंडपों के सम्बन्ध में इस प्रकार के उल्लेख ग्रन्थों में मिलते हैं:—

बड़े यज्ञों में 32, 24 अर्थात् 16 हाथ का चौकोर मंडप बनाना चाहिये। मध्यम कोटि के यज्ञों में 14 हाथ अथवा 12 हाथ का पर्याप्त है। छोटे यज्ञों में 10 हाथ या 8 हाथ की लम्बाई चौड़ाई का पर्याप्त है। मण्डप की चबूतरी जमीन से एक हाथ या आधा हाथ ऊंची रहनी चाहिए। बड़े मण्डपों की मजबूती के लिए 16 खंभे लगाने चाहिये। खंभों को रंगीन वस्त्रों से लपेटा जाना चाहिए। मंडप के लिये प्रतीक वृक्षों की लकड़ी तथा बास का प्रयोग करना चाहिए।

मंडप के 1 हाथ बाहर चारों दिशाओं में 4 तोरण द्वार होते हैं यह 7 हाथ ऊंचे और 3।। हाथ चौड़े होने चाहिए। इन तोरण द्वारों में से पूर्व के द्वार पर शंख, दक्षिणा वाले पर चक्र, पश्चिम में गदा और उत्तर में पद्म बनाने चाहिए। इन द्वारों में पूर्व में पीपल, पश्चिम में गूलर, उत्तर में पाकर, दक्षिण में बरगद की लकड़ी लगाना चाहिए यदि चारों न मिले तो इनमें से किसी भी प्रकार की चारों दिशाओं में लगाई जा सकती है। पूर्व के तोरण में लाल वस्त्र, दक्षिण के तोरण में काला वस्त्र, पश्चिम के तोरण में सफेद वस्त्र, उत्तर के तोरण में पीला वस्त्र लगाना चाहिए।

सभी दिशाओं में तिकोनी ध्वजाएं लगानी चाहिये। पूर्व में पीली, अग्निकोण में लाल, दक्षिण में काली, नैश्रत्य में नीली, पश्चिम में सफेद, वायव्य में धूमिल, उत्तर में हरी, ईशान में सफेद लगानी चाहिये। दो ध्वजाएं ब्रह्मा और अनन्त की विशेष होती हैं। ब्रह्मा की लाल ध्वजा में और अनंत की पीली ध्वजा नैऋत्य कोण में लगानी चाहिए। इन ध्वजाओं में सुविधानुसार वाहन और आयुध भी चित्रित किये जाते हैं। ध्वजा की ही तरह पताकाएं भी लगाई जाती हैं। इन पताकाओं की दिशा और रंग भी ध्वजाओं के समान ही हैं। पताकाएं चौकोर होती हैं। एक सबसे बड़ा महाध्वज सबसे ऊंचा होता है।

मंडप के भीतर चार दिशाओं में चार वेदी बनती हैं। ईशान में ग्रह वेदी, अग्निकोण में योगिनी वेदी, नैऋत्य में वस्तु वेदी और वायव्य में क्षेत्रपाल वेदी, प्रधान वेदी पूर्व दिशा में होनी चाहिए।

एक कुण्डी यज्ञ में मण्डप के बीच में ही कुण्ड होता है। उसमें चौकोर या कमल जैसा पद्म कुण्ड बनाया जाता है। कामना विशेष से अन्य प्रकार के कुण्ड भी बनते हैं। पंच कुण्डी यज्ञ में आचार्य कुण्ड बीच में, चतुस्त्र कुण्ड पूर्व में, अर्धचन्द्र दक्षिण में, वृत्त पश्चिम में और पद्म उत्तर में होता है। नव कुण्डी यज्ञ में आचार्य कुण्ड मध्य में चतुरस्त्र कुण्ड पूर्व में, योनि कुण्ड अग्नि कोण में, अर्धचन्द्र दक्षिण में, त्रिकोण नैऋत्य में, वृज पश्चिम में, षडस्त्र वायव्य में, पद्म उत्तर में, श्रष्ट कोण ईशान में होता है।

प्रत्येक कुण्ड में 3 मेखलाएं होती हैं। ऊपर की मेखला 4 अंगुल, बीच की 3 अंगुल नीचे की 2 अंगुल होनी चाहिए। ऊपर की मेखला पर सफेद रंग, मध्य की पर लाल रंग और नीचे की पर काला रंग करना चाहिए। 50 से कम आहुतियों का हवन करना हो तो कुण्ड बनाने की आवश्यकता नहीं। भूमि पर मेखलाएं उठाकर स्थाण्डल बना लेना चाहिए। 50 से 99 तक आहुतियों के लिए 21 अंगुल का कुण्ड होना चाहिए। 100 से 999 तक के लिए 22।। अंगुल का,

एक हजार आहुतियों के लिए 1 हाथ का, दस हजार आहुतियों के लिए 2 हाथ का, तथा एक लाख आहुतियों के लिए 4 हाथ का कुण्ड बनाने का प्रमाण है।

यज्ञ मण्डप में पश्चिम द्वार से साष्टांग नमस्कार करने के उपरान्त प्रवेश करना चाहिए। हवन के पदार्थ चरु आदि पूर्व द्वार से ले जाने चाहिए। दान की सामग्री दक्षिण द्वार से और पूजा प्रतिष्ठा की सामग्री उत्तर द्वार से ले जानी चाहिए।

कुण्ड के पिछले भाग में योनियां बनाई जाती हैं। इनके सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों का मत है कि यह वाममार्गी प्रयोग हैं। योनि को स्त्री की मूत्रेन्द्रिय आकार और उसके उपरिभाग में अवस्थित किये जाने वाले गोलकों को पुरुष अण्ड का चिन्ह बना कर वे इसे अश्लील एवं अवैदिक भी बताते हैं। अनेक याज्ञिक कुण्डों में योनि निर्माण के विरुद्ध भी हैं। और योनि रहित कुण्ड ही प्रयोग करते हैं। योनि निर्माण की पद्धति वेदोक्त है या अवैदिक इस प्रश्न पर गम्भीर विवेचना अपेक्षणीय है।

लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, सब दृष्टि से चौकोर कुण्ड बनाने का कुण्ड सम्बन्धी ग्रन्थों में प्रमाण है। अनेक स्थानों पर ऐसे कुण्ड बनाये जाते हैं जो लम्बे चौड़े और गहरे तो समान लम्बाई के होते हैं पर वे तिरछे चलते हैं और नीचे पेंदे में जाकर ऊपर की अपेक्षा चौथाई चौड़ाई में रह जाते हैं। इनके बीच में भी दो मेखलाएं लगा दी जाती हैं। इस प्रकार बने हुए कुण्ड अग्नि प्रज्वलित करने तथा शोभा एवं सुविधा की दृष्टि से अधिक उपयुक्त हैं। आर्य समाजों में ऐसे ही हवन कुण्ड बनाये जाते हैं। इनके किनारे किनारे एक पतली नाली भी होती है जिसमें चींटी आदि कीड़े मकोड़ों का अग्नि तक न पहुंचने देने की रोक रहती है। कुण्ड के आस पास जल सिंचन इसी उद्देश्य के लिए ही किया जाता है।

इन्हीं सब बातों पर विचार करते हुए कण्ड एवं मण्डप का निर्माण करना चाहिए।

मण्डप के भीतर सब वेदी, ग्रह स्थापना, सर्वतो भद्र आदि चक्र पूजन सामग्री, कलश, दीपक, समिधाएं, हवन सामग्री घी ठीक प्रकार व्यवस्थित रूप से रख लेनी चाहिए ताकि बीच में एक एक वस्तु मंगाने के लिये बार बार काम न रोकना पड़े। बुद्धिमान आचार्य का कार्य यह है कि सभी आवश्यक सामग्री मंगाने की यजमान को पूर्व सूचना देदें और कार्य आरम्भ होने से पूर्व वस्तुओं की उपस्थिति देखलें। ताकि यज्ञ कार्य निर्वाध गति से बराबर चलता रहे।

यज्ञ के कार्यकर्ता

****

यज्ञ में कुछ प्रधान कार्यकर्त्ता नियुक्त किये जाते हैं। जिनके ऊपर कुछ कार्यों का विशेष उत्तरदायित्व होता है। इन्हें ऋत्वज कहते हैं। इनकी संख्या बड़े यज्ञों में 16 तक होती है पर साधारण यज्ञों में भी यह एक एक तो होने ही चाहिए। यज्ञ के कार्यकर्त्ता यह होते हैं:—

(1) होता **(यजमान)**

(2) अध्वर्यु

(3) उद्गाता

(4) ब्रह्मा

इनके कार्यक्रमों के सम्बन्ध में ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

ऋचांत्वः पोषमास्ते पुपुष्मान् गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु ।
ब्रह्मात्वो वदति जात विद्याम् यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः ।

इस मंत्र में उपरोक्त कार्यकर्त्ताओं का कार्य विभाजन इस प्रकार किया गया है—

होता—ऋतांत्वः पोषमास्ते पु पुष्मान्—

अपनी प्रत्येक बात को प्रामाणिक रखे।

उद्गाता—गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु

गायन करना। अपने कार्य की महत्ता के पक्ष में भावनाएं तरंगित करना। उद्गाता इस पुनीत कार्य को "उद्गीथ" कहते हैं।

ब्रह्मा—ब्रह्मात्वो वदति जात विद्याम्

ब्रह्म विद्या का प्रति पादन करें। सद् उद्देश्य को ही बढ़ावें।

अध्वर्यु—यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः ।

यज्ञ का निश्चित मात्रा में ठीक परिमाण में करना। यज्ञ को हिंसा से बचाना भी अध्वर्यु का काम है।

यह चारों ही ऋत्वज हैं। ऋत्वज का अर्थ है—जातं अतं विदेता, आवश्यक सभी बातों के जानकार।

साधारणतया—होता या यजमान वह व्यक्ति होता है जो उस कार्य को आरम्भ करने का, आयोजन करने का संकल्प करता है। इसे संचालक भी कहते हैं।

अध्वर्यु—यज्ञ सामग्री, समिधा, वेदी, कुण्ड, घृत, पात्र आदि की शुद्धि तथा अग्नि में चींटी आदि कीड़े मकोड़े न जाने देने का ध्यान रखता है। उद्गाता—सामगान वेद मन्त्रों का गायन अथवा भजन कीर्तन आदि गाकर जनता की मनोभावनाएं परमार्थ की ओर विकसित करता है। ब्रह्मा इन सबका प्रधान, सभापति, नेता, नियंत्रक एवं यज्ञ उद्देश्य के अनुकूल ही सब काम हो इसका ध्यान रखता है। ऋत्वज यह सभी हैं। ऋत्वज का एक अर्थ ऋतु का समय एवं परिस्थिति को ध्यान में रखने वाला भी है। इन सभी ऋत्वजों को यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व आवश्यक जानकारी प्राप्त करना, एवं परिस्थिति का विचार करके कार्य का आयोजन करना उचित होता है।

यज्ञ के लिए ही किसी भी कार्य को यदि भली प्रकार पूरा करना है तो इन सब कार्यों का आयोजन करना होता है। (1) कार्य के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्रामाणिक रूप से प्राप्त करना (2) उसके उपयुक्त अवसर एवं परिस्थिति का ध्यान रखना (3) अपने कार्य के सम्बन्ध में अनुकूल वातावरण पैदा करना, प्रचार या विज्ञापन करना (4) कार्य पद्धति एवं उपकरणों में खराबी न होने देना (5) उद्देश्य ऊंचा रखना (6) कार्य का नियंत्रण और निरीक्षण तथा विवेचन बारीकी के साथ करना। यही कार्य यज्ञ कार्यकर्ताओं के हैं। अन्य कार्यों में भी इन सब बातों का ध्यान रखने से वे सफलता एवं पूर्णता प्राप्त करते हैं। यज्ञ जैसे महान कार्य में तो इन कर्तव्यों की ओर विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिये। इन सब कार्यों में सभी का ध्यान और सहयोग होना आवश्यक है। 'सम्मिलित जिम्मेदारी' के आधार पर सरकारों के मंत्रि मण्डल बनते हैं। यज्ञ में भी सब कार्यकर्त्ताओं की सम्मिलित जिम्मेदारी है फिर भी जिस प्रकार एक विभाग का एक मिनिस्टर होता है वैसे ही उपरोक्त कार्य पद्धतियों के उत्तरदायी व्यक्ति अलग अलग हों, तो अधिक उत्तम व्यवस्था हो सकती है।

यज्ञ में इन कार्यकर्त्ताओं के स्थान इस प्रकार होते हैं:—

यजमान—पूर्वाभिमुख

यजमान पत्नी—यजमान के पास दाहिने अंग की ओर।

उद्गाता—यजमान के सामने

अध्वर्यु—बाईं ओर

ब्रह्मा—दाहिनी ओर

यज्ञ के सब कार्य कर्त्ता अपने अपने स्थान पर स्वस्थ शान्त चित्त, प्रसन्न, शुद्ध शरीर तथा शुद्ध वस्त्र धारण करके बैठें, और आचार्य के आदेशानुसार सब कार्य अनुशासन एवं शिष्टता पूर्वक करें। कार्यकर्त्ता हवन के दिनों में उपवास, व्रत, संयम, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन आदि तपश्चर्याओं के साथ रहें।

----*----**

प्राथमिक कृत्य

****

यज्ञ मण्डप में बैठकर सब लोग पहले अपने को जल से मार्जन करके पवित्र करें। आसन पर जल छिड़क कर पृथ्वी की पूजा करें। चन्दन लगावें, नया यज्ञोपवीत पहनें, इनके मंत्र नीचे लिखे जाते हैं:—

पवित्र करण मन्त्रः

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचि ।।

आसन पवित्र करण मन्त्रः

ॐ पृथिव ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ।।

उपर्युक्त मंत्र पढ़कर आसन पर जल छोड़ें।

चन्दन धारण मन्त्रः ।

चन्दनस्य महत्पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठति सर्वदा ।।

यज्ञोपवीत धारणा मन्त्रः

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।

इसके उपरान्त अपने शरीर और मन को शुद्ध करने के लिए आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, अघमर्षण, न्यास करे। इनका विधान इस प्रकार है—

आचमन विधिः ।

आचमन के समय जल का नख से स्पर्श तथा ओष्ठ का शब्द नहीं करना चाहिए। प्रथम आचमन से आध्यात्मिक, दूसरे से आधिभौतिक और तीसरे से आधिदैविक शान्ति होती है। इसलिये तीन बार करे।

संहृतागलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः ।
मुक्ताङ्गुष्ठ कनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत् ।।

नागदेव ।।

अंगुलियों को मिलाकर दाहिने हाथ की हथेली में जल लेकर अंगूठा तथा कनिष्ठा को अलग करके आचमन करना चाहिए।

नीचे श्रौत एवं स्मार्त आचमन दिये जाते हैं इनमें से कोई एक प्रकार का आचमन करले:—

श्रौताचमनम् ।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य सावित्रीं तदनन्तरम् ।
तथैव व्याहृतीस्तिस्र श्रौताचमनमुच्यते ।।

प्रथम प्रण—"ॐ" पश्चात्—"भुर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" और फिर तीनों व्याहृतियों—"ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः" का उच्चारण करने से श्रौत आचमन होता है।

स्मार्ताचमनम् ।

दाहिने हाथ में जल लेकर बायें हाथ से दाहिने हाथ का स्पर्श करते हुए अंगूठे तथा कनिष्ठा को अलग करके ब्रह्मतीर्थ **(**अंगूठे के मूल**)** से नीचे लिखे प्रत्येक नाम से आचमन करने से एक आचमन होता है।

ॐ केशवाय नमः ।। ॐ नारायणाय नमः ।।
ॐ माधवाय नमः ।। पश्चात् ॐ हृषीकेशाय नमः ।।

बोलकर दूसरे पात्र के जल से हाथ की शुद्धि करें।

शिखावन्धनम् ।

ऊर्ध्वकोशि विरुपाक्षि मांस शोणित भोजने ।
तिष्ठ देवि शिखाबन्धे चामुण्डे चापराजिते ।।
चिद्रू पिणि महामाये दिव्यतेजः समन्विते ।
तिष्ठ देवि शिखा मध्ये तेजो वृद्धिं कुरुष्वमे ।।
विष्णोर्नामि सहस्रेण शिखाबन्धं करोम्यह म् ।।

उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर शिखा में गांठ लगावे ।

प्राणायाम विधिः ।

ऋष्यादिवं स्मृत्वा वद्धासनः सम्मीलितनयनो मौनी प्राणायामत्रयं कुर्यात् । तत्र वायोरादनकाले पूरकनामा प्राणायामस्तत्र नीलोत्पल दल श्यामं चतुर्भुजं विष्णुं नाभी ध्यायेत् । धारण काले कुम्भकस्तत्र कमलासनं रक्तवर्णं चतुर्मुखम्ब्रह्माणं हृदि ध्यायेत् । त्यागकाले

रेचकस्तत्र श्वेतवर्णं त्रिनयनं शिवं ललाटे ध्यायेत् । त्रिष्वप्ये तेषु प्रत्येकं त्रिर्मन्त्राभ्यासः । प्रत्येकमोंकारादि सप्तव्याहृतयः ॐ कारादि सावित्री ॐ कार द्वयमध्यस्थः शिरश्चेति मन्त्रस्तस्य स्वरूपम् ।।

पद्मासन करके ऋषियों का स्मरण कर मौन होकर नेत्रों का मूंद कर तीन प्राणायाम करे। पूरक प्राणायाम—नासिका के दाहिने छिद्र को अंगूठे से दबाकर बायें छिद्र से श्वास खींचता हुआ नील कमल के सदृश श्यामवर्ण चतुर्भुज विष्णु का अपनी नाभि में ध्यान करे। कुम्भक प्राणायाम—उस छिद्र को दबाये हुए नासिका के बांये छिद्र को कनिष्ठा और अनामिका अंगुलियों से दबा करके श्वास को रोककर कमल के आसन पर बैठे हुए रक्त वर्ण चतुर्मुख ब्रह्मा का अपने हृदय में ध्यान करे। रेचक प्राणायाम—श्वेत वर्ण त्रिनेत्र शिवजी का अपने ललाट में ध्यान करता हुआ नासिका के दाहिने छिद्र को खोलकर धीरे धीरे श्वास छोड़े। गृहस्थ तथा वानप्रस्थी पांचों अंगुलियों से नासिका को दबाकर भी प्राणायाम कर सकता है।

प्राणायाम विनियोगः

ॐ कारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्व कर्मारम्भे विनियोगः ।। ॐ सप्त व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि । अग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः ।। ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवताऽग्नि र्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः ।। ॐ शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदा गायत्री छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवता प्राणायामे विनियोगः ।।

प्राणायाम मन्त्रः ।

नीचे लिखे मन्त्र को प्रत्येक प्राणायाम के समय तीन या एक बार जपे। इस प्रकार तीनों प्राणायाम तीन या पांच बार करे।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ॐ ।।

अभिसिंचन

ॐ आपो हिष्ठेत्यादि त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्री छन्दः आपो देवता मार्जने विनियोगः ।

बांये हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से नीचे लिखे मन्त्र बोलते हुए एक से सात तक अपने शरीर पर, आठवें से पृथ्वी पर और नवें से मस्तक पर जल छोड़े।

ॐ आपो हि ष्टा मयो भुवः ।। 1 ।। ॐ ता न ऊर्जे दधातन ।। 2 ।। ॐ महेरणाय चक्षसे ।। 3 ।। ॐ यो वः शिवतमो रसः ।। 4 ।। ॐ तस्य भाजयते ह नः ।। 5 ।। ॐ उशतीरिव मातरः ।। 6 ।। ॐ तस्माऽअरङ्गमामवः ।। 7 ।। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ ।। 8 ।। ॐ आपो जनयथा च नः ।।

हे जल! जैसे माता अपने पुत्र का दूध आदि से कल्याण करती है, वैसे ही मुझे उत्तम गरिष्ठ भोजन और सन्तान उत्पन्न तथा सुखादि भोगने की शक्ति दो।

अधमर्षण

ॐ अधमर्षणसूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तो देवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः ।।

दाहिने हाथ में जल लेकर नासिका से स्पर्श करके नीचे लिखा मन्त्र तीन बार या एक बार पढ़े और ध्यान करे कि यह जल श्वास के साथ नासि के दाहिने छिद्र से भीतर जाकर अन्तःकरण को शुद्ध करके बांये छिद्र से बाहर आया है। पश्चात् उस जल को बिना देखे बांयी ओर फेंक देवे। नीचे लिखा मंत्र पढ़ेः—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चार्भाद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत् । अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवंच पृथिवी चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

भावार्थ—महाप्रलय के अन्धकार में केवल परब्रह्म रहे। सृष्टि के आदि में जलमय समुद्र हुआ, पश्चात् ब्रह्मा हुए, उन्होंने दिन और रात्रि करने वाले सूर्य-चन्द्रमा को रचा। पश्चात् रात्रि दिन, सम्वत्सर और स्वर्ग लोकादि की रचना की।

न्यास

शरीर के विभिन्न अंगों की शुद्धि एवं शक्ति के लिए स्पर्श करना अंगन्यास और हाथ की उंगलियों का स्पर्श करना न्यास कहलाता है। इसका विधान इस प्रकार है—

करन्यास

ॐ भूः अगुष्ठाभ्यां नमः **(**दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से अंगूठों का स्पर्श करे**)** । ॐ भुवः तर्जनीभ्यां नमः **(**अंगूठे से तर्जनी अंगुली का स्पर्श करे**)** । ॐ स्वः मध्यमाभ्यां नमः **(**अंगूठे से मध्यमा बीच वाली अंगुली का स्पर्श करे**)**। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं अनामिकाभ्यां नमः **(**अंगूठे से अनामिका अंगुली का स्पर्श करे**)**। ॐ भर्गो देवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां नमः **(**अंगूठे से कनिष्ठका उंगली का स्पर्श करे**)**। ॐ धियो योनः प्रचोदयात् करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः **(**दोनों

हाथों की मध्यम व अनामिका अंगुलियों से दोनों हथेली व उनकी पीठ का क्रम से स्पर्श करे)। इति करन्यासः ।।

अंगन्यास

ॐ भूः हृदयाम नमः (दाहिने हाथ की मध्यमा व अनामिका उंगलियों से हृदय का स्पर्श करे) ॐ भुवः शिर से स्वाहा (उन्हीं उंगलियों से मस्तक का स्पर्श करे)। ॐ स्वः शिखायैवषट् (उन्हीं उंगलियों से शिखा—चोटी का स्पर्श करे)। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं कवचाय हुं (दाहिने हाथ की मध्यमा अनामिका उंगलियों से बांया कन्धा और बायें हाथ की उंगलियों से दाहिने कन्धे का स्पर्श करें)। ॐ भर्गोदेवस्य धीमहि नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथ की अनामिका उंगली से दोनों नेत्रों व माथे के मध्य तृतीय नेत्र के वास्ते स्पर्श करे)। ॐ धियो योनः प्रचोदयात् अस्त्रायफट् । (दाहिने हाथ की मध्यमा व अनामिका उंगलियों से दाहिने हाथ को सिर के पीछे की ओर से लाकर बाईं तरु बांये हाथ की हथेली का स्पर्श करे)।

ॐ तत्पादयोः ।। (दाहिने हाथ की उन दोनों उंगलियों से पैरों का स्पर्श करे । सवितुर्जंघयोः (दोनों जंघाओं का स्पर्श करे) । वरेण्यं कटि देशे (कमर का स्पर्श करे) । भर्गो नाभौ (नाभि का स्पर्श करे) । देवस्य हृदये (हृदय का स्पर्श करे)। धीमहि कंठे (कण्ठ का स्पर्श करे)। धियो नासाग्रे (नाक के अग्र भाग का स्पर्श करे)। योनेत्रयोः (प्रथम रीति से तीनों नेत्रों का स्पर्श करे) न ललाटेः (ललाट–माथा का स्पर्श करे)। इत्यंगन्यासः ।।

संकल्प

प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में संकल्प होता है। नीचे यज्ञ का संकल्प दिया जाता है। इसमें जिन स्थानों पर (अमुक) स्थान लिखा है। वहां संकल्प समय का वर्ष मास आदि, कर्त्ता का गौत्र नाम आदि उच्चारण करना चाहिए।

हरिः ॐ तत् सत् अद्य ब्रह्मणोऽन्हि द्वितीयपराधें श्री श्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते (अमुक) देशे, पुण्य (अमुक) क्षेत्रे, (अमुक) ग्रामे, बौद्धावतारे, विक्रमसम्वत्सरे (अमुक) संख्यके, शालिवाहनशाके (अमुक) संख्यके, (अमुक) नाम्नि सम्वत्सरे, (अमुक) अयने, (अमुक) ऋतौ, (अमुक) मासे, (अमुक) पक्षे, (अमुक) तिथौ, (अमुक) वासरे, (अमुक) नक्षत्रे, (अमुक) गोत्रोत्पन्नः, (अमुक) नामाहं मम कायिक वाचिक मानसिक ज्ञाताज्ञातसकलदोष परिहारार्थं श्रतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्री गायत्री प्रीत्यर्थं (अमुक) काले, (अमुक) सम्मुखे, (अमुक) (यज्ञ) कर्म करिष्ये ।

(यजमान के लिये करे तो “करिष्ये” की जगह “करिष्यामि” कहें।)

----*----**

स्वस्ति वाचनम्

****

हाथ में जल, पुष्प, अक्षत लेकर स्वस्ति वाचन बोला जाय। यह शुभ कार्यों की सफलता, शान्ति, सार्थकता एवं मंगलमय पूर्ति के परम कल्याण कारक मन्त्र हैं।

ॐ गाणानांत्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणांत्वाप्रियपतिँ हवामहे निधीनांत्वा निधिपतिँ हवामहे वसोमम । आहमजानिगर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ।।1।। ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनःपूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्ट नेमिः स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु ।।2।। ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयोदिव्यन्तरिक्षेपयोधाः । पयस्वतीः प्रदिशः शन्तु मह्यम् ।।3।। ॐ विष्णोः रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्पूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवेत्वा ।।4।। ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चंद्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता दित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता वृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ।।5।। ॐ द्यौः शान्ति रन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शन्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि ।।6।। ॐ विश्वानिदेवसवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।।7।।

इति स्वस्तिवाचनम्

----*----**

अथ वरणम्

****

यज्ञ का कोई एक यजमान होना चाहिए। जो ऋत्वजों को आचार्य, ब्रह्मा आदि को वरण करे। यदि सामूहिक या सार्वजनिक यज्ञ हो तो भी इसका कोई कार्य कर्ता यजमान बने। कई दिन यज्ञ हो तो एक एक दिन का एक एक यजमान भी बन सकता है। आचार्य आदि का वरण केवल प्रारम्भिक दिन ही होता है और वे ही अन्त तक कार्य करते हैं।

तत्र पूर्वमाचार्यस्य वरणम् पश्चात्सर्वेषां वरणम्

अर्थात्**:**—सर्व प्रथम यजमान को आचार्य का वरण करना चाहिए, पीछे ब्रह्मा आदि का **(**यज्ञ में दस वरण होना चाहिए, कम से कम चार**-**आचार्य, ब्रह्मा, ऋत्विक् और होता तो अवश्य ही होने चाहिये**)**।

तद्यथाः—आचार्यं प्रति यजमानो ब्रूयात्—अस्मिन्नासने आस्यताम ।

यथा क्रम यजमान आसन देते हुये आचार्य से कहें**:**—भगवन्**!** इस आसन पर विराजिये**!**

आचार्यो ब्रूयात—आस्ये।

आचार्य बोले—'आस्ये' अर्थात् बैठता हूं।

ततो यजमानः—नमोस्त्वनन्तायेति मंत्रेण पादप्रक्षालनं कुर्यात् ।

यजमान आचार्य को आसन पर बैठाकर, 'नमोस्त्वनन्ताय' मन्त्र को पढ़ता हुआ उनके पैर धोवे। मन्त्र**:**—

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्र पादाक्षिशिरोरुबाहवे ।

सहस्र नाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ।।1।।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ।।2।।

गंधमाल्यादिभिरभ्यर्च्य ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः । रोचन्ते रोचनादिवि ।।1।। युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसारथे । शोणाधृष्णूनृवाहसा ।।2।। ॐ अद्येत्यादिनवग्रहमखहोमकर्मकर्तुमेभिश्चन्दनताम्बूलकुण्डलाङ्गुलीयक—कमण्डलुवासोभिराचार्यत्वेन अमुकगोत्रमुकशर्माणममुकवेदाध्यायिनं त्वामहं वृणे ।

गन्ध, पुष्पादि से पूजा करके, चन्दन, ताम्बूल, पुष्पाक्षत, यज्ञोपवीत, वस्त्रादि के साथ उनका वरण करे। फिर यजमान अपने मोत्रादि का नाम लेकर कहे—मैं आपको आचार्य स्वीकार करता हूं।

(आचार्य) वृतोऽस्मीति प्रतिवचनं दद्यात् ।

आचार्य कहे—"मैं स्वीकार करता हूं।"

ॐ व्रतेन दीक्षमाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

इत्यनेन मन्त्रेण कुशस्थैर्जलबिन्दुभिर्यजमानमभिषिञ्चेत् ।।

"ॐ वृतेन......सत्यमाप्यते" मन्त्र से कुशस्थ जलबिन्दु द्वारा आचार्य यजमान को अभिषिंचन करे।

अथ आचार्य प्रार्थना ।

आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीना बृहस्पतिः ।

तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ।।

इस प्रकार यजमान आचार्य की प्रार्थना करे। हे सुव्रत**!** जिस प्रकार स्वर्ग स्वर्ग में बृहस्पति इन्द्रादि देवताओं के आचार्य हैं वैसे ही आप हमारे इस यज्ञ में आचार्य हों।

अथ ब्रह्मवरणम् ।

ब्रह्माणं प्रति यजमानो ब्रूयात्—अस्मिन्नासने आस्यताम् ।

फिर जिसको ब्रह्मा बनाना हो, उससे यजमान बोले—हे ब्रह्मन्**!** आप इस आसन पर बैठिये।

(ब्राह्मणः) आस्ये ।

ब्राह्मण बोले—बैठता हूं।

ततो यजमानः—नमोस्त्वनन्तायेति मन्त्रेण पाद प्रक्षालनं कुर्यात् ।

फिर यजमान "नमोस्त्वनन्ताय" मन्त्र को पढ़ता हुआ ब्राह्मण के पैर धोवे।

गन्धपुष्पमाल्यादिभिरभ्यर्च्य ॐ अद्येत्यादिनवग्रहमखहोमकर्मणि न्यूनाधिक संरक्षणार्थमेमिश्चन्दनतांबूलकुण्डलांगुलीयककमण्डलुवासोभिर्ब्रह्मत्वेनामुकगोत्रममुकशर्माणममुक वेदाध्यायिनं त्वामहं वृणे ।

तदनन्तर गन्ध, पुष्प, चन्दनादि से यजमान ब्राह्मण का पूजन करे और उपरोक्त विधि से ब्रह्मा का वरण करते हुए कहे:—"मैं आपको इस यज्ञ के निरीक्षणार्थ ब्रह्मा रूप से वरण करता हूं।

(ब्राह्मणः) वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् ।

ब्राह्मण कहे—मैं आपका वरण स्वीकार करता हूं।

(यजमानः) यथा चतुर्मुखो बह्मा सर्ववेदधरः प्रभु ।

तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ।।

यजमान हाथ जोड़कर ब्रह्म से निवेदन करे। हे विप्रवर! जैसे चतुर्मुख ब्रह्मा चारों वेदों को धारण करने में समर्थ हैं, वैसे ही आप मेरे इस यज्ञ में ब्रह्मा हों।

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

इत्यनेन मन्त्रेण कुशस्थैर्जलबिन्दुभिर्यजमानमभिषिञ्चेत् ।।

तदनन्तर ब्रह्मा "ॐ व्रतेन......सत्यमाप्यते" मन्त्र पढ़कर कुशयुक्त जलबिन्दु से यजमान का अभिषिंचन करे।

अथ ऋत्विगवरणम् ।

ऋत्विजं प्रति यजमानो ब्रूयात्—इदमासनमास्यताम् ।

आसन देकर यजमान ऋत्विक से कहे कि यह आसन है, इस पर बैठिये ।

(ऋत्विक्) आस्ये ।

ऋत्विक बोले:—मैं बैठता हूं।

ततो यजमानः नमोऽस्त्वनन्तायेति मंत्रेण पादप्रक्षालनं कुर्यात् ।

आसन पर बैठाकर यजमान "नमोस्त्वनन्ताय" मन्त्र को पढ़ते हुए ऋत्विक के पाद प्रक्षालन करे।

गन्धपुष्पमाल्यादिभिरभ्यर्च्य ॐ अद्येत्यादिनवग्रहमखहोमकर्मणि हवन कर्तुमेभिश्चन्दनताम्बूलकुण्डलाङ्गुलीयककमण्डलुवासोभिः ऋत्विक्त्वेन अमुकगोत्रममुकशर्माणममुकवेदाध्यायिनं त्वामहं वृणे ।

तब यजमान चन्दन, पुष्पादि से उनका वरण करके उसी समय कहे—मैं आपको हवन करने के लिए ऋत्विग्भाव से स्वीकार करता हूं।

(ऋत्विक्) *वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् ।*

ऋत्विक् कहे—मुझे स्वीकार है।

(यजमानः) *ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः ।*

अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव ।।

यजमान कहे—हे द्विज श्रेष्ठ । यज्ञ में आप मेरे "ऋत्विक" होइये।

(ऋत्विक्) *ॐ व्रतेनदीक्षमाप्नोति दीक्षायाप्नोतिदक्षिणाम् ।*

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

इत्यनेन मन्त्रेण कुशस्थैर्जलबिन्दुभिर्यजमानमभिषिञ्चेत् ।

एवमध्वर्युं होतारं सदस्यमुपद्रष्टारं च वृणुयात् ।।

ऋत्विक् "ॐ व्रतेन......सत्यमाप्यते" मन्त्र पढ़कर यजमान पर कुशा से जल छिड़के।

इसी प्रकार अध्वर्यु, होता, सदस्य और उपद्रष्टा सबका वरण करे।

निम्न लिखित मन्त्र से यजमान आचार्यादि सब की प्रार्थना करे। अथ सर्वेषां प्रार्थना:—

त्वन्नो गुरुः पिता माता त्वं प्रभुस्त्वं परायणः ।

त्वत्प्रसादाच्चा विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ।।1।।

आपद्विमोक्षणार्थाय कुरु यज्ञमतन्द्रितः ।

ऋत्विग्भिः सहितैः शुक्लैः संयतैः सुसमाहितैः ।।2।।

आचार्येण च संयुक्तः कुरु कर्म यथोदितम् ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मभृतां वर ।।3।।

वितते मम यज्ञेऽस्मिन्नुपद्रष्टा भव द्विज ।।

----***----

रक्षा विधानम्

****

आत्म रक्षा तथा यज्ञ कार्य की रक्षा के लिए रक्षा विधान कहलाता है। यज्ञ कार्य में आसुरी शक्तियां अक्सर विघ्न फैलाती रहती हैं। पूर्व काल में भी राक्षस लोग यज्ञ विध्वंस के लिए प्रयत्न करते थे। शुभ कार्य में बहुधा कोई विघ्न आते हैं उनसे रक्षा करने के लिए रक्षा विधान किया जाता है।

सरसों, या चावल को दिशाओं में फेंके और अन्त में तीन बार बायां पांव भूमि पर पटके।

तत्रादौ श्वेतसर्षपतण्डुलपूर्णपुटकमादाय रक्षासूत्रं सफलदक्षिणाकं गृहीत्वा मन्त्रान् पठित्वा सर्षपाक्षतैर्दिग्रक्षां कुर्यात् ।।

ॐ पूर्वे रक्षतु वाराहः आग्नेय्यां गरुड़ध्वजः ।
दक्षिणे पद्मनाभस्तु नैर्ऋत्यां मधुसूदनः ।।1।।
पश्चिमे चैव गोविन्दो वायव्यां तु जनार्दनः ।
उत्तरे श्रीपती रक्षेदैशान्यां हि महेश्वरः ।।2।।
ऊर्ध्वं रक्षतु धाता वो ह्यधोऽनन्तश्च रक्षतु ।
अनुक्तमपियत् स्थानं रक्षत्वीशो ममाद्रिधृक् ।।3।।

उसके बार पहले सफेद सरसों और चावल से भरे पात्र को एवं फल—दक्षिणा सहित रक्षा सूत्र को लेकर "ॐ पूर्वे रक्षतु वाराहः" इत्यादि मन्त्रों को पढ़ते हुये दिगरक्षण करें।

स्थानाधिपं नमस्कृत्यग्रहनाथंनिशाकरम् । धरणीगर्भसंभूतं शशिपुत्रं वृहस्पतिम् ।।1।। दैत्याचार्यं नमस्कृत्य सूर्य पुत्रं महाग्रहम् । राहुं केतुं नमस्कृत्य यज्ञारंभे विशेषतः ।।2।। शक्राद्यादेवताः सर्वान्मुनींश्च प्रणामाम्यहम् । गर्गं मुनिं नमस्कृत्य नारदं मुनि सत्तमम् ।।3।। वसिष्ठं मुनिशार्दूलं विश्वामित्रं तथैव च । व्यासंमुनिं नमस्कृत्य सर्वशास्त्र विशारदम् ।।4।। विद्याधिका ये मुनय आचार्याश्च तपोधनाः । तान्सर्वान्प्रणमाम्येव यज्ञ रक्षा करान्सदा ।।5।। पूर्वेरक्षतु गोविन्द आग्नेयां गरुड़ध्वजः । याभ्यां रक्षतु वाराहो नारसिंहस्तु नैर्ऋते ।।6।। वारुण्यां केशवो रक्षद्वायव्यां मधुंसूदनः । उत्तरे श्रीधरो रक्षदीशाने तु गदाधरः ।।7।। ऊर्ध्वं गोवर्धनो रक्षे दधस्ताच्च त्रिविक्रमः । एवं दश दिशोरक्षेद्वासुदेवो जनार्दनः ।।8।। शंखों रक्षेच्च यज्ञाग्रेपृष्ठे खडग्स्तथैव च । वामपार्श्वे गदा रक्षेद्दक्षिणो तु सुदर्शनः ।।9।। ब्राह्मणं माधवो रक्षेदाचार्यं पातु

माधवः । अच्युतोऽवतु ऋग्वेदं यजुर्वेद मधोक्षजः ।।10।। कृष्णाश्च सामगं रक्षेदाथर्विकं च माधवः । उपदेष्टातु यो विप्रस्तं रुद्रोऽवतु सर्वदा ।।11।। यजमानं सपत्नीकं कमलाक्षश्च रक्षतु । रक्षाहीनंतु यत्स्थानं तत्सर्वं रक्षतां हरिः ।।12।। यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा । स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ।।13।। अपः सर्वन्तु ये भूता ये भूताभूमि संस्थिताः । ये भूता विघ्न कर्तारस्ते गच्छेत शिवाज्ञया ।।14।। अपक्रामन्तुभूतानिपिशाचाः सर्वतोदिशम् । सर्वेषामविरोधेन ब्रह्म कर्मसमारभे ।।15।।

इसके बाद "येन बद्धो" इत्यादि मन्त्र से यजमान के दाहिने हाथ में रक्षा—सूत्र बांधे। यजमान के ही शरीर के बराबर रक्षा सूत्र होना चाहिये।

रक्षा सूत्रम्—ॐ येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ।।

इति मन्त्रेण प्रतिबध्नीयुः । तत्र रक्षासूत्र परिमाणंयजमानगात्रप्रमाणमन्येषां प्रमाणं न ।। इति आचार्यादिवरणम् ।।

----***----

कलश स्थापना

****

कलश में देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है। वह समुद्र तथा समस्त पवित्र सरिता सागरों का प्रतिनिधि है। कलश पर देवताओं की स्थापना तथा प्रतिष्ठा की जाती है। हवन में उत्पन्न 'कार्बन गैस' की शान्ति भी कलश द्वारा होती है।

यज्ञ मण्डप के ईशान कोण में कलश की स्थापना करनी चाहिए। जिस स्थान पर कलश की स्थापना करनी हो, वहां की भूमि का स्पर्श करते हुये यह मंत्र पढ़े:—

ॐ भूरसिभूमिरस्यदितिरसिविश्वधायाविश्वस्यभुवनस्यधर्त्री ।। पृथिवींयच्छपृथिवींदृँ—हषृथिवींमाहिँ—सीः ।। महीद्यौः पृथिवि चनइमंयज्ञंमिमिक्षताम् ।। पिषृतान्नोभरीमभिः ।। इतिभूमिस्पृष्ट्वा ।

उस भूमि पर शुद्ध मिट्टी की वेदी बनावे । वेदी में जौ या गेहूं मिला लेने चाहिये। कहा भी है:—

यवान्वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् ।
तत्र संस्थापयेत् कुम्भं विधिना मन्त्रपूर्वकम् ।।

वेदी बनाते हुए यह मन्त्र पढ़े:—

ॐ धान्यमसिधिनुहिदेवान्प्राणायत्वो दानायत्वाव्यानायत्वा ।। दीर्घामनुप्रसिति मायुषेधान्देवोवः-सविताहिरण्यपाणिः प्रतिगृब्भ्णत्वच्छिद्रेणपाणिनाचक्षुषेत्वामहीना- पयोसि ।। ओषधयः संवदन्तेसामेनसहराज्ञायस्मैकृणोतिब्राह्मणस्तंराजंपारयामसि ।। इतियवान्गोधूमान्वाप्रक्षेपः ।

कहीं, कहीं केवल धान्य राशि भी कलश के नीचे स्थापित की जाती है। अब उस वेदी पर कलश स्थापित करें। मन्त्र:—

ॐ आजिघ्रकलशंमह्यात्वाविशंत्विन्दवः पुनरूर्जानिवर्तस्वसानः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारापयस्वतीपुनर्माविशताद्रयिः ।। आकलशेषुधावतिपवित्रे परिशिच्यते ।। उक्थैर्यज्ञेषु वर्द्धते ।। इति कलशंस्थाप्य ।।

अब कलश में जल डाले। मंत्र:—

ॐ वरुणस्योत्तंभनमसिवरुणास्यस्कंभसर्जनीस्थोवरुणस्यऽऋतसदन्यसिवरुण-स्यऽऋतसदनमसिवरुणस्यऽऋतसदनमासीद ।। इति जल प्रक्षेपः ।

अब कलश में गंगा जल या यमुना जल डालें। मंत्र:—

ॐ इमंमेगंगेयमुनेसरस्वतिशुतुद्रिस्तोमेसचतापरुष्ण्यामरुद्वृधेवितस्तयाजीकीये-शृणुह्यासुसोमय ।। इति तीर्थ जलेनापूर्य ।

फिर कलश में गन्ध **(चन्दन)** डाले। मंत्र:—

ॐ गंधद्वारांदुराधर्षांनित्य पुष्टांकरीषिणींईश्वरींसर्व भूतानांतामिहोपह्वयेश्रियम् । इति कलशे गंधं प्रक्षेपः ।।

अब कलश के जल में सर्वौषधी डाले । सर्वौषधी से प्रयोजन यहां इन दस औषधियों से है:—

कुष्टं मांसी हरिद्र द्वेमुरा शैलेय चन्दनम् ।

वचा चंपक मुस्ते च सर्वौषध्यः दशस्मतः ।।

अर्थात्—कूट, जरामांसी, हल्दी, मुरा, शैलेय, चन्दन, वच, चम्वक, यह दस सर्वौषधि कही जाती हैं।

इन औषधियों को कलश में डालते हुये यह मन्त्र पढ़े:—

ॐ याऽओषधीः पूर्वायातादेवेभ्यस्त्रियुगंपुरा ।।
मनैनुवभ्रूणामहं—शतंधामानिसप्तच ।।
इति सर्वौषधी प्रक्षेपः ।।

अब कलश में दूर्वा **(दूब)** डाले। मन्त्र:—

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्तिपुरुषःपरुषस्परि ।।
एवानो दूर्वेप्रतनुसहस्रेणशतेनच ।। इति दूर्वा प्रक्षेपः ।।

अब कुश डाले। मन्त्र:—

ॐ पवित्रेस्योवैष्णव्यौसवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सर्यस्यरश्मिभिः ।। तस्यतेपवित्रपतेपवित्रपुतस्ययत्कामः पुनेतच्छकेयम् ।। इति कुश प्रक्षेपः ।।

अब पुंगीफल **(सुपाड़ी)** डाले। मंत्र:—

ॐ याः फलिनीर्याऽफलाऽअपुष्पायाश्चपुष्पिणीः वृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चत्वँ—हसः ।। इति पुंगीफल प्रक्षेप ।।

अब कलश में स्वर्ण डाले **(**अभाव में दक्षिणा डाले**)** मन्त्र**:**—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेवऽआसीतः ।। सदाधार पृथिवीन्द्या मुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ।। इति दक्षिणा प्रक्षेपः ।।

फिर कलश के मुख पर पंच पल्लव रखें।

अश्वत्थोदुम्बरं प्लक्ष चूत न्यग्रोध पल्लवाः ।
पञ्च भङ्गा इति ख्याता सर्व कर्मसु शोभनाः ।।

इन पांच पेड़ों के पत्ते पंच पल्लव कहे जाते हैं। इन्हें कलश के मुख पर रखते हुए यह मन्त्र पढ़े।

ॐ अश्वत्थेवो निषदनं पर्णेवोवसतिष्कृता ।।
गो भाजऽइत्किला सथयत्सनवथ पुरुषम् ।।
इति पञ्च पल्लवानि प्रक्षेपः ।।

अब कलश के कण्ठ में रंगीन सूत्र **(**कलावा**)** बांधते हुए यह मन्त्र पढ़े**:**—

ॐ युवा सुवासाः परिवोतऽआगात्सऽउश्रेयान् भवति जायमानः ।। तन्धीरासः कवयऽउन्नयन्ति साध्यो मनसा देवयन्तः ।। इतिकौसुम्ब सूत्र बन्धनम् ।।

एक पात्र में चावल भर कर कलश के ऊपर रखे। मन्त्र**:**—

ॐ पूर्णादर्विपरापत सुपूर्णा पुनरापत ।।
वस्ने वविक्रीणा वहाऽइष मूर्जँ शतक्रतो ।।
इति कलशोपरि तंदुल पूरित पूर्ण पात्र निधानम् ।।

अब नारियल के ऊपर कलावा बंधा हुआ, स्वस्तिक लगा हुआ कलश के ऊपर स्थापित करे। मन्त्र**:**—

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहो रात्रे पर्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।। इष्णन्निषाण मुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण ।। इति श्रीफलनिधानम् ।।

कलश के समीप एक घृत का दीपक स्थापित करे। मन्त्र**:**—

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । अग्निर्वर्च्चो ज्योतिवर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्य्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।।

इति मन्त्रेण कलशसमीपे पूर्वदिशि एकस्मिनः पात्रे दीपं निदध्यात् ।।

इस प्रकार कलश स्थापित होने पर धूप, दीप, नैवेध, गन्ध, अक्षत, कुंकम, पुंगीफल, फल, पुष्प, जल आदि से कलश पर वरुण का पूजन करे। वरुण पूजन का मंत्र इस प्रकार है:—

ॐ तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।। अहेडमानौ वरुणे हवोध्युरुशँ् समानऽआयुः प्रमोषीः ।। इत्यनेन पाद्यादिभिः वरुणं संपूज्य ।।

:: प्रार्थना ::

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।।
मूले तत्रस्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृ गणाः स्मृता ।।1।।
कुक्षौ तु सागरास्सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।।
ऋग्वेदोथ यजुर्वेदो सामवेदोह्यथर्वणः ।।2।।
अंगैश्चसहिताः सर्वे कलशन्तु समाश्रिताः ।।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टि करो सदा ।।3।।
*आयान्तु यजमानस्य **(मम ग्रहेच)** दुरित क्षयकारकाः ।।*
सर्वे समुद्रा सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।।4।।
*आयान्तु यजमानस्य **(ममग्रहेच)** दुरित क्षयकारकाः ।।*
देव दानव संवादे मथ्यमाने महोदधौ ।।5।।
उत्पन्नोसि तदा कुम्भः विधृता विष्णुना स्वयम् ।।
त्वत्तोये सर्व तीथानि देवाः सर्वे त्वयिस्थिताः ।।6।।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिता ।।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वञ्च प्रजापतिः ।।7।।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः स पैतृकाः ।।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः काम फल प्रदाः ।।8।।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कतुमीहे जलोद्भवः ।।
*सान्निध्यं कुरुमे देव **!** प्रसन्नो भव सर्वदा ।।9।।*
इति कलश पूजनम् ।।

अथ कलशाधिष्ठातृदेवतानामावाहनम् ।

ॐ सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।।
इति मन्त्रेण कलशे गन्धाक्षतपातितः ।।

"ॐ सरितः सागराः" इस मंत्र से कलश पर चन्दन मिश्रित अक्षत छोड़ें।

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले त्वस्यं स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ।।
कुक्षौ तु सागरास्सप्त सप्तदीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथयजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ।
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।।
इत्यावाह्य पूजनं कुय्यात् ।।

तदुपरान्त "कलशस्य मुखे विष्णु" इत्यादि मन्त्रों से कलश पर विष्णु, रुद्र, ब्रह्मादि देवताओं का आवाहन करना चाहिये।

तत्रादौ संकल्पः ।। महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः सपरिवारस्य निखिलकामनाप्राप्त्यर्थं कर्त्तव्यामुकतृप्तिजनकामुककर्म कर्त्तुं कलशाधिष्ठातृ देवतानां पूजनमहं करिष्ये ।। इति संकल्पः ।। ॐ कलशाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः । इति मन्त्रेण गन्धादिभिः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं निवेद्य नतिं कुर्यात् ।।

फिर "महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे" इत्यादि वाक्य से संकल्प करें। तत्पश्चात् "ॐ कलशाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः" इस मन्त्र से गन्ध अक्षत आदि से विधिवत पूजन करे तथा हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर निवेदन करे।

अथ कलश प्रार्थना

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ । उत्पन्नाऽसि तदा कुम्भ निवृतो विष्णुना स्वयम् ।। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः । त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।। शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः । आदित्या वसवोरुद्रा श्विदेवाः सपैतृकाः ।। त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि ये च कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।

इति कलश स्थापनम् ।।

फिर "देवदान" इत्यादि मन्त्र पढ़कर कलश की प्रार्थना करें।

----*----**

गौरी गणेश पूजनम्

****

ॐ सुमुखश्कचैदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ।।1।।
धूमकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ।।2।।
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्यनजायते ।।3।।
शुक्लाम्बरधरन्देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनंध्यायेत्सर्व विघ्नोपशान्तये ।।4।।
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मैगणाधिपतये नमः ।।5।।
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थोभगवान्मङ्गलायतनो हरिः ।।6।।
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थोजनार्दनः ।।7।।
विनायक गुरुं भानुं ब्रह्माविष्णुमहेश्वरान् ।
सरस्वतीं प्रणम्यादौ शान्तिकार्यार्थसिद्धये ।।8।।
सर्वेष्वारंभकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवादिशन्त नः सद्धिं ब्रह्मेशान जनार्दनः ।।9।।
वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ् ।
अविघ्नं कुरु में देव सर्वकार्येषु सर्वदा ।।10।।
सर्वमंगलमांगल्ये शिवेसर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यंविके गौरि नारायणि नमोस्तुते ।।11।।

इन मन्त्रों को पढ़ते हुए जल, पुष्प, अक्षत आदि से गणेश तथा गौरी का आवाहन, पूजन, तथा अभिवंदन करे। नीचे के मंत्रों से अन्य देवताओं को नमस्कार करे।

ॐ सिद्धिबुद्धि सहित श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।

ॐ लक्ष्मी नाराणाभ्यान्नमः ।। ॐ उमामहेश्वराभ्यान्नमः । ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यांनमः ।। ॐ शचीपुरन्दराभ्यान्नमः । ॐ मातापितृचरण-कमलेभ्योनमः ।। ॐ कुलदेवताभ्योनमः । ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः । ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः । ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः ।। ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः । ॐ सर्वेभ्योदेवेभ्यो नमः । ॐ सर्वेभ्योब्राह्मणेभ्यो नमः । ॐ सर्वेभ्यो तीर्थेभ्यो नमः ।। ॐ एतत्कर्मप्रधान श्रीदुर्गादेव्यै नमः । ॐ पुण्यंपुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ।।

----***----

षोडसोपचार देव पूजन

******

देव पूजन के लिए षोडसोपचार विधान प्रसिद्ध है। यों पंचोपचार, दशोपचार, अष्टादशोपचार भी होते हैं। पूजन के लिए जितने प्रकार का पूजन विधान प्रयुक्त किया जावे उसे उपचार कहते हैं। पंचोपचार में (1) गन्ध (2) पुष्प (3) धूप (4) दीप (5) नैवेद्य यह पांच हैं। दशोपचार में (1) पाद्य (2) अर्घ्य (3) स्नान (4) मधुपर्क (5) आचमन (6) गन्ध (7) पुष्प (8) धूप (9) दीप (10) नैवेद्य हैं। षोडशोपचार में (1) आसन (2) स्वागत (3) पाद्य (4) अर्घ्य (5) आचमन (6) मधुपर्क (7) पुनराचमन (8) स्नान (9) वस्त्र (10) आभरण (11) गन्ध (12) पुष्प (13) धूप (14) दीप (15) नैवेद्य (16) वन्दन यह हैं। अष्टादश उपचार में (1) आसन (2) आवाहन (3) स्नान (4) आरती (5) वस्त्र (6) आचमन (7) यज्ञोपवीत (8) पुनराचमन (9) आभूषण (10) दर्पण (11) गन्ध (12) पुष्प (13) धूप (14) दीप (15) नैवेद्य (16) ताम्बूल (17) इत्रादि सुगन्ध लेपन (18) स्तुति यह 18 उपचार हैं।

अनेक पूजन ग्रन्थों तथा आचार्यों के अनुसार इनमें थोड़े थोड़े हेर फेर भी हैं। पुरुष देवताओं तथा स्त्री देवताओं के लिए पूजन सामग्री, कम तथा मन्त्रों में भी कुछ हेर फेर है। वैदिक विधान के अनुसार पुरुष देवताओं का षोडशोपचार पूजन "पुरुष सूक्त के 16 मन्त्रों से तथा स्त्री देवताओं का षोडशोपचार पूजन श्री सूक्त के 16 मन्त्रों से किया जाता है। चूंकि इन स्पृष्टों में हम स्मार्त विधि की हवन पद्धति का उल्लेख कर रहे हैं इसलिए यहां स्मार्त श्लोकों से ही पूजन मन्त्रों का विधान दिया गया है। इसी प्रकार षोडशोपचार के 16 विधानों में जो हेर फेर हैं उनमें से जो 16 उपचार अधिक उपयुक्त जांचे हैं उन्हीं का वर्णन कर दिया है।

षोडशोपचार, दशोपचार या पंचोपचार का पूजन संकेत जहां भी इस पुस्तक में आवे वहां इन मन्त्रों का तथा उपचार क्रम का उपयोग किया जा सकता है। अधिक सुविधा एवं

अवसर हो तो षोडस उपचार ठीक है अन्यथा संक्षिप्त में दशोपचार अथवा पंचोपचार से भी काम चल सकता है।

पुलिंग रूप से षोडषोपचार पूजन

आवाहन मन्त्र**:**—

आगच्छ भगवन्देव स्थाने चात्र स्थिरो भव ।
यावत्पूजां करिष्यामि तावत्त्वं सन्निधौ भव ।।1।।

आसन मन्त्र**:**—

रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम् ।
आसनञ्च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ।।2।।

आसनम् समर्पयामि ।।

पाद्य मन्त्र**:**—

पाद्यं गृहाण देवेश सर्वक्षेमसमर्थकम् ।।
भक्त्या समर्पितं देव लोकनाथ नमोऽस्तुते ।।3।।

पाद्यं समर्पयामि ।।

अर्घ्य मन्त्र**:**—

अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह ।
करुणां कुरुमेदेव गृहाणार्घ्यं नमोस्स्तुते ।।4।।

अर्घ्यं समर्पयामि ।।

आचमन मन्त्र**:**—

सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धि निर्मलं जलम् ।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर ।।5।।

स्नान मन्त्र**:**—

गङ्गासरस्वतीरेवा पयोष्णीनर्मदाजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे ।।6।।

स्नानम् समर्पयामि ।।

वस्त्र मंत्र**:**—

सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जा निवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।।7।।

वस्त्रम् समर्पयामि ।।

यज्ञोपवीत मन्त्र**:**—

नवभिस्तन्तुभिर्युक्त त्रिगुणां देवतामयम् ।
उपवातं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ।।8।।

यज्ञोपवीतम् समर्पयामि ।।

गन्ध मन्त्र**:**—

श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।।9।।

गन्धम् समर्पयामि ।।

पुष्प मंत्र**:**—

पुष्पैर्नानाविधैर्दिव्यैः कुमुदैरथ चम्पकैः ।
पूजार्थं नीयते तुभ्यं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ।।10।।

पुष्पाणि समर्पयामि ।।

धूप मन्त्र**:**—

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
अघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।11।।

धूपम् समर्पयामि ।

दीप मंत्र**:**—

आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ।।
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने ।
त्राहि मां तिरयाद्धोराद्दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ।।12।।

दीपम् दर्शयामि ।।

नैवेद्य मंत्र**:**—

नैवेद्यं गृह्यतां देव दधिक्षीरघृतानि च ।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।13।।

नैवेद्यं समर्पयामि ।।

नमस्कार मंत्र**:**—

नमः सर्व हितार्थाय जगदाधार हेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ।।
नमोरत्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुग धारिणे नमः ।।14।।

प्रदक्षिणा मन्त्र**:**—

यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण-पदे-पदे ।।15।।

दक्षिणा मन्त्र**:**—

पूजा फल समृध्यर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि ।
स्थापितं तेन मे प्रीता पूर्णान्कुरु मनोरथान् ।।
न्यूनातिरिक्तपूजायां सम्पूर्ण फलहेतवे ।
दक्षिणां काञ्चनीं देव स्थापयामि तवाग्रतः ।।16।।

दक्षिणा समर्पयामि ।।

स्त्री रूप से षोडषोपचार पूजनम्

आवाहन मन्त्र**:**—

ॐ आगच्छेहमहादेवि ! सर्वसम्पद्प्रदायिनि ।
यावत्द्व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधाभव ।।

अथवा

ॐ आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकर प्रिय ।।1।।

आसन मंत्र**:**—

अनेकरन्त संयुक्त नानामणिगणान्वितम् ।
कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ।।2।।

पाद्य मंत्र:—

गंगादि सर्व तीर्थोभ्योमया प्रार्थनयाहृतम् ।
तोयमेतत्सुख स्पर्श पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।3।।

अर्घ्य मन्त्र:—

निधीनां सर्व रत्नानां त्वमनर्घ्य गुणाह्यसि ।
सिंहोपरिस्थते देवि ! गृहाणार्घ्यंनमोस्तुते ।।4।।

आचमन मन्त्र:—

कर्पूरेणसुगन्धेन सुरभिस्वादु शीतलम् ।
तोयमाचमनीयार्थं देवि ! त्वं प्रतिगृह्यताम् ।।5।।

स्नान मन्त्र:—

मन्दाकिन्याः समानीतैर्हेमांमोरुहवासितैः ।
स्नानं कुरुष्व देवेशि! सलिलैश्च सुगन्धिभिः ।।6।।

वस्त्र मन्त्र:—

पट्टकूल युगं देवि ! कंचुकेन समन्वितम् ।
परिधेहि कृपां कृत्वा दुर्गे ! दुर्गति नाशिनि ।।7।।

कञ्चुक मन्त्र:—

स्वर्ण सूत्र मयं दिव्यं ब्राह्मणा निर्मितं पुरा ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ।।8।।

गन्ध मन्त्र:—

श्रीखण्ड चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं च देवेशि ! चन्दनं प्रति गृह्यताम् ।।9।।

अक्षत मन्त्र:—

अक्षतान्निर्मलां शुद्धां मुक्तामणि समन्वितान् ।
गृहाणेमान्महादेवि ! देहि मे निर्मलां धियम् ।।10।।

पुष्प मन्त्र:—

पुष्पैर्नाना विधैर्दिव्वैः कुमुदैरथचम्पकैः ।
पूजार्थंनीयते तुभ्यं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ।।11।।

अथवा

वस्त्रञ्च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।।11।।

धूप मन्त्र**:—**

दशांगगुग्गुलं धूपं चन्दनागरुसंयुतम् ।
समर्पितं मया भक्त्या देवि ! धूपं प्रतिगृह्यताम् ।।12।।

दीप मन्त्र**:—**

घृतव र्तिसमायुक्तं महातेजो महोज्वलम् ।
दीपं दास्यामि देवेशि ! सुप्रीताभवसर्वदा ।।13।।
दीपं दर्शयामि ।।

नैवेद्य, फल, ताम्बूल मन्त्र**:—**

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
नैवेद्यं गृह्यतां देवि ! भक्तिं में ह्यचलां कुरु ।।
द्राक्षा खर्जूर कदली पनसाम्र कपित्थकम् ।
नारिकेलेक्षुजम्बादि फलानि प्रतिगृह्यताम् ।।
एला लवङ्ग कस्तूरी कर्पूरैः पुष्प वासितां ।
बीटिकां मुख वासार्थंसमर्पयामि सुरेश्वरि ।।14।।

दक्षिणा, नीराजन, पुष्पाञ्जलि मन्त्र:—

पूजाफल समृद्ध्यर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि ।
स्थापितं तेन में प्रीता पूर्णानि कुरु मनोरथान् ।।

दक्षिणा समर्पयामि ।।

नीराजनं सुमाङ्गल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवि ! नमोऽस्तुते ।।
दुर्गे ! स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दरिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ।।15।।

नमस्कार मंत्र**:—**

नमः सर्व हितार्थायै जगदाधारहेतवे ।
साष्टांगोऽयं प्रणामस्तु प्रयत्नेन मया कृतः ।।
पुत्रान्देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मंगले ।
अन्यांश्च सर्व कामांश्च देहि देवि नमोऽस्तुते ।।16।।

----*----**

अथ नव ग्रहाणां स्थापनं पूजनञ्च

****

सूर्यावाहनम्

रक्तपुष्पाक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् । ॐ सप्तम्यां विशाखान्विताया कलिङ्गजातं कश्यपगोत्रं लोहितवर्णं वर्तुलाकृतिं मण्डलमध्यस्थं प्राङ्मुखं द्विभुजं पद्महस्तं सप्ताश्वरथवाहनं क्षत्रियाधिपतिमीश्वराधिदैवतमग्निप्रत्यधिदैवतसहितं सूर्यमावाहयामि ॐ भूर्भुवःस्वः भगवन् सूर्य इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

जपाकुसुमसङ्गकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् । तमोऽरिं सर्व पाघ्नं सूर्यमावाह्याम्यहम् ।। इत्यावाह्य ।।

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।। पद्मासनःपद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ।। इति मन्त्रेण पाद्यादिभिः सूर्य्यं सम्पूज्यानेनैव मन्त्रेण रक्तपताकादानम् । इसी सूर्य पूजनम् ।।1।।

अग्नि स्थापना के बाद नवग्रहों का पूजन करें। यथा—यजमान हाथ में लाल फूल और अक्षत लेकर "सप्तम्यां" से "सूर्य मावाहयाम्यहम" तक मन्त्र पढ़ कर सूर्य का आवाहन करे और कहे कि हे सूर्य भगवान **!** यहां आइये मेरे इस यज्ञ में स्थित हो इसकी रक्षा कीजिए। **(**इसी प्रकार नव ग्रहों के आवाहनान्त में भी कहना आवश्यक है।**)** तत्पश्चात् "ॐ आकृष्णेन" इत्यादि मन्त्र को पढ़कर गन्धादि से सूर्य देवता की विधिवत पूजा करे फिर पुनः इसी मन्त्र से लाल पताका दान करे।

चन्द्रावाहनम्

श्वेतपुष्पाक्षतान् गृहीत्वाऽऽवाहयेत्—ॐ चतुर्दश्यां कृत्तिकान्वितायां समुद्रजातमत्रिगोत्रं श्वेतवर्णं चतुरस्त्राकृतिं मण्डलात्पूर्वदक्षिणदिक्स्थं पश्चिमाभिमुखं दशाश्वरथवाहनं नशाप तिमुमाधिदैवतं जलप्रत्यधिदैवतसहितं चन्द्रामावाहयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्र इहा गच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञ मभिरक्ष ।

दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम् । ज्योत्स्नापतिं निशानार्थ सोममावाहयाम्यहम् ।। इत्यावाह्य ।।

ॐ इमं देवाऽअसपत्नँ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्यन्द्रियाय ।। इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोमीराजा सोमोऽस्माकं ब्रह्मणानां राजा ।।

श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्त्तव्यो वरदः शशी ।। इति मन्त्रेण पाद्यादिभिश्चन्द्रं संपूज्यानेनैव मन्त्रेण श्वेतपताकादानम् ।। इतिचन्द्रपूजनम् ।।2।।

यजमान सफेद फूल—अक्षत लेकर "ॐ चतुर्दश्यां से सोममावाहयाम्यहम्" तक मन्त्र पढ़कर चन्द्रमा का आवाहन करके "ॐ इमं देवा से वरदः शशी" तक मंत्र पढ़कर पाद्यादि से विधिवत् चन्द्रमा की पूजा करें और इन्हीं उपयुक्त मंत्रों से सफेद पताका दान करें।

:: भौमावाहनम् ::

रक्तपुष्पाक्षतान्गृहीत्वा आवाहयेत् । ॐ दशम्यां पूर्वाषाढान्वितायामवन्तीजातं **(अयोध्याजातं)** भारद्वाजगोत्रं रक्तवर्णं त्रिकोणमण्डलाद्दक्षिणदिग्विभागस्थं दक्षिणाभिमुखं मेषेवाहनं क्षत्रियाधिकपतिं स्कन्दाधिदैवतं क्षितिप्रत्यधिदैवतसहितं भौममावाहयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः भौम इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

धरणीगर्भसम्भूत विद्युत्तेजसमप्रभम् । कुमारं शक्तिहस्त च भौममावाहयाम्यहम् । इत्यावाह्य ।।

ॐ अग्निर्मूर्द्धादिव ककुत्पतिः प्रथिव्याऽअयम् । अपाँरिताँ सि जिन्वति ।।

रक्तमाल्याम्बरधरःशक्तिशूलगदाधरः । चतुर्भुजों मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः ।।

इति मन्त्रेण पाद्यादिभिः भौमं सम्पूज्य, अनेनैव मन्त्रेण रक्तपताकादानम् ।। इति भौमपूजनम् ।।3।।

यजमान लाल फूल और अक्षत लेकर "ॐ दशम्यां से भौममावाहयाम्यहम्" तक मन्त्र पढ़कर भौम का आवाहन करें। तत्पश्चात् "ॐ अग्निर्मूर्द्धादिवः से लेकर स्याद्धरासुत" तक मंत्र पढ़कर पाद्यादि से विधिवत भौम की पूजा करें तथा इसी पूर्वोक्त मन्त्र से लाल पताका दान करे।

:: बुधावाहनम् ::

हरित्पुष्पाक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् । ॐ द्वादश्यां घनिष्ठान्वितायां मगधदेशजातमत्रिगोत्रं हरिद्वर्णं वाणाकृतिं मण्डलात्पूर्वोत्तरस्थमुत्तराभिमुखं शूद्राधिपतिं सिंहवाहनं नारायणाधिदैवतं विष्णुप्रत्यधिदैवतसहितं बुधमावाहयामि । ॐ भूर्भुव स्वः बुध इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष । प्रियङ्गकलिकाभासं रुपेणाप्रतिमं बुधम् । सौम्यं सौम्यगुणोपेतं बुधमावाहयाम्यहम् ।। इत्यावाह्य ।।

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ् सृजेथामयं च । अस्मिन् सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ।।

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ।।

इति मन्त्रेण पाद्यादिभिर्बुधं सम्पूज्य अनेनैव मन्त्रेण हरित्पताकादानम् ।। इति बुधपूजनम् ।।4।।

हरे रंग के फूल और अक्षत लेकर "ॐ द्वादश्यां से लेकर बुधमावाहयाम्यहम्" तक मन्त्र पढ़कर बुध देवता का आवाहन करें और "ॐ उद्बुध्य" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पाद्यादि से पूजन कर इसी मन्त्र से हरे रंग की पताका दान करें।

:: गुर्वावाहनम् ::

पीत पुष्पाक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् ।

ॐ एकादश्यामुत्तराफाल्गुनीयुतायां सिन्धु देशजातमाङ्गिरसगोत्रं गोरोचनाभं दीर्घचतुष्कोणाकृतिं मण्डलादुत्तरस्थितमुत्तराभिमुखं सिंहवाहनं ब्रह्माधिदैवतमिन्द्रप्रत्यधिदैवतसहितं गुरुमावाहयामि ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गुरो इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

देवानां च मुनीनां च गुरुं काञ्चनसन्निभम् । वन्द्यभूतं त्रिलोकानां गुरूमावाहयाम्यहम् ।। इत्यावाह्य ।

ॐ वृहस्पतेऽअतियदर्योऽअर्हाद्यु मद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽक्रतप्रजातत दस्मासुद्रविणंधेहि चित्रम् ।। इति मन्त्रेण पाद्यादिभिः संपूज्य अनेनैव मन्त्रेण पीतपताकादानम् ।। इति गुरुपूजनम् ।।5।।

पीला फूल और अक्षत लेकर "ॐ एकादश्यां से लेकर गुरुमावाहयाम्यहम्" तक मंत्र पढ़कर गुरुदेव का आवाहन करें और "ॐ बृहस्पते" इत्यादि मंत्र को पढ़कर पाद्यादि से विधिवत् पूजा करें तथा इसी मन्त्र से पीत पताका दान करें।

:: शुक्रावाहनम् ::

श्वेतपुष्पाक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् ।

ॐ नवम्यां पुष्पयुतायां भोजकटे जातं भार्गवगोत्रं शुक्लवर्णं पञ्चकोणं मण्डलात्पूर्वदिक्स्थं पूर्वाभिमुखं श्वेताश्ववाहनभिन्द्राधिदैवतमिन्द्राणीप्रत्यधिदैवतसहितं शुक्रमावाहयामि ।। ॐ भूर्भुवः स्वः शुक्र इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम् ।

सर्वशास्त्रप्रवक्तारं शुक्रमावाहयाम्यहम् ।। इति आवाह्य । ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः । ऋतेनसत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धसऽइन्द्रम्येन्द्रियमिदंपयोऽमृतम्मधुः ।।

देव दैत्यगुरु तद्वत् पतिश्वेतौ चतुर्भुजौ ।

दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षासूत्र कमण्डलू ।।

इति मंत्रेण पाद्यादिभिः शुक्रं संपूज्य अनेनैव मंत्रेण श्वेतपताकादानम् ।। इति शुक्रपूजनम् ।।6।।

सफेद फूल और अक्षत लेकर "ॐ नवम्यां से लेकर शुक्रमावाहयाम्यहम्" तक मन्त्र पढ़कर शुक्र का आवाहन करे तत्पश्चात "ॐ अन्नात्परिस्रुतो" इत्यादि मंत्र पढ़कर पाद्यादि से पूजन करें तथा इसी मंत्र से सफेद पताका दान करें।

:: शन्यावाहनम् ::

बिल्वपत्राक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् ।

ॐ अष्टम्यां रेवतीयुतायां सौराष्ट्रजातं काश्यपगोत्रं लौहवर्णां धनुराकृतिं मण्डलात्पश्चिमस्थं पश्चिमाभिमुखं गृध्रवाहनम् संकरजातिं यमाधिदैवतं

प्रजापतिप्रत्यधिदैवतसहितं शनिमावाहयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः शने इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

नीलाम्बुजसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।

छायामार्तण्डसम्भूतं शनिमावाहयाम्यहम् ।। इति आवाह्य ।

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तुनः ।।

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।

वाणाबाणासनधरः कर्त्तव्योऽर्कसुतः सदा ।।

इति मन्त्रेणपाद्यादिभिः शनिं संपूज्य अनेनैव मन्त्रेण कृष्णपताका दानम् । इति शनिपूजनम् ।।7।।

बिल्वपत्र तथा अक्षत लेकर "ॐ अष्टम्यां से शनिमावाहयाम्यहम्" तक मंत्र पढ़कर शनि का आवाहन करें और फिर "ॐ शन्नो देवी" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पाद्यादि से पूजन करें तथा इसी मन्त्र से काले रंग की पताका दान करें।

:: राह्वावाहनम् ::

कृष्णपुष्पाक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् ।

ॐ पौर्णमास्यां भरणीयुतायां बर्बरजातं पैठीनसिगोत्रं कृष्णवर्णं शूर्पाकृतिं मण्डलात्पश्चिमदक्षिण दिक्स्थ दक्षिणाभिमुखं शूद्राधिपतिं सिंहवाहनं कालाधिदैवतं सर्पप्रत्यधिदैवतसहितं राहुमावाहायाम्यहम् । ॐ भूर्भुवः स्वः राहो इहागच्छ इह तिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

अर्द्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् ।

सिंहिकागर्भसम्भूतं राहुमावाहयाम्यहम् ।। इत्यावाह्य ।

ॐ कयानश्चित्रऽआभुवदूती बुधः सखा । कया सचिष्ट्यावृता ।।

कराल वदनः खड़गचर्मशूली वरप्रदः ।

नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ।।

इति मन्त्रेण पाद्यादिभिः राहुँ संपूज्यानेनैव मंत्रेण कृष्ण पताकादानम् ।। इति राहुपूजनम् ।।8।।

काले फूल और अक्षत लेकर "ॐ पौर्णमास्यां से राहुमावाहयाम्यहम्" तक मंत्र पढ़कर राहु का आवाहन करें तथा "ॐ कयानश्चित्र" इत्यादि मंत्र से पाद्यादि से विधिवत पूजन करें तथा इसी मन्त्र से काली पताका दान करें।

:: केत्वावाहनम् ::

::कृष्णपुश्पाक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् ।

ॐ अमावस्यायामश्लेषान्वितायां जातं जैमिनिगोत्रं धूम्रवर्णं ध्वजाकृतिं कपोतवाहनमन्त्यजाधिपति मण्डलात्पश्चिमोत्तरस्थं दक्षिणाभिमुखं चित्रगुप्ताधिदैवतं ब्रह्मप्रत्यधिदैवतसहितं केतुमावाहयाम्यहम् । ॐ भूर्भुवः स्वः केतो इहागच्छ इहतिष्ठ इमं यज्ञमभिरक्ष ।

पलाशधूम्रसङ्काशं तारकाग्रहमस्तकम् ।

रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं केतुमावाहयाम्यहम् ।। इत्यावाह्य ।

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।।

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गहिनो विकृताननाः ।

गृधासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ।।

इति मन्त्रेण पाद्यादिभिः केतुं सम्पूज्यानेनैव मंत्रेण धूम्रपताकादानम् ।। इति केतुपूजनम् ।।9।।

काले फूल और अक्षत लेकर "ॐ अमावश्यायां से लेकर केतुमावाहयाम्यहम्" तक मन्त्र पढ़कर केतुका आवाहन करें एवं "ॐ केतु" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पाद्यादि से विधिवत पूजन करें तथा इसी मन्त्र से धूम्र रंग की पताका दान करें।

प्रार्थना (अंजली बांध प्रार्थना करें)

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी ।
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।।
गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः ।
सर्वग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ।।

----*----**

गायत्री आवाहनम्

****

गायत्री के चित्र, मूर्ति, प्रतिमा, अग्नि अथवा जल पात्र को गायत्री माता का प्रतीक मानकर उसपर आवाहन करना चाहिये। शान्त चित्त से गायत्री माता की छवि का ध्यान करते हुए निम्न लिखित आवाहन मंत्र पढ़ना चाहिए।

ॐ आयातु वरदा देवि अक्षरं ब्रह्मवादिनी ।
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते ।।

आवाहन मन्त्र के अनन्तर पाद्य, अर्घ्य, आचमन, धूप, दीप, अक्षत, आदि से पूजन करे निम्न लिखित प्रार्थना अष्टक पढ़ना चाहिए।

गायत्री अष्टकम् ।

सुकल्याणी वाणी सुरमुनिवरैः पूजितपदाम् ।
शिवामाद्यां वन्द्यां विभुवनमयी वेदजननीम् ।।
परां शक्तिं स्रष्टुंविविध विध रूपा गुणमयीम् ।
भजेऽम्बां गायत्री परममृतमानन्दजननीम् ।।1।।
विशुद्धां सत्वस्थामखिल दुख दोषार्निहरणीम् ।
निराकारां सारां सुविमल तपो मूर्तिमतुलाम् ।।
जगज्ज्येष्ठां श्रेष्ठासुरमसुरपूज्यां श्रुतिनुताम् ।
भजेऽम्बां गायत्री परममृतमानन्दजननीम् ।।2।।
तपोनिष्ठाभीष्टांम्बजनमन सन्ताप शमनीम् ।
दयामूर्ति स्फूर्ति यिति तति प्रसादैक सुलभाम् ।।
वरेण्यां पुण्यां तां निखिल भव बन्धापहरणीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।3।।
सदाराध्यां साध्यां सुमति मति विस्तार करणीम् ।
विशोकामालोकां हृदयगत मोहान्ध हरणीम् ।।
परां दिव्यां भव्यामगम भव सिन्ध्वेक तरणीम् ।
भजेऽम्वां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।4।।
अजां द्वैतां त्रैतां त्रिविध गुण रूपां सुविमलाम् ।
तमो हन्त्रीं तन्त्रीं श्रुति मधुरनादां रसमयीम् ।।

महामान्यां धन्यां सततकरुणाशील विभवाम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।5।।
जगद्धात्रीं पात्रीं सकल भव संहार करणीम् ।
सुवीरां धीरां तां सुविमलतयो राशि सरणिम् ।।
अनेकामेको वै त्रयजगदधिष्ठानपदवीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।6।।
प्रबुद्धां बुद्धां तां स्वजनयति जाड्यापहरणिम् ।
हिरण्यां गुण्यां ता सुकविजन गीतां सुनिपुणाम् ।।
सुविद्यां निरवद्यामकथ गुण गाथां भगवतीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।7।।
अनन्तां शान्तां यां भजित बुध वृन्दः श्रुतिमयीम् ।
सुगेयां ध्येयां यां स्मरति हृदि नित्यं सुरपतिः ।।
सदा भक्त्या शक्त्या प्रणति यतिभिः प्रीतिवशगः ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।8।।
शुद्ध चित्तः पठेद्यस्तु गायत्रीं अष्टकं शुभम् ।अहो भाग्यो भवेल्लोके तस्य माता प्रसीदति ।।9।।

----*----**

छह दिशाओं में देव स्थापन तथा पूजन

****

जो देव शक्तियां जिस दिशा में प्रतिष्ठित हैं उनका पूजन उसी दिशा में किया जाता है। सर्वतो भद्र में प्रतिष्ठित देवताओं के अतिरिक्त कुछ विशेष देवताओं की स्थापना इन विशेष दिशाओं में की जाती है।

पूर्व में—पञ्चोङ्कार, अग्नि कोण में—द्वादश गणेश, नैर्ऋत में—वास्तु, वायव्य में—योगिनी तथा क्षेत्र पाल, उत्तर में—षोडस मातृका, स्थल मातृ का तथा घृत मातृ का, ईशान में—वरुण तथा नवग्रह की विशेष स्थापना है। पश्चिम में पूर्वाभिमुख होकर यजमान बैठता है और दक्षिण में उत्तराभिमुख होकर आचार्य बैठता है इन दो दिशाओं को छोड़कर शेष छह दिशाओं में उपरोक्त विशेष देवों की स्थापना की गई है। इनमें से कुछ देवता सर्वतोभद्र में भी आ गये हैं। फिर भी उनकी विशेष स्थापना उनकी अपनी विशेष दिशा में भी की जाती है। इस प्रकार दो बार स्थापना में कोई भ्रम या दोष मानने की आवश्यकता नहीं है।

जहां समुचित सुविधा है, वहां यज्ञ मण्डप के उपयुक्त दिशा भागों में पूजा वेदी बनाकर अथवा चौकी स्थापित करके कलश, नारियल, अक्षत आदि मांगलिक वस्तुओं को देवस्थापन का प्रतीक मानकर वहां आवाहन तथा पूजनीय वस्तुओं से पूजन करते हैं। इस दिक् देव पूजन का क्रम निम्न प्रकार है—

पूर्व में पंचोङ्कार का पूजन करना। **(अक्षत लेकर)**

ॐ ब्रह्मा देवी च गायत्री तथा गोवर्द्धनेश्वरः ।
पृथ्वी यज्ञ पतिश्चैतान् पंचोङ्कारान्नमाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः पूर्वे ब्रह्मन् दक्षिणे गायत्रि पश्चिमे गोवर्द्धन उत्तरे पृथिवि मध्ये च यज्ञपते इहागच्छत् इहातिष्ठत् । ब्रह्मादि पंचोङ्कारेभ्यो नमः ब्रह्मादि पंचोङ्कारान् आवाहयामि स्थापयामि नमः ।

अग्नि कोण में वक्रतुण्डादि द्वादश गणेश पूजन करना ।

ॐ नमो देव गणेशाय नमस्ते विघ्न नाशक ।
नमो मूषकमारुढ शुभ कर्त्रे नमोनम् ।
नमः कात्यायनीपुत्र नमः परशुपाणये ।।
रवेरुदयतेरूपं विद्याबुद्धि विचक्षण ।।

देहि मे रूप सौभाग्यं देहि मे पुत्र सम्पदः ।।

इच्छासिद्धिप्रदो देव यथोक्त मे सदा शुभ ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वक्रतुण्डादि द्वादश मूर्त्ति गणपा इहागच्छ इहतिष्ठत । वक्रतुण्डादिद्वादश मूर्तिगणपेभ्यो नमः । वक्रतुण्डादि द्वादश गणपान् आवाहयामि स्थापयामि नमः ।

नैर्ऋत्य कोण में वास्तु पूजन कराना।

नागपृष्ठसमारूढं शूलहस्तं महाबलम् ।।

पाताल नायकं देवं वास्तुदेवं नमाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वास्तुपुरुष इहागच्छ इहतिष्ठ वास्तु पुरुषाय नमः । वास्तु पुरुषमावाहयामि स्थापयामि नमः ।

वायव्य कोण में दिव्यादि 64 योगिनी का पूजन कराना।

ॐ जयादि सर्वायोगिन्यः दुर्गारूपाश्वताः स्मृता ।

पूजया वलिदानेनसन्तुष्टास्संतु मे सदा ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दिव्यादि 64 योगिन्यः इहागच्छत इहतिष्ठत ।। दिव्यादि 64 योगिनीभ्यो नमः ।। दिव्यादि 64 योगिनीः आवाहयामि स्थापयामि नमः ।।

वायव्य कोण में योगिनी के समीप अजरादि 50 क्षेत्रपाल का पूजन कराना।

ॐ क्षेत्रपालान्नमस्यामि सर्वारिष्टनिपूजनान् ।

अस्य यागस्यसिध्यर्थं पूजयाराधितान् मया ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजरादि पंचाशत्क्षेत्रपा इहागच्छत इहतिष्ठत अजरादि क्षेत्र पेभ्यो नमः । अजरादि क्षेत्रपान् आवाहयामि स्थापयामि नमः ।।

उत्तर दिशा में षोडषमातृका का पूजन कराना ।।

ॐ गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजयाजया ।

देवसेना स्वधा स्वाहा मातरोलोक मातरः ।।

हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः ।

गणेशेनाधिकाह्येता वृद्धोपूज्याश्वषोडश ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यादिषोडशमातर इहागच्छत इहतिष्ठत । गौर्यादि 16 मातृकाभ्योनमः । गौर्यादिमातः आवाहयामि स्थापयामि नमः।।

स्थल मातृका पूजनम् ।

ॐ ब्राह्मी माहेश्वरो चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डाः सप्तमातरः ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्राह्मी माहेश्वर्यादि सप्त स्थलमातर इहागच्छत । इहतिष्ठत । ब्राह्मी माहेश्वर्यादि सप्तस्थलमातृकाभ्यो नमः । ब्राह्मी माहेश्वर्यादि मातः आवाहयामि स्थापयामि नमः ।।

घृत मातृका पूजनम् ।

ॐ कुण्ड्यलग्नवसोर्द्धारा पञ्चधारा घृतेन तु ।

कारयेत्सप्तधारा वा नातिनीचा नचोच्छ्रिताः ।।1।।

कीर्तिर्लैक्ष्मीर्धृतिर्मेधा सिद्धिः प्रज्ञा सरस्वती ।

माङ्गल्येषु प्रपूज्याश्च सप्तैता घृतमातरः ।।2।।

ॐ भूर्भुवः स्वः कीर्तिर्लक्ष्म्यादि सप्तघृतमातर इहागच्छत् इहतिष्ठत् । कीर्तिर्लक्ष्म्यादि सप्तघृतमातृकाभ्यो नमः । कीर्तिर्लक्ष्म्यादि मातः आवाहयामि स्थापयामि नमः ।।

ईशान कोण में वरुण पूजन ।।

ॐ नागपाशधरं देवं वरुणं नक्रवाहनम् ।

शुद्धस्फटिकसंकाशं प्राणारूपं नमाम्यहम् ।।

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां प्रतिमीश्वरम् ।

आवाहयामियज्ञेस्मिन्पूजेयं प्रति गृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुण इहागच्छ इहतिष्ठ । वरुणाय नमः । वरुणमावाहयामि स्थापयामि नमः ।।

ईशान कोण में सूर्यादि नवग्रह पूजन कराना ।।

ॐ शिवोगौरीतथास्कन्दो विष्णु ब्रह्मापुरन्दरः ।

यमकालश्चित्रगुप्तश्चाधिदेवाइमेस्मृताः ।।

ॐ अधिदेवताभ्यो नमः ।।

ॐ अग्निरापोमहीविष्णुरिन्द्ररिन्द्राणिका तथा ।

प्रजापतिर्भुजंगश्च ब्रह्माप्रत्यधिदेवताः ।।

ॐ प्रत्यधिदेवताभ्यो नमः ।।

ॐ विनायकस्तथादुर्गा वायुराकाशमेव च ।

आश्वनोचैवपंचैतांल्लोकपालान्नमाम्यहम् ।।

ॐ गणादिपंचलोकपालेभ्यो नमः ।।

ॐ इन्द्रौ वन्हिः पितृपतिनैर्ऋतो वरुणो मरुत् ।

कुवेर इशो ब्रह्मा च अनन्तश्च दिगीश्वराः ।।

ॐ इन्द्रादिदशदिग्पालेभ्यो नमः ।।

----***----

सर्व देवस्थापना के लिए—सर्वतो भद्र चक्र

******

सर्वतो भद्र चक्र इस पुस्तक में अन्यत्र छपा हुआ है। लाल, हरे, काले, और सफेद रंगों से यह बनाया जाता है। यह सभी प्रधान देवों की स्थापना का शास्त्रोक्त आसन है। सो यों अष्टलिङ्गतो भद्र, एकलिङ्गतो भद्र, चतुर्लिङ्गतो भद्र, द्वादश लिङ्गतो भद्र, नवग्रह भद्र, वरुण मण्डल भद्र, वास्तु चक्र आदि अनेक भद्र होते हैं। इनका वर्णन भद्र मार्तण्ड में विस्तार पूर्वक दिया गया है। यह भद्र अनेक अवसरों पर अनेक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। इन सब में सर्वतो भद्र सर्वोपयोगी, सरल, प्रचलित एवं उपयुक्त है। सब देवताओं को एक स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए यह रंग बिरंगा गलीचा जहां शास्त्रोक्त एवं अनेक विशेषताओं से संयुक्त है वहां यह देखने में भी बड़ा मनोहर एवं हृदय ग्राही प्रतीत होता है।

चौकोर चौकी पर कोई उत्तम वस्त्र बिछाकर उस पर सवतो भद्र चक्र की स्थापना की जाती है। 18 कोष्टक लम्बाई में और 18 कोष्टक चौड़ाई इसमें होते हैं। बीचों बीच 4-4 कोष्टकों

की लम्बाई चौड़ाई में अष्टदल कमल बनाया जाता है। कमल के चारों ओर एक एक कोष्ट की पीत वर्ण परिधि होती हैं। इसका प्रमाण इस प्रकार है।

प्रागुदीच्यायता रेखाः कुर्यादिकोन विंशतिम् ।

खण्डेन्दुस्त्रिपदैः कोणे शृंखला पञ्चभिः पेदेः ।।1।।

एकादश पदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः ।

चतुर्विंशत्पदा वापी परिधिर्विंशतिः पदैः ।।2।।

मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्ट दलं स्मृतम् ।

श्वेतेन्दुः शृंखला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ।।3।।

भद्रारुणा सिता वापी परिधिः पीत वर्णकः ।

वाह्यान्तर्दलाश्वेता कर्णिका पीत वर्णिका ।।4।।

परिध्या वेष्टितं पद्मं वाह्येसत्वं रजस्तमः ।

तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांच सुरेश्वरान् ।।5।।

भद्रेणा पूजनाशक्तौ कार्यमष्टदलं शुभम् ।

गोधूमान्नेम तत्कार्य तण्डुलेनाऽथवा शुभम् ।।6।।

उपरोक्त प्रमाण को भाषा में समझाने से भावार्थ ठीक प्रकार वे ही समझ सकते हैं जिन्होंने पहले सर्वतो भद्र को देखा या बनाया हो। सर्वसाधारण की सुविधा के लिए रंगीन चक्र का छापा जा रहा है जिसे देख कर पाठक उसे स्वयं ही बना सकें।

चावलों को प्रयुक्त रंगों से रंग कर उनकी स्थापना की जाती है। कई बार लाल रंग का कार्य मसूर की दाल से, काले रंग का कार्य उर्द की दाल से, हरे रंग का कार्य मूंग की दाल से, पीले रंग का कार्य चने की दाल से और सफेद रंग का कार्य चावलों से लिया जाता है। कपड़े पर उपरोक्त रंगों की कढ़ाई छपाई करके अथवा चांदी सोने की चद्दर पर इन रंगों की मीनाकारी करके भी भद्र बनाये जाते देखे गये हैं। कोई कोई रोली, पिसी मेंहदी, हल्दी, आटा, छनी हुई भस्म से क्रमशः लाल, हरा, पीला, सफेद एवं काला रंग बनाते हैं। इस प्रकार कई प्रकार की वस्तुओं की सहायता से लोग भद्र बनाते हैं। पर अधिक उपयुक्त धान्यों द्वारा रंग प्रदर्शन करना ही है।

भद्र बन जाने पर उसके ऊपर यथा स्थान देवताओं की स्थापना तथा पूजा करे उसकी विधि इस प्रकार है:—

अक्षतान् गृहीत्वाऽऽवाहनं कुर्यात् ।

हाथ में अक्षत लेकर देवताओं का क्रम से आवाहन पूजन करें।

तत्र मध्ये कर्णिकायां ब्रह्माणमावाहयेत्:—
ॐ त्वं वै चतुर्मुखो ब्रह्मा सत्य लोक मितामहः ।
आगच्छ मण्डले चास्मिन्मम सर्वार्थ सिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः । ब्रह्माणामावाहयामि स्थापयामि ।। भो ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ ।।1।। इति मध्ये ब्रह्माणं ।।

सर्व प्रथम उपर्युक्त मन्त्र से मण्डप के मध्य में ब्रह्मा जी का आवाहन, पूजन करे ।।1।।

तत उत्तरे वाप्यां सोममावाहयेत् :—
ॐ क्षीरोदार्णवसम्भूतं लक्ष्मीबन्धुं निशाकरम् ।
मण्डले स्थापयाम्यत्र सोमं सर्वाथसिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः । सोममावाहयामि स्थापयामि ।। भो सोम इहागच्छ इह तिष्ठ ।।2।। इति उत्तरे सोमम् ।।

तदन्तर "ॐ क्षीरोदार्णवा" आदि मन्त्रों से उत्तर में सोम **(**चन्द्रमा**)** का आवाहन, पूजन करे।

तत ईशान्यां खण्डेन्दावीशानमावाहयेत्:—
ॐ ईशानीपालकं श्रेष्ठं सर्शलोकभयङ्करम् ।
मण्डले स्थापयामीह ईशानं सर्वसिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि रथापयामि ।। भो ईशान इहागच्छ इह तिष्ठ ।।3।। इति ऐशान्यामीशानम् ।।

तदनन्तर "ॐ ईशानीपालकं" आदि मन्त्रों से ईशान कोण में ईशान देवता का आवाहन, पूजन करें।

ततः पूर्वस्यां वाप्यामिन्द्रमावाहयेत्:—
ॐ सर्वलोकाधिकं श्रेष्ठं देवर्षीणां च पालकम् ।
पूर्वदिक्पालकं देवराजं वै स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः । इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि ।। भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ ।।4।। इति पूर्वे इन्द्रम् ।।

तत्पश्चात् "ॐ सर्व लोकाधिक" मन्त्र से पूर्व भाग में इन्द्र देवता का आवाहन, पूजन करें।

तत आग्नेय्यां खण्डेन्दावग्नि मावाहयेत्:—
ॐ त्रिपादं मेषवाहं च त्रिशिखं च त्रिलोचनम् ।
आग्नेय्यां स्थापयाम्यत्र ह्यग्निं पुरुषमुत्तमम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः । अग्निमावाहयाम स्थापयामि ।। भौ अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ ।।5।। इत्याग्नेय्यामग्निम् ।।

फिर "ॐ त्रिपादं मेषवाहं" मन्त्र से अग्नि कोण में अग्नि देवता की स्थापना, आवाहन पूजन करे।

ततो दक्षिणो वाप्यां यममावाहयेत्:—
ॐ अन्तकः सर्वलोकानां धर्मराज इतिश्रुतः ।
अतस्त्वां स्थापयाम्यत्र दक्षिणस्यां स्थिरो भव ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः । यममावाहयामि स्थापयामि । भोजयम इहागच्छ इह तिष्ठ ।।6।। इति दक्षिणे यमम् ।।

फिर "ॐ अन्तकः सर्व लोकानां" मन्त्र से दक्षिण भाग में यमराज की स्थापना, पूजन करें।

ततो नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ निर्ऋतिमावाहयेत्:—
ॐ नैर्ऋत्यां वसतिर्यस्य घोररूपी सदा हि यः ।
निर्ऋतिं स्थापयाम्यत्र नैर्ऋत्यां मण्डले शुभे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः । निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि ।। भो निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठ ।।7।। इति नैर्ऋत्यां निर्ऋतिम् ।।

तदनन्तर "ॐ नैर्ऋत्या" मन्त्र से नैर्ऋत्य कोण में निऋति देवता की स्थापना करें।

ततः पश्चिमे वाप्यां वरुणामावहयेत्:—
ॐ अपाम्पतिं पाशधरं यादसाम्पत्तिमुत्तमम् ।
वरुणं स्थापयाम्यत्र वारुण्यां मण्डले शुभे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः । वरुणमावाहयासि स्थापयामि ।। भो वरुण इहागच्छ इह तिष्ठ ।।8।। इति पश्चिमे वरुणम् ।।

फिर "ॐ अपाम्पतिं पाशधरं" मन्त्र से पश्चिम दिशा में वरुण की स्थापना पूजन करें।

ततो वायव्यां खण्डेन्दौ वायुमावाहयेत्:—

ॐ आशुगं स्पर्शबोधं च गन्धवाहं सुशीतलम् ।

मण्डले स्थापयामीह वायव्यां वायुमुत्तमम् ।।

ॐ भू र्भुवः स्वः वायवे नमः । वायुमावाहयामि स्थापयामि ।। भो वायो इहागच्छ इह तिष्ठ ।।9।। इति वाव्यां वायुम् ।।

फिर "ॐ अशुगं स्पर्शबोधं" मन्त्र से वायव्य कोण में वायु की स्थापना करें।

ततो वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे अष्टवसूनावाहयेत्ः—

ॐ धरो ध्रुवश्च सोमश्चाप्यांशुगाश्चानिलोऽनलः ।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वस्वष्टकमिह स्थिरम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यौ नमः । अष्ट वसूनावहयामि स्थापयामि ।। भो अष्टवसवः इहागच्छत इह तिष्ठत ।।10।। इति वायुसोमयोर्मध्ये वसून् ।।

फिर "ॐ धरो ध्रुवश्च" मन्त्र से वायु तथा सोम के बीच में, धर, ध्रुव, सोम, आशुग, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास इन आठों वसुओं की स्थापना, आवाहन, पूजन करें।

ततः सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे एकादश रुद्रानावाहयेत्:—

ॐ त्रिनेत्राय त्रिरूपाय त्रिजटाय महात्मने ।

नमस्कृत्वा स्थापयामि मण्डलोपरि मध्यतः ।।

ॐ भू र्भुवः स्वः एकादशरुद्रेभ्यो नमः । एकादश रुद्रानावाहयामि स्थापयामि ।। भो एकादश रुद्राः इहागच्छत इह तिष्ठत ।।11।। इति सोमेशानयोर्मध्ये रुद्रान् ।।

तत्पश्चात् "ॐ त्रिनेत्राय" इस मन्त्र से सोम तथा ईशान के बीच में एकादश रुद्रों की स्थापना पूजन करें।

तत ईशानपूर्वयोर्मध्ये भद्रे द्वादशादित्यानवाहयेत्:—

ॐ आदित्यं भास्करं चैव प्रभाकरदिवाकरौ ।

सूर्य्यं ग्रहपतिं चैव व्रघ्नं तेजो हरिद्वरिम् ।।

सप्ताश्वं वेदमूर्तिं च त्रिदैवत्यं क्रमणे च ।

इत्यादि द्वादशादित्यान्मण्डले स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः द्वादशादित्येभ्यो नमः । द्वादशादित्यानावाहयामि स्थापयामि ।। भो द्वादिशादित्या इहगच्छता इह तिष्ठत ।। इति ईशानेन्द्रयोर्मध्ये द्वादशादित्यान् ।।12।।

ततपश्चात् "ॐ आदित्यं" मन्त्र से ईशान और इन्द्र के बीच में द्वादश सूर्यों की स्थापना, पूजन करें।

तत इन्द्राग्न्योर्मध्ये भद्रेऽश्विनावावाहयेत्:—

ॐ अश्विनौ देववैद्यौ च सर्गस्थित्यन्तकारकौ ।

मण्डले स्थापयित्वा तु पुजयाभीष्टसिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः । अश्विनावावाहयामि स्थापयामि ।। भो अश्विनौ इहागच्छतम् इहतिष्ठतम् ।। इति इन्द्राग्न्योर्मध्ये अश्विनौ ।।13।।

तत्पश्चात् "ॐ अश्विनौ" मन्त्र से इन्द्र तथा अग्नि के बीच में अश्विनी कुमारों की स्थापना करें।

ततः अग्नियमयोर्मध्ये भद्रे सपितृन विश्वेदेवानावाहयेत्:—

ॐ दैवे कर्मणि पित्र्ये च ये मुख्याम्सर्वदा शुभाः ।

मण्डले स्थापयामीह सुखानुष्ठानसिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । विश्वेदेवानावाहयामि स्थापयामि ।। भो विश्वेदेवा इहागच्छत इह तिष्ठत ।।

ॐ अहमावाहयिष्यामि पितृँस्तांस्तेजसोऽधिकान् । आयान्तु पितरः सर्वे यज्ञान्ते शुभदायकाः ।।

ॐ भू र्भुवः स्वः पितृीयो नमः । पितृनावाहयामि स्थापयामि ।। भो पितर इहागच्छत इहतिष्ठत ।।14।। इति अग्नियमयोर्मध्ये सपितृन विश्वेदेवान् ।।

तत्पश्चात् "ॐ दैवे कर्मणि" मन्त्र से अग्नि और यम के बीच में विश्वदेव की स्थापना करें तथा "ॐ अहमावाहयिष्यामि" आदि मन्त्र से पितरों की स्थापना करें।

ततो यमनिर्ऋत्योर्मध्ये भद्रे सप्तयक्षानावाहयेत्:—

ॐ यदृच्छया पर्यटन्ति यक्षराजा महीतले ।

कौतुकं प्रेक्षितुं चास्मिन्मण्डले सन्तु सुस्थिराः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सप्तयक्षेभ्यो नमः । सप्तयक्षानावाहयामि स्थापयामि ।। भो सप्तयक्षा इहागच्छत इह तिष्ठत ।। इति यम निर्ऋत्योर्मध्ये यक्षान् ।।15।।

तदनन्तर "ॐ यदृच्छया पर्यटन्ति" मन्त्र से यम और निर्ऋति के बीच में यक्षों की स्थापना करें।

ततो निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये भद्रे भूतनागानावाहयेत्:—

ॐ अनन्तो वासुकिश्चैव कालीयो मणिभद्रकः ।

शङ्खश्च शङ्खपालश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ।।

धृतराष्ट्रश्च नागेशाः प्रगृह्णन्तु ममार्चनम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भूतनागेभ्यो नमः । भूतनागान्यावाहयामि स्थापयामि ।। भो भूतनागानि इहागच्छत इह तिष्ठत ।। इति निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये नागान् ।।16।।

तदनन्तर "ॐ अनन्तो वासुकिश्चैव" मन्त्र से निऋति और वरुण के बीच में नागदेवताओं की स्थापना करें।

ततो वरुण वाय्वोर्मध्ये भद्रे गन्धर्वाप्सरस आवाहयेत्:—

ॐ उर्वशीप्रमुखाः सर्वाः स्वर्वेश्याः शक्रपूजिताः ।

गन्धर्वैश्च सहायान्तु मण्डलेऽस्मिन्सुशोभनाः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गन्धर्वेभ्यो नमः । गन्धर्वानावाह—यामि स्थापयामि ।। भो गन्धर्वा इहगच्छत इह तिष्ठत ।। तत्रैव अप्सरस आवाहयेत् ।।

ॐ आवाहयेऽहं सुरदेवसेव्याः स्वरूपतेजोमुखपद्मभासः ।

सर्वामिरेशैः परिपूर्णकामाः पूजां गृहीतुं मम यज्ञभूम्यै ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अप्सरोभ्यो नमः । अप्सरस आवाहयामि स्थापयामि भो अप्सरस इहागच्छत इह तिष्ठत ।। इति वरुणवाय्वोर्मध्ये गन्धर्वाप्सरसः ।।17।।

तत्पश्चात् "ॐ उर्वशी" आदि मन्त्रों से वरुण और वायु के बीच में गन्धर्व तथा अप्सराओं की स्थापना करें।

ततो ब्रह्मसोमयोर्मध्ये वाप्याम् स्कन्दं नंदीश्वरं शूलञ्चावाहयेत्:—

ॐ षडाननं चतुर्हस्तं स्कन्दं गौरीसुतं शुभम् ।

इहैव पूजयिष्यामि सर्वकामार्थ सिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः स्कन्दाय नमः द्य स्कन्दमावाहयामि स्थापयामि ।। भो स्कन्द इहागच्छ इह तिष्ठ ।।18।।

तदनन्तर "ॐ षडाननं" आदि मन्त्र से ब्रह्म और सोम के बीच में स्कन्द की स्थापना करें।

ॐ त्र्यम्बकं त्रिपुरुषं नीलकण्ठं सदाशिवम् ।
सण्डले स्थापयामीह सुखानुष्ठाम सिद्धये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः नन्दीश्वराय नमः । नन्दीश्वरमावाहयामि स्थापयामि ।। भो नन्दीश्वर इहागच्छ इह तिष्ठ ।19।

तदनन्तर उपर्युक्त मन्त्र से ब्रह्म और सोम के मध्य में नन्दीश्वर **(**महादेव**)** की स्थापना करे।

ॐ भूर्भुवः स्वः नन्दिने नमः । नन्दिनमावाहयामि स्थापयामि ।। भो नन्दिन् इहागच्छ इह तिष्ठ । इति स्कान्दादुत्तरे नन्दिनं ।।19।।

नन्दीश्वर **(**महादेव जी**)** के साथ 2 स्कन्द के उत्तर में नन्दिन **(**नन्दी, शिवजी का वाहन**)** की स्थापना करे।

नन्दिकेश्वरादुत्तरः शूलं तदुत्तरतस्तत्रैव महाकालाश्चावाहयेत् ।।
ॐ आयातमायातमुमाप्रियस्य,
प्रियौ मुनींद्रादिकासिद्धसेव्यौ ।
ग्रह्णीतमेतां मम शूलकालौ,
पूजां सुखौघं कुरुतंनमो ताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः शूलमहाकालाभ्या नमः । शूलमहाकालौ आवाहयामि स्थापयामि । भो शूल महाकालौ इहागच्छतम् इह तिष्ठतम् ।। इति ।।20।।

तत्पश्चात् "ॐ आयातमायातमुमाप्रियस्य" आदि मन्त्र से नन्दिकेश्वर के उत्तर में शूल तथा शूल के उत्तर में वहीं महाकाल की स्थापना करे।

ततो ब्रह्मशानयोर्मध्ये वल्लीषु दक्षादीन सप्त प्रजापतो नावाहयेत्**:**—

ॐ दक्षोऽसि सवकार्येषु महायज्ञकर प्रियः ।

ऋषिश्च सर्वदा दक्ष मण्डलेस्मिन स्थिरो भव ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दक्षादि सप्तप्रजापतिभ्यो नमः । दक्षादिसप्तप्रजापतीनावाहयामि स्थापयामि ।। भो दक्षादिसप्तप्रजापतयः इहागच्छ इह तिष्ठत ।।21।। इति ब्रह्मेशान योर्मध्येदक्षम् ।।

तदनन्तर "ॐ दक्षोऽसि सर्वकार्येषु" मन्त्र से ब्रह्म और ईशान के मध्य में दक्ष आदि सप्त प्रजापतियों की स्थापना करे।

ततो ब्रह्मेन्द्रयोर्मध्ये वाप्यां दुर्गामावाहयेत्:—

ॐ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं सर्वदा शुभाम् ।

भक्तानां वरदां नित्यां दुर्गामावाहयाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्गायै नमः । दुर्गामावाहयामि स्थापयामि ।। भो दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति ब्रह्मेन्द्रयोर्मध्ये दुर्गाम् ।।22।।

तत्पश्चात् "ॐ तामग्निवर्णां" मन्त्र से ब्रह्म और इन्द्र के मध्य में दुर्गा देवी की स्थापना, पूजन करे।

ततो दुर्गापूर्वे विष्णुमावाहयेत्:—

एह्येहि नीलाम्बुद मेचक त्वं श्रीवत्सवक्ष कमलाधिनाथ ।।

सर्वामरैः पूजितपादपद्म ग्रहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः । विष्णुमावाहयामि स्थापयामि ।। भो विष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति दुर्गापूर्वे विष्णुम् ।।23।।

तदनन्तर "ॐ एह्येहि नीलाम्बुद" मन्त्र से दुर्गा के पूर्व में विष्णु भगवान की स्थापना, पूजन करे।

ततो ब्रह्माग्न्योर्मध्ये वल्लीषु स्वधासहित पितृनावाहयेत्:—

ॐ सुखायपितृन् कुलवृद्धिकर्तृन,

रकेत्पलाभानिहरक्तनेत्रान् ।

सुरक्तमाल्याम्बरभूषितांश्च,

नमामि पीठे कुलवृद्धिहेतोः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधासहितपितृभ्यो नमः । स्वधासहित पितृनावाहयामि स्थापयामि ।। भो स्वधासहितपितरः इहागच्छत इह तिष्ठत इति ब्रह्माग्न्योर्मध्ये स्वधाम् ।।24।।

तत्पश्चात् "ॐ सुखाय" मन्त्र से ब्रह्म और अग्नि के मध्य में पितरों के सहित स्वधा की स्थापना करें।

ततो ब्रह्मयमयोर्मध्ये वाप्यां मृत्युरोगानावाहयेत्:—

ॐ मृत्युरोगानन्तकस्य प्रेष्यान्प्राणहरान् गणान् ।

आवाह यामि यज्ञेऽस्मिन् पूजार्थं लोकनाशकान् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः मृत्युरोगेभ्यो नमः मृत्युरोगानावाहयामि स्थापयामि ।। भो मृत्युरोगौ इहागच्छतम् इह तिष्ठतम् ।। इति ब्रह्मयमर्योर्मध्ये मृत्युरोगान् ।।25।।

तदनन्तर "ॐ मृत्युरोगानन्तकस्य" मन्त्र से ब्रह्म और यम के मध्य में मृतयु तथा रोगों की स्थापना करें।

ततो ब्रह्मनिर्ऋत्योर्मध्ये वल्लीषु गणपतिमावाहयेत्:—

ॐ कुङ्कुमाभं सदानन्दं भक्तसङ्कटनाशनम् ।

चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं च मण्डले स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः । गणपतिमावाहयामि स्थापयामि ।। भो गणपते इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति ब्रह्म निर्ऋत्योर्मध्ये गणेशम् ।।26।।

तदनन्तर "ॐ कुङ्कमाभं" मन्त्र से ब्रह्म और निर्ऋति के मध्य में गणपति की स्थापना करे।

ततो ब्रह्मवरुणयोम्र्मध्ये वाप्यामप आवाहयेत्:—

ॐ पावनाः सर्वलोकानां निमग्नाः शुद्धिकारकाः ।

सर्वपापहराः श्रेष्ठा मण्डले स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अद्भ्यो नमः । अपआवाहयामि स्थापयामि ।। भो अप इहागच्छत इहतिष्ठत ।।27।। इति ब्रह्मवरुणायोमध्ये अपः ।।

तदनन्तर "ॐ पावनाः" मन्त्र से ब्रह्म और वरुण के मध्य में अप **(**जल**)** की स्थापना करे।

ततो ब्रह्मवाय्वोर्मध्ये मरुत आवाहयेत्:—

ॐ सुगन्धिनश्च शैलाद्या मन्दमन्दवहाः सदा ।

तानहं स्थापयामीह मरुतो मण्डले शुभे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः मरुदभ्यो नमः । मरुत आवाहयामि स्थापयामि ।। भो मरुत इहागच्छत इह तिष्ठत ।। इति ब्रह्मवाय्वोर्मध्ये मरुतः ।।28।।

तत्पश्चात् "ॐ सुगन्धिनश्च" मन्त्र से ब्रह्मा और वायु के बीच में मरुत् की स्थापना करें।

ततो ब्रह्मणः पदामूले कर्णिकाधः प्रथिवीमावाहयेत्:—

ॐ पृथिव्या धार्यते विश्वं दुर्ग्रहं सागरैर्नरैः ।

अतस्त्वां स्थापयामीह ब्रह्मणो मण्डले पदे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः पृथिव्यै नमः । पृथिवीमावाहयामि स्थापयामि ।। भो पृथिवी इहागच्छ । इह तिष्ठ ।। इति ब्रह्मण पादमूले पृथिवीम् ।।29।।

तदनन्तर "ॐ पृथिव्या" मन्त्र से ब्रह्मा के चरणों पर पृथ्वी की स्थापना करें।

ततस्तत्रैव तदुत्तरतो गङ्गादिसप्तसरित आवाहयेत्:—

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धुकावेर्यौ मण्डले स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गङ्गदिनदीभ्यो नमः । गङ्गादिनदीरावाहयामि स्थापयामि ।। भो गङ्गादिनद्यः इहागच्छत इह तिष्ठत । इति ब्रह्मणः पादमूले नदीः ।।

तत्पश्चात् "ॐ गंगेच यमुने" मन्त्र से ब्रह्मा के ररणों पर ही गंगा आदि सात नदियों की स्थापना करें।

ततस्तत्रैव तदुत्तरतः सप्तसागरानावाहयेत्:—

ॐ समुद्राः सर्वतोयेषु श्रेष्ठा वै हरिवल्लभाः ।

मण्डले स्थापयामीह तान्नदीशान् सुखाप्तये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सप्तसागरेभ्यो नमः । सप्तसागरानावाहयामि स्थापयामि ।। भो सप्तसागरा इहागच्छत इह तिष्ठत ।। इति ब्रह्मण पादमूले गङ्गाद्युत्तरे सप्तसागरान् ।।31।।

तदनन्तर "ॐ समुद्राः" मन्त्र से ब्रह्मा के चरणों पर गंगा के उत्तर से सप्त सागरों **(**क्षारसागर, क्षीरसागर, दधिसागर, घृतसागर, इक्षुसागर, सुरासागर, तथा स्वादूदक सागर**)** की स्थापना करें।

ततः कर्णिकोपरि मेरुमावाहयेत्:—

ॐ एह्योहि कार्त्तस्वररूप सर्व भूभृत्पते चन्द्ररवीदधान ।

सर्वौषधिस्थान महेन्द्रमित्र लोकत्रयावास नमोऽस्तुतुभ्यम् ।।

ॐ भू र्भुवः स्वः मेरवे नमः । मेरुमावाहयामि स्थापयामि ।। भी मेरो इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति कर्णिकोपरि मेरुम् ।।32।।

तदनन्तर "ॐ एह्योहि कार्त्तस्वररूप" मन्त्र से कर्णिका **(**मण्डल**)** के ऊपर **(**मध्य**)** मेरु की स्थापना करें।

:: मण्डलबाह्ये श्वेतपरिधौ उत्तरादिक्रमेण गदाद्यष्टायुधदेवतास्थापनम् ।। ::

यथा सोमसमीपे उत्तरे गदामावाहयेत्:—

ॐ निषिक्ता कुमुदात्तस्य नाम्ना कौमोदकी गदा ।
शान्तिदा स्मरणादेव तस्यै तुभ्यं नमो नमः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गदायै नमः । गदामावाहयामि स्थापयामि ।। भो गदे इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति सोमसमीपे उत्तरे गदाम् ।।33।।

फिर "ॐ निषित्ता" मन्त्र से सोम के समीप उत्तर में गदा की स्थापना करें।

तत ऐशान्यां त्रिशूलं आवाहयेतः—
ॐ महायोगीन्द्रहस्तस्य शङ्करस्य प्रियङ्कर ।
त्रिशूल त्वमिहागच्छ पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः त्रिशूलाय नमः । त्रिशूलमावाहयामि स्थापयामि ।। भो त्रिशूल इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति ऐशान्यामीशान समीपे त्रिशूलम् ।।34।।

तत्पश्चात् "ॐ महायोग्न्द्रिहस्तस्य" मन्त्र से ईशान में ईशान के समीप त्रिशूल की स्थापना करें।

ततः पूर्वे इन्द्रसमीपे वज्रमावाहयेत्ः—
ॐ तप्तकाञ्चन वर्णाभं वज्रं धै शस्त्रनायकम् ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् गृहाणेमां नमोऽस्तुते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वज्राय नमः । वज्रमावाहयामि स्थापयामि ।। भो वज्र इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति पूर्वे इन्द्रसमीपे वज्रम् ।।35।।

तत्पश्चात् "ॐ तप्तकाञ्चनवर्णाभं" मन्त्र से पूर्व में इन्द्र के समीप वज्र की स्थापना करें।

तत आग्नेय्यामग्नि समीपे शक्तिमावाह येत्ः—
ॐ सर्वदैत्यविनाशाय सर्वकामफलप्रदे ।
सर्वसत्वहिते शक्ते शान्तिं यच्छ नमोऽस्तुते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः शक्तये नमः । शक्तिमावाहयामि स्थापयामि ।। भो शक्ते इहागच्छ इह तिष्ठ ।।36।। इति आग्नेय्याम् अग्नि समीपे शक्तिम् ।

तदनन्तर "ॐ सर्वदैत्य, विनाशाय" मन्त्र से अग्नि कोण में अग्नि के समीप शक्ति की स्थापना करें।

ततो दक्षिणास्यां यमसमीपे दण्डमावाहयेत्ः—
ॐ धर्मराजस्य हस्तस्य यमस्य च सदा प्रिय ।

दण्डायुध नमस्तेऽस्तु सर्व सिद्धिप्रदो भव ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दण्डाय नमः । दण्डमावाहयामि स्थापयामि ।। भो दण्ड इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति दक्षिणास्यां यम समीपे दण्डम् ।।37।।

तदनन्तर "ॐ धर्मराजस्य" मंत्र से दक्षिण दिशा में यम के समीप दण्ड की स्थापना करें।

ततो नैर्ऋत्यां निर्ऋति समीपे खड्गमावाहयेत्ः—

ॐ नीलजीमूतवर्ण त्वं तीक्ष्णदंष्ट्र कृशोदर ।

खड्गराज नमस्तुभ्यं पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः खड्गाय नमः । खड्गमावाहयामि स्थापयामि ।। भो खड्ग इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति नैर्ऋत्यां निर्ऋतिसमीपे खड्गम् ।।38।।

तत्पश्चात् "ॐ नीलजीमूतवर्ण" मंत्र से नैऋत्य कोण में निर्ऋति के समीप खड्ग की स्थापना करें।

ततः पश्चिमे वरुणसमीपे पाशमावाहयेत्ः—

ॐ देवासि वरुणास्त्रं त्वं दैत्यवंशविदारणा ।

पाश मां समरे रक्ष रज्जुराज नमोऽस्तुते ।।

ॐ भू र्भुवः स्वः पाशाय नमः । पाशमावाहयामि स्थापयामि ।। भो इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति पश्चिमे वरुणासमीपे पाशम् ।।39।।

तदनन्तर—"ॐ देवासि वरुणास्त्र" मन्त्र से पश्चिम में वरुण के समीप पाश की स्थापना करें।

ततो वायव्यां वायुसमीपे अङ्कुशमावाहयेत्ः—

ॐ गजघ्नं परवीरघ्नं परसैन्यापहारकम् ।

गणेशस्य प्रियं तस्मादङ्कुशाय नमो नमः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अङ्गुशाय नमः । अङ्कशमावाहयामि स्थापयामि ।। भो अङ्कुश इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति बायव्यां वायुसमीपे अङ्कुशम् ।।40।।

तदनन्तर-"ॐ गजघ्नं" मन्त्र से वायव्य कोण में वायु के समीप अंकुश की स्थापना करें।

:: मण्डल बाह्ये रक्तपरिधौ उत्तरादिक्रमेण गौतमाद्यष्टदेवतास्थापनम् ।। ::

तत उत्तरे गौतममावाहयेत्ः—

ॐ गौतमः सर्वभूतानामृषीणां च सदा प्रियः ।

श्रौतानां कर्मणां चैव संप्रदायप्रवतकः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गौतमाय नमः । गोतममावाहयामि स्थापयामि ।। भो गौतम इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति उत्तरे गौतमम् ।।41।।

तदनन्तर—"ॐ गौतमः" मन्त्र से उत्तर में गौतम ऋषि की स्थापना करे।

तत ऐशान्यां भरद्वाजमावाहयेत्:—

ॐ भारद्वाज नमस्तेऽस्तु सदाध्ययनतत्परः ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूभुवः स्वः भरद्वाजाय नमः । भरद्वाजमावाहयामि स्थापयामि ।। भो भरद्वाज इहागच्छ इहं तिष्ठ ।। इति ऐशान्याम् भरद्वाजम् ।।42।।

तत्पश्चात्—"ॐ भरद्वाज" मन्त्र से ईशान कोण में भरद्वाज ऋषि की स्थापना करें।

ततः पूर्वे विश्वामित्रमावाहयेत्:—

ॐ विश्वामित्र नमस्तुभ्यं ज्वलदग्निसमप्रभ ।

अध्यक्षीकृतगायत्री तपोरूपेणा संस्थितः ।।

ॐ भूभुवः स्वः विश्वामित्राय नमः । विश्वामित्रमावाहयामि स्थापयामि ।। भो विश्वामित्र इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति पूर्वे विश्वामित्रम् ।।43।।

तदनन्तर—"ॐ विश्वामित्र" मन्त्र से पूर्व दिशा में विश्वामित्र की स्थापना करें।

तत आग्नेय्यां कश्यपमावाहयेत्:—

ॐ कश्यपः सर्वलोकाढ्यः सर्वभूतदयाकरः ।

असि त्वां प्रार्थयामीश पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूभुवः स्वः कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि स्थापयामि ।। भो कश्यप इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति आग्नेय्याम् कश्यपम् ।।44।।

तत्पश्चात्—"ॐ कश्यपः" मन्त्र से अग्नि कण में कश्यप की स्थापना करें।

ततो दक्षिणे जमदग्निमावाहयेत्:—

ॐ जमदग्निर्महाते जास्तपसा ज्वलतीहतम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिनः पूजेयं प्रति गृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः जमदग्नये ममः । जमदग्निमावाहयामि स्थापयामि ।। भो जमदग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति दक्षिणे जमदग्निम् ।।45।।

तदनन्तर—"ॐ जमदग्निर्महाते जास्तपसा" मन्त्र से दक्षिण में जगदग्नि की स्थापना करें।

ततो नैर्ऋत्यां वसिष्ठमावाहयेत्:—

ॐ नमस्तुभ्यं वसिष्ठाय कर्मकर्त्रे महामुने ।

धर्मरूपाय महते लोकानां हितकारिणे ॥

ॐ भू र्भुवः स्वः वसिष्ठाय नमः । वसिष्ठमावाहयामि स्थापयामि ॥ भो वसिष्ठ इहागच्छ इह तिष्ठत ॥ इति नैर्ऋत्यां वसिष्ठम् ॥46॥

तत्पश्चात्—"ॐ नमस्तुभ्यं" मन्त्र से नैऋत्य कोण में वसिष्ठ की स्थापना करे।

ततः पश्चिमे अत्रि मावाहयेत्:—

ॐ अत्रये तु नमस्तुभ्यं सर्वलोकहितैषिणे ।

तपोरूपाय सत्याय ब्रह्मणेऽमिततेजसे ॥

ॐ भू र्भुवः स्वः अत्रये नमः । अत्रिमावाहयारि स्थापयामि ॥ भो अत्रे इहागच्छ इह तिष्ठ ॥ इति पश्चिमे अत्रिम् ॥47॥

तत्पश्चात्—"ॐ अत्रये" मन्त्र से पश्चिम में अत्रि की स्थापना करें।

ततो वायव्यामरुन्धतोमावाहयेत्:—

ॐ अरुन्धत्यै नमस्तुभ्यं सर्वसौख्यप्रदायिनि ।

एहि मण्डलमध्ये त्वं नमः पूजां गृहाण मे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अरुन्धत्यै नमः । अरुन्धतीमावाहयामि स्थापयामि ॥ भो अरुन्धति इहागच्छ इह तिष्ठ ॥ इति वायव्याम् अरुन्धतीम् ॥48॥

तदनन्तर "ॐ अरुन्धत्यै" मन्त्र से वायव्य कोण में अरुन्धती की स्थापना करें।

* मण्डलवाह्यो कृष्णपरिधौ पूर्वादिक्रमेण ऐन्द्र आदि इष्टदेवता स्थापनम् *****

तत्र पूर्वे ऐन्द्रीमावाहयेत्:—

ॐ इन्द्राणीं गजकुम्भस्थां सहस्रनयनोज्ज्वलाम् ।

नमामि वरदां देवीं सर्वदेवैर्नमस्कृताम् ॥

ॐ भू र्भुवः स्वः ऐन्द्रयै नमः । ऐन्द्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥ भो ऐन्द्रि इहागच्छ इह तिष्ठ ॥ इति पूर्वे ऐन्द्रीम् ॥49॥

तदनन्तर—"ॐ इन्द्राणीं" मन् से पूर्व में ऐन्द्री की स्थापना, करें।

तत आग्नेय्यां कौमारीमावाहयेत्:—

एह्येदि कौमारि विधेहि शान्तिं शक्तिं दधानेऽपि सदानेमध्ये ।
स्कन्धाधिरुढे शिखिपुंगवाभ्यां मातः प्रसादप्रसृतिं प्रयच्छ ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः कौमार्यै नमः । कौमारीमावाहयामि स्थापयामि ।। भो कौमारि इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति आग्नेय्यां कौमारीम् ।।50।।

तत्पश्चात्—"ॐ एहयोहिकौमारि" मन्त्र से अग्नि कोण में कौमारी की स्थापना करें।

ततो दक्षिणस्यां ब्राह्मीमावाहयेत्:—
ॐ चतुर्मुखीं जगद्धात्रीं हंसारुढां वरप्रदाम् ।
सृष्टिरूपां महाभागां ब्रह्मणीं ता नमाभ्यहम् ।।

ॐ भूभुवः स्वः ब्राहम्य नमः । ब्राह्मीमावाहयामि स्थापयामि ।। भो ब्राह्मि इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति दक्षिणेब्राह्मीम् ।।51।।

तत्पश्चात्—"ॐ चतुर्मुखी" मन्त्र से दक्षिण में ब्राह्मी की स्थापना करें।

ततो नैर्ऋत्यां वाराहीमावाहयेत्:—
ॐ बाराह रूपिणीं देवीं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धराम् ।
शुभदां पीतवसनां वाराहीं तां नमाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वाराह्ये नमः । वाराहीमावाहयामि स्थापयामि ।। भो वाराहि इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति नैर्ऋत्यां वाराहीम् ।।52।।

तदनन्तर—"ॐ वाराहरूपिणी" मन्त्र से नैऋत्य कोण में बाराही की स्थापना करें।

ततः पश्चिमे चामुण्डामावाहयेत्:—
ॐ चामुण्डां मुण्डमथनां मुण्डमालोपशोभिताम् ।
अट्टाट्टहसामुदतीं नमाम्यात्मविभूतिये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः चामुण्डडायै नमः । चामुण्डामावाहयामि स्थापयामि ।। भो चामुण्डे इहागच्छ इह तिष्ठ । इति पश्चिमे चामुण्डाम् ।।53।।

तत्पश्चात्—"ॐ चामुण्डा" मन्त्र से पश्चिम में चामुण्डा की स्थापना करें।

ततो वायव्यां वैष्णवीमावाहयेत्:—
ॐ शङ्खचक्रगदापद्मधारणीं कृष्णरूपिणीम् ।
स्थितिरूपां खगेन्द्रस्थां वैष्णवीं तां नमाम्यहम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वैष्णव्यै नमः । वैष्णवीमावाहयामि स्थापयामि ।। भो वैष्णवि इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति चायव्यां वैष्णवीम् ।।54।।

तदनन्तर—"ॐ शङ्ख चक्र गदा पद्म धारिणीं" मन्त्र से वायव्य कोण में वैष्णवी की स्थापना करें।

तत उत्तस्स्यां माहेश्वरीमावाहयेत्:—

ॐ वृषारूढां शुभां शुभ्रां त्रिनेत्रां वरदां शिवाम् ।

माहेश्वरो नमाम्यद्य सृष्टिसंहारकारिणीम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः माहेश्वर्यै नमः । माहेश्वरीमावाहयामि स्थापयामि ।। भो माहेश्वरी इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इति उत्तरे माहेश्वरीम् ।।55।

तत्पश्चात्—"ॐ वृषरूढां" मन्त्र से उत्तर में माहेश्वरी की स्थापना करें।

तत ऐशान्यां वैनायकीमाबाहयेत्:—

ॐ चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वाभरणभूषिताम् ।

आवाहयामि देवीशीं पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वैनायक्यै नमः । वैनायकीमावाहयामि स्थापयामि ।। भौ वैनायकि इहागच्छ इह तिष्ठ । इति ऐशान्यां वैनायकीम् ।।56।।

तदनन्तर—"ॐ चतुर्भुज" मन्त्र से ईशान कोण में वैनायकी की स्थापना करें।

ततो हस्ते जलं गृहीत्वा। अनेक यथामिलितोपचारैः कृतेन पूजनेन ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलस्थदेवताः प्रीयन्तां न मम ।।

तब हाथ में जल लेकर सर्वतोभद्र मण्डल के सभी देवताओं की पाद्यादि षोडशोपचार से पूजा करके सभी को नमस्कार करें तथा "ब्रह्मादि सर्वतोभद्रमण्डलस्थदेवताः प्रीयन्तां न मम" का उच्चारण करें।

----*----**

अग्निस्थापन तथा पंच भूसंस्कार

****

भूमि के पांच संस्कार करके तब उस पर हवन किया जाता है। जैसे पवित्री करण, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण, और न्यास से शरीरगत पंचभूतों की शुद्धि होने से मनुष्य देव पूजन के योग्य बनता है। उसी प्रकार परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, उद्धरण, अभ्युक्षण के पांच संस्कारों से भूमि की शुद्धि होती है। इस प्रकार शुद्ध की हुई भूमि पर ही हवन करना उचित है। इन पांच भूमि संस्कारों का विधान नीचे दिया जाता है:—

(1) परिसमूहन—

आचार्यः कश्चिद्विप्रो वा यजमानानुज्ञया हस्ते जलं गृहीत्वा। अस्मिन्कुण्डे **(यजमानानुज्ञया)** पंच भू संस्कार पूर्वकम् अग्नि प्रतिष्ठां करिष्ये । इति संकल्प्य दक्षिणाहस्ते दमपुंज गृहीत्वोत्थाय दक्षिणत आरभ्योदक संस्थं पश्चिमतः प्रागन्तं त्रिवारं परिसमूहनं कुर्यात् ।। तद्यथा ।। दर्भैः परिसमूह्य परिसमूह्य परिसमूह्य ।। एवं परिसमूहनं विधाय कुंडाद्बहिः पूर्वस्यामीशान्यां वा दर्भत्यागं कुर्यात् ।

आचार्य अथवा कोई ब्राह्मण यजमान के आदेशानुसार हाथ में जल लेकर—"अस्मिन्कुण्डे पंच भू संस्कार पूर्वकम् अग्नि प्रतिष्ठां करिष्ये ।" यह संकल्प करे। फिर दाहिने हाथ में कुछ कुश लेकर दक्षिण से पश्चिम की ओर से पूर्व तक उनसे जल छिड़के। "दर्भैः परिसमूह्य परिसमूह्य" इस प्रकार उच्चारण करते हुए उन कुशाओं को पूर्व या ईशान में छोड़ दें। यह परिसमूहन हुआ।

यह परिसमूहन क्यों किया जाता है इसके संबंध में लिखा है कि—

कृमिकीट पतंगाद्या विचरन्ति महीतले ।
तेषां संरक्षाणार्थाय परिसमूहनमुच्यते ।।

पृथ्वी पर कृमि, कीट, पतंग आदि विचरण करते रहते हैं उनसे रक्षा के लिए परिसमूहन किया जाता है।

(2) उपलेपनम्—

ततो दक्षिण हस्तेन गोमयमादाय पूर्ववत् दक्षिणत आरभ्योदक्संस्थं पश्चिमतः प्रागन्तं गोमयेनोपलिंपेत् । गोमयेन उपलिप्य उपलिप्य उपलिप्य । एवं त्रिवारम् उपलेपनं कृत्वा हस्तं प्रक्षाल्य ।

फिर दाहिने हाथ से गोबर लेकर उसे जल से गीला करके पहिले की भांति दक्षिण से पश्चिम की ओर होते हुए पूर्व तक लीपे। 'सामयेन उपलिप्य उपलिप्य उपलिप्य' ऐसा तीन बार कह कर लेपन करे और हाथ धो डाले।

यह लेपन क्यों किया जाता है इसको इतिहास से बताया गया है कि—

पुरा शक्रेण वज्रेणहतो वृत्तो महासुरः ।
व्यापिता मेदसा पृथ्वी तदर्थमुपलेपनम् ।।

पूर्व काल में इन्द्रने वज्र से वृत्तासुर को मारा। उसकी चर्बी से पृथ्वी दूषित हो गई। उसकी शुद्धि के लिए गोबर से पृथ्वी लीपी गई। इस प्रकार की अशुद्धियों को शुद्ध करने के लिए पृथ्वी का लेपन किया जाता है।

(3) उल्लेखनम्—

दक्षिण हस्तेन स्रुवमादाय पूर्ववद्दक्षिणत आरभ्योदक्संस्थं पश्चिमतः प्रागन्तं स्रुव मूलेन त्रिरुल्लेख कुर्यात् । तद्यथा । स्रुवमूलेन उल्लिख्य उल्लिख्य इति ब्रूयात् ।।

दाहिने हाथ में स्रुधा लेकर पहले की भांति दक्षिण से पश्चिम की ओर से पूर्व तक स्रुवामूल से तीन रेखाएं खींचें और 'स्रुव मूलेन उल्लिख्य उल्लिख्य उल्लिख्य' ऐसा कहे।

स्रुवा के मूल से अथवा खदिर के स्पय से तीन रेखाएं भी क्रमशः उत्तरोत्तर खींची जाती हैं। उसे उल्लेखन कहते हैं। मिट्टी में छिपी हुई वस्तुओं का प्रकटीकरण हो जाय, कोई कीट पतंग उसमें न छिपा हो यह देख लिया जाय तथा तीन रेखाओं से आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक तत्वों को पृथ्वी के अन्तराल में जागृत कर लिया जाय, यह भी इस उल्लेखन का उद्देश्य है। मानसिक रूप में 'स्रुवमूलेन उल्लिख्य उल्लिख्य उल्लिख्य' यह कहना चाहिए।

(4) उद्धरणम्—

अनामिकांगुष्ठेन पूर्ववत् कुण्डतः पांसूनामुद्धरणं विददधात । तद्यथा । अनामिकांगुष्ठेन उद्धृत्य उद्धृत्य उद्धृत्य । एवं त्रिवारं पांसूनामुद्धरणं कृत्वातान् प्राच्यां क्षिस्वा ।

अनामिका उंगली और अंगूठे से पहले की भांति दक्षिण से पूर्व की ओर रेखाओं के ऊपर की मिट्टी को उठाकर पूर्व दिशा में रखे और मन ही मन "अनामिकांगुष्ठेन उद्धृत्य उद्धृत्य उद्धृत्य" यह तीन बार कहे।

(5) अभ्युक्षणाम्—

पूर्ववत् न्युब्ज पाणिना जलेन त्रिवारं अभ्युक्षणं कुर्यात् । तद्यथा । उदकेन अभ्युक्ष्य अभ्युक्ष्य अभ्युक्ष्य । इति

फिर पूर्ववत् हाथ से उसी क्रम से जल को तीन बार छिड़के । "उदकेन अभ्युक्ष्य अभ्युक्ष्य अभ्युक्ष्य" यह मन ही मन कहे।

कई बाद देव पूजन के समय ही अग्नि स्थापना कर ली जाती है। ताकि धीरे धीरे समिधाओं में अग्नि प्रज्वलित होने में जितना समय लगे उतनी देर में देव पूजा के कार्य से निवृत्ति हो जाय। दूसरी विधि यह है कि देव पूजन के उपरान्त अग्नि स्थापन एवं अग्निपूजन करके हवन आरम्भ किया जाय। हमें हवन के समय ही अग्नि स्थापना का विधान अधिक उपयुक्त जंचा है। इसलिए इस पुस्तक में हवन के समय ही अग्नि स्थापना की विधि लिखी गई है। जो इससे कुछ पूर्व देव पूजन के समय ही अग्नि स्थापना में सुविधा देखते हों, वे इसी विधान से उस समय भी स्थापना कर सकते हैं।

----***----

अग्नि स्थापनम्

******

अब अग्नि स्थापन का विधान लिखते हैं—

ततः कुण्डमध्ये 'ॐ रं' इति वह्निबीजं लिखेत ।

कुण्ड के बीच में 'ॐ रं' इस अग्नि बीज मन्त्र को लिखें।

ततोऽग्निंग स्थापयेत् । बहुपशोर्वैश्यस्य गृहात् श्रोत्रियागारात् सूर्यकान्तसम्भूतात् स्वकीय गृहाद्वा सुवासिन्या स्त्रिया आनीतं निर्धूमम् अन्य ताम्रादि पात्रेणाच्छादितम् अग्निं कुण्डस्य अग्नियां दिशिनिधाय आच्छादितं पात्रम् उद्घाट्य 'हुं फट्' इति क्रव्यादांशम् अग्निं नैर्ऋत्यां दिशि परित्यज्य अग्निं कुण्डस्य उपरित्रिवारं भ्रामयित्वा अग्निंस्थापयेत् ।

अग्नि को बहुत पशुओं वाले वैश्य के यहां से, क्षोत्रिय ब्राह्मण के घर से, सूर्यकान्त [आतिशी शीशे] से पैदा करके, अपने घर से, धूम रहित अग्नि को तांबे के पात्र से ढक कर लावे। उसे अग्नि कुण्ड की आग्नेय दिशा में रखकर ढकने को उठावे। 'हुं फट' यह उच्चारण करके कृव्यादांश को नैऋत्य में छोड़े। फिर अग्नि कुण्ड के ऊपर उसे तीन बार फिरा कर अग्नि की स्थापना करे।

ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रु वे ।
देवाँऽआसादयादिह ।।

स्थापना की विधि—

आत्माभिमुखं स्थापयेत् तद्रक्षार्थं किञ्चन्नियुज्याग्नि पात्रेऽक्षतादि प्रक्षेपः ।

उपरोक्त मंत्र 'ॐ अग्नि को पढ़कर अग्नि पात्र को अपनी तरफ घुमाकर अग्नि स्थापन करे और अग्नि प्रज्वलन के लिए हवन की लकड़ी उस पर धर दे तथा अग्निपात्र में अक्षातादि रखदें।

:: अग्नि आवाहन तथा पूजन ::

केवल स्थूल अग्नि में सामग्री का जलाना ही हवन नहीं हो जाता। हवन से पूर्व स्थूल अग्नि में अग्नि देवता के दिव्य प्राण की प्रतिष्ठा करके तब उसमें जो आहुति छोड़ी जाती है वही देवताओं तक पहुंचती है और दिव्य उद्देश्य पूरा करती है। इसलिए हवन कुण्ड में अग्नि का बीज मन्त्र "ॐ रं" लिख कर कुण्ड में अग्नि की प्रतिष्ठा करें। फिर अग्नि देव का आवाहन मंत्र पढ़े और पुष्पादि से पूजन करे। इसी प्रकार समिधाओं का जल से अभिसिंचन, मार्जन, पूजन करके ही उनमें पवित्रता एवं सोमतत्व की स्थापना की भावना करे। इस प्रकार भावना पूर्वक किये हुए यज्ञ से ही दैवी उद्देश्यों की पूर्ति होती है। भावना रहित होम तो आग में सुगन्धित वस्तुएं जलाकर कुछ थोड़े से क्षेत्र की वायु को सुवासित कर देना मात्र है।

उत्पत्तिमुद्रां कृत्वा चाऽऽवाहयेदग्निपुरुषम् ।

तदुत्तरउत्पत्ति मुद्रा करके **[**निम्न लिखित मन्त्र पढ़कर अग्नि देवता का आवाहन करें।**]** —
मन्त्रः—

रूद्रतेजः समुद्भूतं द्विमूर्धानं द्विनासिकम् ।।
स्रुचं स्रुवं च शक्तिं चाप्यक्षमालां चदक्षिणैः ।
तोमरं व्यजनं चैव घृतपात्रं तु वामकैः ।।
विभ्रन्तं सप्तभिर्हस्तैर्द्विमुखं सप्तजिह्वकम् ।
दक्षिणं च चतुजिह्वं त्रिजिह्वं चोत्तरं मुखम् ।।
कोटिद्वादशमूर्त्याख्यं द्विपञ्चाशत्कलायुतम् ।
स्वाहास्वधावषट्कारैरंकितं मेषवाहनम् ।।
रक्तमाल्याम्बरं रक्तं रक्तपद्मासनस्थितम् ।
रौद्रं वागीश्वगीरूपं वह्निमावाहयाम्यहम् ।।
त्वं मुखं सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युते ।

आगच्छ भगवन्नग्ने यज्ञेस्मिन्सन्निधोमव ।।

इति आवाहन मन्त्रः ।।

अग्ने वैश्वानर ! इहागच्छ इह तिष्ठ ।। इत्यावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

तब 'अग्ने वैश्वानर' इत्यादि वाक्य से उसकी स्थापना करके पञ्चोपचार से पूजन करें।

ततोऽग्नेः सप्तजिह्वानां पूजा । कनकायै नमः ।

रक्तायै नमः । कृष्णायै नमः । उदारिणयै नमः । उत्तरमुखे सुप्रभायै नमः । बहुरूपायै नमः । अतिरिक्तायै नमः ।।

ऊपर लिखे हुए "कनकायै नमः" इस क्रम से अग्नि की सातों नामों से पूजा करे। यह अग्नि देव की सात जिह्वायें हैं, इस लिए अग्नि का नाम "सप्तजिह्वा" पड़ा।

तदनन्तरं सर्वसमिद्वनस्पतीनां पूजनश्चेति ।।

इसके बाद समित्काष्ठों ओर वनस्पतियों का पूजन करे।

अग्नि पूजन, समिधा पूजन के पश्चात् यज्ञ आरम्भ करने का संकल्प करे।

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकनामाहं सकुटुम्बस्य सपरिवारस्यात्मनः सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यर्थं श्री सूर्य्यादिनवग्रहादीनां साधिदेवता प्रत्याधिदेवतानां दशदिक्पालानाममुकप्रधानदेवतासहितानां च प्रीतये ब्राह्मणाद्वारा यवतिलधान्याज्यशर्करादिद्रव्यैस्तत्तद्देवतामन्त्रैर्यक्ष्ये ।।

यजमान हाथ में जल, अक्षत, पुष्प तथा दक्षिणा द्रव्य लेकर "ॐ अद्येत्यादि" से "यक्ष्ये" तक पढ़कर संकल्प करें।

इस प्रकार संकल्प करने के उपरान्त विधि पूर्वक हवन आरम्भ करना चाहिए।

----***----

कुशकण्डिका

******

यज्ञ में कुशाओं का प्रयोग इतना आवश्यक है कि इस प्रकरण को एक स्वतंत्र विषय ही मान लिया गया है। यज्ञ से एक विशेष प्रकार की शक्ति का उद्भव होता है। इस शक्ति उत्पादन

के लिए वही वस्तुएं आवश्यक होती हैं, जो स्वयं शक्तिवान् हैं एवं शक्ति उत्पादक गुणों, तत्वों एवं सामर्थ्यों से परिपूर्ण हैं। यज्ञ के काष्ठ पात्रों में जो काष्ठ प्रयुक्त होता है उसमें इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि इस पात्र के लिए किस वृक्ष का उपयोग किया जाय और उस वृक्ष के किस भाग की लकड़ी काम में लाई जाय। इसी प्रकार की आवश्यकताओं में कुशों का उपयोग भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

यज्ञ आदि देव पूजा के कार्यों में कुश का उपयोग लगभग अनिवार्य माना गया है।

कुशेन रहिता यज्ञ विफला कथिता मया ।
उदकेन बिना पूजा बिना दर्भेण या क्रिया ।।

कुशों के उपयोग रहित यज्ञ निष्फल होता है। जल और कुश सभी पूजा कर्यों में आवश्यक होते हैं।

कुशों में एक विशेष प्रकार की विद्युत शक्ति होती है। घन गर्जन, और बिजली की तड़कन के समय जो सोम तत्व आकाश से पृथ्वी पर आता है उसी से कुशा उत्पन्न होती है। उस में सोम तत्व की अधिकता रहने से यज्ञाग्नि की उग्रता का शमन होता रहता है। यज्ञाग्नि में घन विद्युत (पॉजिटिव) तत्व अधिक होता है उसका संतुलन ठीक रखने के लिए ऋण विद्युत (निगेटिव) सोम तत्व की आवश्यकता पड़ती है। यह पूर्ति कुशाओं द्वारा होती है। हाथ में कुश की पवित्री का धारण, कुशों के मार्जन, कुश कूर्च का प्रयोग, कुशों का विस्तरण, यज्ञ पात्रों का कुशों से आच्छादन, हवि आज्य आदि में कुश उपयोग आदि के विधान को कुशकण्डिका कहते हैं। अथर्ववेद में कुशों की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है।

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो विन्दुस्ततो दर्भो अजायत् ।।

अथर्व 19।5।30।5

जिस समय आकाश में सोम तत्व का समुद्र क्षुभित होकर उमड़ता है, घन गर्जन के साथ बिजली चमकती है, उस समय सोमविन्दु गिरती हैं और उन सोम बूंदों से कुशा की उत्पत्ति होती है।

ऐसी ही विशेषताओं के कारण कुशों का उपयोग विधान पूर्वक यज्ञ में किया जाता है। जहां कुश उपलब्ध न हों वहां उसका प्रतिनिधि दूर्वा (दूब) को भी लिया जा सकता है। यथा:—

कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिबर्द्धयः ।

—हेमाद्रौ

कुश के स्थान पर दूब का उपयोग कर लेना भी मंगलीक है।

कुश कण्डिका की विधि नीचे दी जाती है:—

अत्र वा ब्रह्मवरणं कुर्यात्—

प्रधान देवता पूजन के पश्चात् ब्रह्म-वरण करना चाहिये।

ततोग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पुष्पचन्दनताम्बूलपूगीफलद्रव्यवस्त्राण्यादाय अग्नेर्दक्षिणतो वस्त्रास्तरणं कल्पयित्वा ब्राह्मणं पादप्रक्षालनगन्धमाल्यादिभिरभिपूज्य हस्ते धौतवस्त्रोत्तरीयकमण्डलुभूषणादिकं गृहीत्वा ॐ अद्य कर्त्तव्यामुकहवनकर्मणि कृताकृतावेक्षणारूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिर्द्रव्याक्षतपूगीफल-वासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे । इति ब्रह्माणं वृणुयात् ।

यथा क्रम—पूर्व स्थापित अग्नि की प्रदक्षिणा करके अग्नि से दक्षिण दिशा में ब्रह्मा को आसन देकर तथा ब्रह्मा के चरण धोकर गन्धा, पुष्प, माला आदि से उनकी पूजा करके, हाथ में ब्रह्मा की धोती, चादर, कमण्डल, भूषण, पुष्पाक्षत, तांबूल, पूंगीफल सहित लेकर "ॐ अद्य...त्वामहं वृणे" तक वाक्य पढ़कर ब्रह्मा का वरण करें।

ततो ब्रह्मा—वृत्तोऽस्मि ।

तत्पश्चात ब्रह्मा "वृतोऽस्मि" अर्थात् मैं स्वीकार करता हूं, ऐसा कहे।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

इति प्रतिवचनमुक्त्वाऽग्नेर्दक्षिणतः कल्पितासनोपरि उपविशेत् ।

उसके बाद ब्रह्मा "व्रतेन" इत्यादि मन्त्र से यजमान का मार्जन करे और अग्नि की दक्षिणा दिशा में कल्पित अपने आसन पर बैठ जायं।

ततः प्रणीतापात्रं दारूकाष्ठमयं द्वादशाङ्गुलोच्चं चतुरङ्गुलमध्यखातं पद्माकृतिं पुरतो निधाय जलेनापूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरूत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ।।

ब्रह्म वरण के पश्चात प्रणीता पात्र, जो कि यज्ञ काष्ठ का बना हुआ 12 अंगुल ऊंचा तथा 4 अंगुल गहरा कमल के सदृश बना रहता है, उसे आगे रखकर, जल से भरकर कुशाओं से आच्छादित **(ढक)** कर तथा ब्रह्मा का मुख देखकर अग्नि के उत्तर भाग में कुशा के ऊपर रख दें।

ततो बर्हिषा परिस्तरणम् ।।

उसके बाद परिस्तरण (बिछाने की) विधि कहते है:—

एकाशीतिदर्भदलानां चतुर्द्धा भागं कृत्वा यथा एकेन दर्भेण शून्य हस्तो न भवति तथा प्रथमभागमादाय (बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय) आग्नेयादीशानान्तम्, द्वितीयभागमादाय ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम्, तृतीयभागमादाय नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम्, चतुर्थभागमादाय अग्नितः प्रणीता पर्यन्तं परिस्तरणं कुर्यात् ।

इक्यासी कुशाओं को हाथ में लेकर उनके चार भाग करें (चार भाग करने पर 1 शेष बच जायगा। उस एक कुशा से हाथ खाली नहीं करना चाहिए। इसी लिए 81 कुशा का विधान है)। प्रथम भाग (20 कुशा) लेकर अग्नि पर्यन्त कोण से ईशान कोण तक, द्वितीय भाग लेकर ब्रह्मा से अग्नि पर्यन्त, तृतीय भाग लेकर नैऋत्य से वायव्य कोण तक तथा चतुर्थ भाग लेकर अग्नि से प्रणीता पर्यन्त परिस्तरण करें (बिछावें)।

ततोऽग्नेरूत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं, पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयं, प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थाली, सम्मार्जनकुशाः पञ्च, उपयमनकुशाः सप्त, समिधस्तिस्रः प्रादेशमात्राः, स्रवः रवादिरः, आज्यं, षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयमुष्ट्यवच्छिन्नं तण्डुलपूर्णपात्रं दक्षिणा, वरो वा पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्व क्रमेणतान्यासादनीयानि ।

इसके बाद अग्नि से उत्तर पश्चिम भाग में पवित्र छेदन के लिए तीन कुशा, पवित्र करने के लिए तीन कुशा के बीच के दो पत्र, प्रोक्षणीपात्र घृतपात्र, खरपात्र, पांच स्रुवसंमार्जनकुशा, सात उपयमन कुशा, प्रादेश प्रमाण (अंगुष्ठ और तर्जनी के विस्तार को प्रादेश कहते हैं)। तीन समिधा, खैर काष्ठ का बना हुआ स्रुव, घृत तथा ब्रह्मा की दक्षिणा के लिए 256 मुट्ठी (साढ़े बारह सेर) चावलों से भरा हुआ पूर्ण पात्र तथा विशिष्ट (फल—वस्त्र समन्वित-सुवर्ण गो आदि) दक्षिणा को क्रमशः उत्तरोत्तर क्रम से पूर्व दिशा में रखना चाहिए।

अथ त्रिभिः कुशैः पवित्रे दित्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय प्रोक्षणीपात्रं वामहस्ते धृत्वां दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरूत्पवनम् ।

इसके बाद तीन कुशाओं से दोनों पवित्री (बनाने योग्य) कुशाओं के तीन तीन खण्ड करके पवित्री बनावें और अनामिका में उस पवित्री को धारण करके प्रणीता पात्र के जल को प्रोक्षणी पात्र में तीन बार छोड़े। फिर प्रोक्षणी प्रात्र को बायें हाथ में रख कर दाहिने हाथ के अनामिका तथा अंगुष्ठ से प्रोक्षणी पात्र का जल, उस पवित्रो से लेकर तीन बार (शरीर के) ऊपर उछालें।

ततः प्रोक्षणीपात्रं **(**आकाशस्थ**)** प्रणीतोदकेनापूरयेत् । **(**भूमौपतति चेत्तदा प्रायश्चिचं गोदानम्**)**।

तदुपरान्त प्रणीता के जल से **(**संभाल कर**)** ओक्षणी पात्र को भर देवें **(**याद रहे जल भरते समय भूमि पर एक बूंद भी जल गिरेगा तो उसके प्रायश्चित्त के लिए गो दान करना पड़ेगा**)**।

ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनम् ।
ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् ।

फिर प्रोक्षणी पात्र के जल से समीपस्थ यज्ञ सामग्रियों का सिंचन करें। तदुपरान्त अगिन और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणी पात्र को रख दें।

आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । चरुपात्रे चरुप्रक्षेपः ।

तदुपरान्त घृतपात्र में घृत रखें और चरुपात्र में चावल छोड़ें।

आज्याऽधिश्रयणम् । ततो ज्वलत्तृणमादाय आज्यस्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः ।।

फिर घृत पात्र को अग्नि पर चढ़ाकर गर्म करके जलते हुए एक तृण **(**तिनका**)** को लेकर घृत के ऊपर प्रदक्षिणा क्रम से घुमाकर अग्नि में फेंक देवें।

ततः स्रुवप्रतपनं कृत्वा सम्मार्जनकुशैः स्रुवसम्मार्जनं, मूलेन मूलं, मध्येन मध्यं, अग्रेणाग्रम । पुनः स्रवं प्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात् ।।

तदनन्तर स्रुवा को अग्नि में तपाकर **(**बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ से**)** सम्मार्जन कुशाओं के मूल **(**जड़**)** से स्रुवा के मूल भाग को, तथा सम्मार्जन कुशाओं के मध्य से स्रुवा के मध्य भाग को, एवं सम्मार्जन कुशाओं के अग्रभाग से स्रुवा के अग्र भाग को सम्मार्जन करके पुनः उस स्रुवा को अग्नि में तपा कर दक्षिण भाग में रख देवें।

तत आज्योत्तारणाम्, अवेक्षाणाम्, अपद्रव्यनिरसनं च ।

तदुत्तर अगिन पर से घृत पात्र को उतार लें और उसमें देखें यदि कोई तिनका वगैरह घृत में हो तो उसे निकाल कर साफ कर देवें।

तत उपयमनकुशानादाय वामहस्ते धृत्वा अग्निपर्युक्षणं कृत्वा उत्तिष्ठन्मनसा प्रजापतिं ध्यात्वा तुष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः क्षिपेत् ।

तदनन्तर उपयमन कुशा को बांये हाथ में लेकर जल से अग्नि का सिंचन करके खड़े होते हुए **(**झुक कर**)** ब्रह्मा का मन ही मन ध्यान करके घृत में डुबोई हुई तीन समिधाओं को चुप चाप **(**बिना मन्त्र के**)** अग्नि में छोड़ दें।

उपविश्य सपवित्रप्रोक्षणयुदकेनाग्निं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रणीतापात्रे निधाय पातित दक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति ।।

पुनः बैठकर प्रोक्षणी पात्र का जल पवित्री से लेकर अग्नि का सिंचन करके पवित्री को प्रणीता पात्र पर रखदें और अपने दाहिने जंघे को प्रथिवी पर रखकर तथा अपने और ब्रह्मा के बीच में कुशा से संयोग करा कर प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से घृत की आहुति देवें।

तत्राधारादारभ्य द्वादशाहुतिषु प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवस्थितशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । इति कुशकण्डिका विधिः ।

यहां आधार से लेकर द्वादश **(**बारह**)** आहुति पर्यन्त स्रुवा में बचे हुये घृत शेष को प्रोक्षणी पात्र में छोड़ देवें। इति ।।

----*----**

प्रायश्चित्त होमः

****

अथ होमः ।। तत्रादौ मनसा व्याहृतिभिराहुतीर्दद्यात् ।। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम । ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम । ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम । ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम । ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम । ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम । ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय न मम । एता महाव्याहृतयः । यथा बाणप्रहाराणां कवचं वारकं भवेत् । तद्वद्दैवोपघाताना शान्तिर्भवति वारिका ।। शांतिरस्तु, पुष्टिरस्तु, वृद्धिरस्तु, यत्पापं तत्प्रतिहतमस्तु । द्विपदे चतुष्पदे सुशांतिर्भवतु ।। इति प्रायश्चित्तहोमः ।।

पहले मन ही मन 'ॐ प्रजापतये स्वाहा' इत्यादि मन्त्र पढ़कर यथाक्रम से महाव्याहृति नामक हवन करें। तदनन्तर "यथा बाणप्रहाराणां" इत्यादि **(**जैसे बाण के प्रहार को रोकने वाला कवच है वैसे ही दैवघात को रोकने वाली शान्ति है**)** मन्त्र को पढ़कर यजमान के ऊपर जल छिड़क कर मार्जन करे और 'शान्तिरस्तु' इत्यादि मन्त्र पढ़े ।।इति।।

:: पञ्चवारुणी होमः ।। ::

ॐ त्वन्नोऽअग्ने व्वरूणास्यव्विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठोव्वह्निनतमः शाशुचानो व्विश्वाद्विषां सिप्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ॐ सतव्नोऽग्नेवमो भवोती नेदिष्टोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्वनो व्वरूणं सराणोव्वीहिमृडीकं सूहवोनऽएधि स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्वमित्वमयाऽसि । अयानो यज्ञं वहास्य यानोधेहि भेषजं स्वाहा इदमग्नये न मम । ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रंयज्ञियाः पाशाव्वितता महान्तः । तेभिर्नोऽद्यं सवितोत विष्णुर्व्विश्वे मुंचन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा, इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्‌भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम । ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमंव्विमध्यमं श्रथाय । अथाव्वयमादित्यव्व्रते तवानागसोऽअदितयेस्याम स्वाहा, इदं वरुणायादित्यायादितये न मम । अत्रादकस्पर्शः इति पञ्चवारुणीहोमः ।।

अब 'ॐ त्वन्नो अग्ने' इत्यादि मन्त्र पढ़कर यथाक्रम से हवन कर अन्त में जल स्पर्श **(**आचमन**)** करें।। इति ।।

:: नवग्रहाणां होमः ।। ::

तत्रादौ नवग्रहाणां समिधः । अर्कः पलाशो खदिरो ह्यपामार्गोऽथपिप्पलः । उदुम्बरः शमी दूर्वाः कुशाश्च समिधः क्रमात् ।। ततो धृताक्ताः समिधो जुहुयात् । ॐ आकृष्णेन

राजसाव्वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवोयाति भुवनानि पश्यन् स्वाहा, इदं सूर्याय न मम । ॐ इमं देवाऽअसपत्नँ सुवध्वंमहते क्षत्राय महते ज्यैष्ठयाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रमस्यै व्विश एष वोऽर्मा राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा स्वाहा, इदं चन्द्राय न मम । ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपां रेतां सि जिन्वति स्वाहा, इदं मंगलाय न मम । ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहीत्वमिष्टापूर्ते सं सृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत स्वाहा, इदं बुधाय न मम ।। ॐ वृहस्पतेऽअति यदर्योऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजाततदस्मासुद्रविणं धेहि चित्रं स्वाहा, इदं वृहस्पतये न मम । ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसम्ब्रह्मणाव्यपिवत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियंव्विपानं शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु स्वाहा, इदं शुक्राय न मम । ॐ शन्नो देवोरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरमिस्रवन्तु नः स्वाहा, इदं शनैश्चराय न मम । ॐ कयानश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा । कयाशचिष्ठयावृता स्वाहा, इदं राहवे न मम । ॐ केतुं कृणवन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः स्वाहा, इदं केतवे न मम । इति नवग्रहाणां होमः ।।

तदनन्तर मदार, पलाश, खैर, चिचिड़ी, पीपर, गूलर, शमी, दूर्वा तथा कुशा ये, यथाक्रम से नवग्रहों के समिधा कहे गये हैं। यथाक्रम से अर्थात् पहले मदार की समिधा लेकर घी में डुबो कर 'ॐ आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र से सूर्य का हवन करें। पलाश की समिधा लेकर 'ॐ इमं देवा' इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमा का हवन करे। खैर की समिधा लेकर 'ॐ अग्नि मूर्द्धा' इत्यादि मन्त्र से मंगल का हवन करे। चिचिड़ी की समिधा लेकर 'ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने' इत्यादि मन्त्र से बुध का हवन करे। पीपर की समिधा लेकर 'ॐ वृहस्पतेऽअति' इत्यादि मन्त्र से वृहस्पति का हवन करें। गूलर की समिधा लेकर "ॐ अन्नात्परिस्रुतो" इत्यादि मन्त्र से शुक्र का हवन करें। शमी की समिधा लेकर "ॐ शन्नोदेवी" इत्यादि मन्त्र से शनिश्चर का हवन करे। दूर्वा की समिधा लेकर "ॐ कयानश्चित्र" इत्यादि मन्त्र से राहु का हवन करे। कुशा की समिधा लेकर "ॐ केतु" इत्यादि मन्त्र से केतु का हवन करे।। इति ।।

:: नवग्रहाऽधिदेवतानां होमः ।। ::

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिम्पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्स्वाहा, इदं त्र्यम्बकाय न मम । ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्याव्वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौव्यात्तम् । इष्णभिषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण स्वाहा, इदमुमायै न मम । ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुतवा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य

बाहूऽउपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन् स्वाहा, इदं स्कन्दाय न मम । ॐ विष्णोररराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो व्विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्ध्रवोऽसिवैष्णवमसि विष्णवे त्वा स्वाहा, इदं विष्णवे न मर्म । ॐ ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोव्वेनऽआवः स बुध्याऽउपमाऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम । ॐ आतारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवेसुहवें शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्रः स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम । ॐ असि यमोऽअस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येनव्व्रतेन । असि सोमेन समया व्विपृक्तऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि स्वाहा, इदं यमाय न मम । अत्रोदकस्पर्शः । ॐ कार्षिरसि समुद्रस्यत्वाक्षित्याऽउन्नयामि । समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः स्वाहा, इदं कालाय न मम । अत्राप्युदकस्पर्शः । ॐ इन्धानास्त्वा शतं हिमाद्युमन्तं समिधीमहि । वयस्वन्तौ वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भव नम दब्धासोऽदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय स्वाहा, इदं चित्रगुप्ताय न मम । इति नवग्रहाधिदेवानां होमः ।।

इसके बाद 'ॐ त्र्यम्बकं' इत्यादि मन्त्र से त्र्यम्बक **(**महादेव जी**)** के लिए हवन करें। 'ॐ श्रीश्चते' आदि मन्त्र से उमादेवी **(**पार्वती के निमित्त हवन करे। 'ॐ यदक्रन्द' आदि मन्त्र से स्कन्द **(**षडानन**)** के निमित्त हवन करे। 'ॐ विष्णो0' आदि मन्त्र से विष्णु भगवान के लिए हवन करे। 'ॐ ब्रह्मज0' मन्त्र से ब्रह्मा के लिए हवन करे। 'ॐ आतार0' आदि मन्त्र से इन्द्र के लिए हवन करे। "ॐ असि0" मन्त्र से यम के लिए हवन करे। यहां जल का स्पर्श करना चाहिए। 'ॐ कार्षिरसि' मन्त्र से काल के लिए हवन करे। यहां भी जल स्पर्श करे। 'ॐ इन्धाना' मन्त्र से चित्रगुप्त के लिए हवन करे ।।इति।।

:: नवग्रहप्रत्यधिदेवतानां होमः । ::

ॐ अग्निदूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रु वे । देवांऽऽआसादयादिह स्वाहा, इदमग्नये न मम । ॐ अप्स्वन्तरमृतमप्सुभेषजमपामुत प्रशास्तिष्वश्वा भवत व्याजिनः । देवीरापो यो व ऊर्म्मिः प्रमूर्ति ककुद्मान्वाजसास्तेनायं वाजं सेत् स्वाहा, इदमद्भ्यः न मम । ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशिनी । यच्छानः शर्म सप्रथाः स्वाहा, इदं पृथिव्यै न मम । ॐ इदं विष्णुर्विचकमेत्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पां सुरे स्वाहा, इदं विष्णवे न मम । ॐ सजोषाऽइन्द्र सगणी मरुद्भिः सोमम्पिव वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रुं रपमृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि व्विश्वतो नः स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम । ॐ आदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषासि धर्मायदीष्व स्वाहा, इदमिन्द्राण्यै न मम । ॐ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु व्वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम । ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे दिवितेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः स्वाहा, इदं सर्प्पेभ्यः न

मम । ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन आवः । स बुध्न्या उपमाऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम । इति नवग्रहप्रत्यधिदेवतानां होमः ।।

अब नवग्रहों के प्रत्यधिदेवताओं के लिये निम्न लिखित मन्त्रों से हवन करे। 'ॐ अग्निदूतं' मन् से अग्नि के लिए हवन करे। 'ॐ अप्स्वन्तर' मन्त्र से जल के लिए हवन करे। 'ॐ स्योना प्रथिवि' मन्त्र से पृथ्वी के लिए हवन करे। 'ॐ इदं विष्णु0' मन्त्र से विष्णु भगवान के लिये हवन करे। 'ॐ सजोषा0' मन्त्र से इन्द्र के लिये हवन करे। 'ॐ आदित्यै0' मन्त्र से इन्द्राणी देवी के लिये आहुति दे। "ॐ प्रजापते0" मन्त्र से प्रजापति के लिए आहुति दे। 'ॐ नमोऽस्तु0' मन्त्र से सर्प **(नाग)** देवता के लिये आहुति दान करे। 'ॐ ब्रह्मजज्ञानं' मन्त्र से ब्रह्मा के लिए आहुति दे।। इति"

:: पञ्चलोकपालानां होमः । ::

अथ पञ्चलोकपालानाहोमः ।। ॐ गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे प्रियणांत्वा पियपतिं हवामहे । निधीनांत्वा निधिपतिं हवामहे व्वसो मम । आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधं स्वाहा, इदं गणपतये न मम । ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽअम्बालिके नमानयति कश्चन । स सत्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीं स्वाहा, इदं दुर्गायै न मम । ॐ बातोवा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविं शतिः । तेऽअग्रेऽश्वमयुञ्जस्तेऽअस्मिञ्जंवमादधुः स्वाहा, इदं वायवे न मम । ॐ ऊद्र्ध्वाअस्य समिधो भवन्त्यूद्ध्वर्याशुक्रा शोचीं ष्यग्रेः द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः स्वाहा, इदमाकाशाय न मम । ॐ अश्विनोर्भैषज्येन ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियेः यशशेऽभिषिञ्चामि स्वाहा, इदमश्विभ्यां न मम ।।

तदनन्तर "ॐ गणानां" मन्त्र से गणपति के लिए आहुति दे। "ॐ अम्बे" मन्त्र द्वारा श्री दुर्गा देवी के लिये हवन प्रदान करे। 'ॐ वातो वा0' मन्त्र से वायु देवता के लिये आहुति देवे। 'ॐ अर्ध्वा0' मन्त्र से आकाश तत्व की आहुति दे। 'अश्विनो0' मन्त्र से आश्वनीकुमारों को आहुति दें।

:: दशदिक्पालानां होमः ।। ::

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुबहं शूरमिन्द्रम् । ह्वयामिशक्रम्पुरुहूतमिंद्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम । ॐ अग्निदूतं पुरो दधे हव्य वाहमुपब्रु वे । देवाऽऽआसादयादिह स्वाहा, इदमग्नये न मम । ॐ असि यमोऽअस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्व्रतेन । असि सोमेन समयाविपृक्तऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि स्वाहा, इदं यमाय न मम । ॐ एष ते निर्ऋते भागस्ते जुषस्व स्वाहा, अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः सद्भ्यः स्वाहा, यम नेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा, व्विश्वेदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा, मित्रावरुण नेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः दुवस्वद्भ्यः स्वाहा, सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य

उपरिसद्ध्र्यो दिवः स्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा, इदं निर्ऋतये न मम । ॐ इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा, इदं वरुणाय न मम । ॐ वायुरग्रेणा यज्ञमीः साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्भिः शिवाभिः स्वाहा, इदं वायवे न मम । ॐ कुविदङ्गयवमन्तो यवंचिद्यथादान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भेजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति स्वाहा, इदं कुबेराय न मम ।

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् स्वाहा, इदमीशानाय न मम । अत्रोदकस्पर्शः ।। ॐ ब्रह्मजज्ञानम्प्रथमम्पुर स्तद्विसीमतः सुरुचोव्वेन आवः । सबुध्न्याऽउपमाऽअस्यय विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः स्वाहा । इदं ब्रह्मणे न मम । ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः स्वाहा, इदमनन्ताय न मम । इति दशदिक्पालानां होमः ।

तदनन्तर दश दिक्पालों के लिए हवन करे। 'ॐ त्रातार' मन्त्र से इन्द्र देवता का आहुति प्रदान करे। 'ॐ अग्निदूतं' मन्त्र से अग्नि देवता के लिए आहुति प्रदान करे। 'ॐ असि0' मन्त्र से यम देवताओं को आहुति प्रदान करे। 'ॐ एष ते' इत्यादि मन्त्रों से निर्ऋति देवता को आहुति दे। "ॐ इमं में व्वरुण" मन्त्र से वरुण देवता के लिए हवन प्रदान करे। "ॐ वायु" मन्त्र से वायु देवता के लिए हवन करे। "ॐ कुविदंग0" मन्त्र से कुबेर देवता के निमित्त आहुति प्रदान करे। "ॐ ईशा0" मन्त्र को पढ़कर ईशान देवता को आहुति दे। यहां पर जल स्पर्श करे। "ॐ ब्रह्म0" मन्त्र से ब्रह्मा के लिये आहुति प्रदान करे। "ॐ नमोस्तुते" मन्त्र से अनन्त वासु की **(सर्प)** के निमित्त आहुति प्रदान करे।

:: सर्वतोभद्रमण्डलदेवतानां होमः ::

ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा ।। ॐ सोमाय नमः स्वाहा ।।

ॐ ईशालाय नमः स्वाहा ।। ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा ।।

ॐ अग्नये नमः स्वाहा ।। ॐ यमाय नमः स्वाहा ।।

ॐ निर्ऋतये नमः स्वाहा ।। ॐ वरुणाय नमः स्वाहा ।।

ॐ बायवे नमः स्वाहा ।। ॐ अष्टवसुभ्यो नमः स्वाहा ।।

ॐ एकादशरुद्रेभ्योनमः स्वाहा ।। ॐ द्वादशादित्येभ्योनमः स्वाहा ।।

ॐ अश्विभ्यां नमः स्वाहा ।। ॐ सपैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः स्वाहा ।।

ॐ सप्तयक्षेभ्योनमः स्वाहा ।। ॐ भूतनागेभ्यो नमः स्वाहा ।।

ॐ गन्धर्वाप्सरोभ्यो नमः स्वाहा ।। ॐ स्कन्दाय नमः स्वाहा ।।

ॐ नन्दीश्वराय नमः स्वाहा ।। ॐ शूलमहाकालाभ्यां नमः स्वाहा ।।

ॐ दक्षादिसप्तगणेभ्यो नमः स्वाहा ।। ॐ दुर्गायै नमः स्वाहा ।।
ॐ विष्णवे नमः स्वाहा ।। ॐ स्वधासहितपितृभ्यो नमः स्वाहा ।।
ॐ मृत्युरोगाभ्यां नमः स्वाहा । ॐ गणपतये नमः स्वाहा ।।
ॐ अद्भ्यो नमः स्वाहा ।। ॐ मरूद्भ्यो नमः स्वाहा ।।
ॐ पृथिव्यैनमः स्वाहा ।। ॐ गङ्गादिनदीभ्योनमः स्वाहा ।।
ॐ सप्तसागरेभ्यो नमः स्वाहा ।। ॐ मे रवें नमः स्वाहा ।।
ॐ गदायै नमः स्वाहा ।। ॐ त्रिशूलाय नमः स्वाहा ।।
ॐ वज्राय नमः स्वाहा ।। ॐ शक्तये नमः स्वाहा ।।
ॐ दण्डाय नमः स्वाहा ।। ॐ खड्गाय नमरू स्वाहा ।।
ॐ पाशाय नमः स्वाहा ।। ॐ अङ्कशाय नमः स्वाहा ।।
ॐ गौतमाय नमः स्वाहा ।। ॐ भारद्वाजाय नमः स्वाहा ।।
ॐ विश्वामित्रायनमः स्वाहा ।। ॐ कश्यापायनमः स्वाहा ।।
ॐ जमदग्नये नमः स्वाहा ।। ॐ वसिष्ठाय नमः स्वाहा ।।
ॐ अत्रये नमः स्वाहा ।। ॐ अरुन्धत्ये नमः स्वाहा ।।
ॐ ऐन्द्रयै नमः स्वाहा ।। ॐ कौमार्यै नमः स्वाहा ।।
ॐ ब्राह्म्यै नमः स्वाहा ।। ॐ वाराह्यै नमः स्वाहा ।।
ॐ चामुण्डायै नमः स्वाहा ।। ॐ वैष्णव्यै नमः स्वाहा ।।
ॐ माहेश्वर्यै नमः स्वाहा ।। ॐ वैनायक्यै नमः स्वाहा ।।
इति सर्वतोभद्रमण्डलदेवतानां होमः ।।

----*----**

प्रधानदेवस्य होमः ।।

****

सब देवताओं की आहुतियां देने के पश्चात् प्रधान देवता गायत्री की गायत्री मन्त्र से जितनी आहुतियां देनी निश्चित की हों उतनी आहुतियां देवे।

"ॐ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ।"

:: पूर्णाहुति होमः ।। ::

तत्र यजमानः सपत्नीकः आचार्यदक्षिणस्कन्ध स्पृशन् ताम्बूलपूगीफलाक्षतं घृतं वा. घृतपूर्णनारिकेलं वा स्रुवे **(स्रुचि धृवा)** घृत्वा पूर्णाहुति दद्यात् ।। मन्त्रोयथा—

ॐ पूर्णादर्विपरापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव व्क्रिीणावाहाऽइषमूर्जँ शतक्रतो स्वाहा ।। इति पूर्णाहुति ।।

तत्पश्चात् यजमान अपनी स्त्री के सहित आचार्य का दाहिना कन्धा छूते हुए पान, सुपारी, अक्षत, घृत अथवा घृत सहित नारियल को स्रुव पर रखकर "ॐ पूर्णदर्विपरापत" इत्यादि मन्त्र से पूर्णाहुति देवें।।

:: बर्हिर्होमः । ::

अब फैली हुई कुशाओं को घृत में डुबो कर "ॐ देवागांतु" इत्यादि मन्त्र से कुश का हवन करें।

ॐ देवागान्तु विदोगातुं वित्वागातुमित । मनसस्पत इमं देवयज्ञँ स्वाहा व्वातेधाः स्वाहा । इति बर्हिहोमः ।।

ततो ब्रह्मग्रन्थिविमोकः ।

उसके बाद ब्रह्म ग्रन्थिका—जो कि ब्रह्मा के वरण के समय रखी थी, ख ल देवें।

ॐ सुमित्रिया नऽआपऽओषधः सन्तु ।।

इति मन्त्रेण पवित्रकं गृहीत्वां प्रणीताजलेन शिरः समृज्य ।

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयंद्विष्मः इति मन्त्रेण ऐशान्यां प्रणीता पात्रं न्युब्जी कुर्यात् ।

तदुपरान्त "ॐ सुमित्रिया" इस मन्त्र को पढ़कर पवित्री द्वारा प्रणीता पात्र से जल लेकर मस्तक पर छिड़कें और "ॐ दुर्मित्रियातस्मै" इस मन्त्र को पढ़कर ईशान कोण में प्रणीता पात्र के जल को डाल दें और प्रणीता को वहीं उलटा कर रखदें। तत्पश्चात् ब्रह्मा को पूर्ण पात्र की दक्षिणा गो आदि यथा शक्ति देवें।

तर्पण

तर्पण के लिए जल पात्र में दूध, पुष्प, तिल, जौ अक्षत शर्करा डाले। कुश हाथ में लेकर, यज्ञोपवीत को अंगूठे और तर्जनी के बीच में होते हुए हाथ में अटका हुआ निकाल कर अंजलि में जल भर कर अर्घ्य की भांति उंगलियों के छोरों की ओर जल विसर्जित करे। तर्पण के समय

दोनों हाथों की अनामिका उंगलियों में कुश की बनी हुई अंगूठी पहनें। शिखा में, दोनों पैरों के नीचे, यज्ञोपवीत में तथा धोती की अंटी में कुश के टुकड़े लगा लेने चाहिये।

:: तर्पण मन्त्र । ::

ॐ भूर्भुव ऽवः पुरुषमृग्यजुः साम मण्डलान्तर्गत सविता रमावाह्ययामीत्यावाह्य तर्पणं कुर्यात् ।।

ॐ भूः पुरुषमृग्वेद तर्पयामि ।
ॐ भुवः पुरुषं यजुर्वेदं तर्पयामि ।
ॐ स्वः पुरुषं सामवेदं तर्पयामि ।
ॐ महः पुरुषमथर्ववेदं तर्पयामि ।
ॐ जनः पुरुषमितिहास पुराणं तर्पयामि ।
ॐ तपः पुरुषं सर्वांगमं तर्पयामि ।
ॐ सत्यं पुरुषं सर्वलोकं तर्पयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः **(पुरुषं)** ऋग्यजुः साम मण्डलान्तर्गत तर्पयामि ।

ॐ भूरेक पादं गायत्रीं तर्पयामि ।
ॐ भुवर्द्विपादं गायत्रीं तर्पयामि ।
ॐ स्वस्त्रिपादं गायत्री तर्पयामि ।
ॐ भूर्भुवः स्वश्चतुष्पादं गायत्रीं तर्पयामि ।
ॐ उषसं तर्पयामि । ॐ गायत्रीं तर्पयामि ।
ॐ सावित्रीं तर्पयामि । ॐ सरस्वतीं तर्पयामि ।
ॐ पृथ्वीं तर्पयामि । ॐ जयां तर्पयामि ।
ॐ कौशिकीं तर्पयामि । ॐ सांकृतीं तर्पयामि ।
ॐ सर्वापराजितां तर्पयामि । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं तर्पयामि ।
ॐ सहस्रमूर्ति तर्पयामि । ॐ अनन्त मूर्ति तर्पयामि ।
एभिर्मन्त्रैश्य यो नित्यं चतुर्विंशतिभिर्द्विजः ।
सुतर्पति गायत्री स यज्ञफलमाप्नुयात् ।।

:: भस्म धारणं ::

स्रव से भस्म लेकर "ॐ त्र्यायुषं जमदग्ने" इस मन्त्र को पढ़कर अनामिका उंगली से मस्तक में भस्म लगावें। एवं "ॐ कश्यपस्य" इत्यादि मन्त्र को पढ़-पढ़ कर क्रम से ग्रीवा, दाहिनी बाहु के मूल प्रदेश और हृदय में भस्म लगावें।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम् ।।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले।

ॐ तन्नोऽस्तु त्र्यायुषमिति हृदि।

इति त्र्यायुषकरणाम् ।।

:: नीराजनम् ::

भस्म धारण के पश्चात घी की बत्ती बनाकर "साज्यं" आदि निम्न मन्त्रों को पढ़कर आरती उतारें।

साज्यं त्रिवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।

दीपं गृहाण देवेश बैलोक्यतिमिरापह ।।

भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।

त्राहिमां निरयाद् घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तुते ।।

:: पुष्पांजलि प्रदानम् ।। ::

हाथ में पुष्प लेकर निम्न मन्त्रों से पुष्पांजलि प्रदान करे। ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्। तेहनाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।। राजाधिरजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे । स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ।। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ।।

ॐ स्वस्थि साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्त्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात्। पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकरालिति तदप्येष । श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति। ॐ विश्वतश्चक्षुरुत व्विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुतव्विश्वतस्पात् ।। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः । श्री भवानीशङ्करमहाविष्णवादिदेवताभ्यो नमः ।। मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।।

----***----

दिक्पालों को बलिदान

****

दश दिक्पालों (दिशाओं की रक्षा करने वाले देवताओं) के वलि, हवन वेदी के दश ओर दी जाती है। वलि का अर्थ है भेंट या आहार। पशु वलि से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। निर्धारित दिशा में दिक्पालों के लिए पत्तलों पर लवण रहित पकवानों और मिष्ठानों को रखते हैं और मन्त्र पढ़कर उन दिक्पालों को उस आहार को ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

साधारणतः दही, चावल, उर्द के बड़े, आदि वस्तुएं इस वलि में दी जाती हैं। उर्द के बड़े बनाने की प्रथा इसलिए प्रचलित हुई मालूम पड़ी है कि मध्यकाल में मांस का प्रयोग इस कार्य में किया गया होगा, पीछे उसके सुधार के लिए मांस शब्द के स्थान पर माष अर्थात् उर्द को उपयुक्त माना गया होगा। हमारी दृष्टि में दधि, चावल, तथा अन्य मिष्ठान्न पकवानों की बलि ही दिकपालों को दी जानी उचित है। वह वलि भाग पीछे पशु पक्षियों को खिलाने के लिए किसी पवित्र स्थान पर रख दिया जाता है।

:: दिग्पालादिस्थापितदेवतादीनां बलिदानम् ।। ::

यजमानों हस्ते जलं गृहीत्वा । मया प्रारब्धस्य सग्रहमख श्रीगायत्री यज्ञ कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं दशदिक्पालदेवतानां स्थापितदेवतादींनाञ्च पूजनपूर्वक बलिदान करिष्ये ।।

यजमान हाथ में जल लेकर उपर्युक्त वाक्य पढ़कर दशदिकपालों को बलिदान के लिए संकल्प करे।

प्राच्यां—ॐ इन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् सभिर्गन्धाद्युपचारैः त्वामहं पूजयामि । इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् असादितं बलिं समर्पयामि ।। भो इन्द्र दिशं रक्षं बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्त्ता क्षेमकर्त्ता शान्तिकर्त्ता पुश्टिकर्ता तुष्टिकर्त्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव ।। अनेन पूजन पूर्वक बलिदानेन इन्द्रः प्रीयता न मम ।।1।।

बलि सामग्री लेकर "प्राच्यां इन्द्रं" आदि मन्त्र से पूर्व दिशा में इन्द्र के लिए बलि देवें।

आग्नेय्याम्—ॐ अग्निं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामह्नं पूजयामि । अग्नये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो अग्ने दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटन्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु ।

आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्न कर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वकबलिदानेन अग्निः प्रीयतां न मम ।।2।।

इसी प्रकार "अग्निं साङ्ग" आदि मन्त्र से बलि सामग्री लेकर अग्निकोण में अग्नि के लिए बलि देवें।

दक्षिणस्यां—ॐ यमं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि ।। यमाय साङ्गाय सपरिवाराय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समपयामि ।। भो यम दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुकुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन यमः प्रीयतां न मम ।।3।।

तत्पश्चात्—"यमं साङ्ग" आदि मन्त्र से बलिसामग्री लेकर दक्षिण दिशा में यम के लिए बलि देवें।

नैर्ऋत्यां—ॐ निर्ऋतिं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । निर्ऋतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो निऋते दिशं रक्ष बलिंभक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टकर्ता तुष्टिकता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । अनेक पूजनपूर्वकबलिदानेन निर्ऋतिः प्रीयतां न मम ।।4।।

तदनन्तर "निर्ऋति साङ्ग" आदि मन्त्र से हाथ में बलि सामग्री लेकर नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋत्य देवता के लिए बलि देवें।

पश्चिमायाम्—ॐ वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । वरुणाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि ।। भो वरुण दिशं रक्ष बलि भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेम कर्ता शान्ति कर्ता पुष्टि कर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव ।। अनेन पूजनपूर्वकबलिदानेन वरुणः प्रोयतां न मम ।।5।।

तत्पश्चात् "वरुणं साङ्ग" आदि मन्त्र से बलि सामग्री लेकर पश्चिम दिशा में वरुण देवता के लिए बलि देवें।

नैर्ऋत्यां—ॐ निर्ऋतिं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । निर्ऋतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं

समर्पयामि । भो निश्रते दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याम्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव। अनेन पूजनपूर्वकबलिदानेन निर्ऋतिः प्रीयतां न मम ।।4।।

तदनन्तर "निर्ऋतिं साङ्ग" आदि मन्त्र से हाथ में बलि सामग्री लेकर नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋत्य देवता के लिए बलि देवें।

पश्चिमायाम्—ॐ वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । वरुणाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो निऋते दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेम कर्ता शान्ति कर्ता पुष्टि कर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव ।। अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन वरुणः प्रीयतां न मम ।।5।।

तत्पश्चात् "वरुणं साङ्ग" आदि मन्त्र से बलि सामग्री लेकर पश्चिम दिशा में वरुण देवता के लिए बलि देवें।

वायव्याम्—ॐ वायुं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । वायवे साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो वायो दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याण कर्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन वायुः प्रीयतां न मम ।।6।।

तत्पश्चात्—"ॐ वायुं साङ्ग" आदि मन्त्र से हाथ में बलि सामग्री लेकर वायव्य कोण में वायु देवता के प्रति बलि अर्पण करें।

उत्तरस्यां—ॐ सोमं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि ।। सोमाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो सोम दिशं रक्ष बलि भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयंकुरु । आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन सोमः प्रीयतां न मम ।।7।।

तत्पश्चात्—बलि सामग्री लेकर "ॐ सोमं साङ्गं" आदि मन्त्र से उत्तर दिशा में सोम के लिए बलि अर्पित करें।

ऐशान्याम्—"ॐ ईशानं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ईशानाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो ईशान दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वकबलिदानेन ईशानः प्रीयतां न मम ।।8।।

तत्पश्चात्—बलि सामग्री लेकर "ॐ ईशानं साङ्ग" मन्त्र से ईशन कोण में ईशान देवता के लिये बलि प्रदान करें।

पूर्वेशानयोर्मध्ये ऊर्ध्वायाम्—ॐ ब्रह्माणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ब्रह्मणं साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि ।। भो ब्रह्मन् दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदोभव । अनेन पूजनपूर्वकबलिंदानेन ब्रह्मा प्रीयतां न मम ।।9।।

तत्पश्चात्—बलि सामग्री लेकर पूर्व ईशान के बीच ऊर्ध्व में "ॐ ब्रह्माणं" मन्त्र से ब्रह्मा के लिए बलि अर्पित करें।

सस निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽधः—ॐ अनन्तं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । अनन्ताय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समपयामि ।। भो अनन्त, दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकार्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन अनन्तः प्रीयतां न मम ।।10।। इति दशदिकपाल बलिः ।।

तत्पश्चात्—बलि सामग्री लेकर निर्ऋति और वरुण के बीच में नीचे "ॐ अनन्त साङ्गं" मन्त्र से अनन्त के लिए बलि प्रदान करें।

:: ईशान्यां नवग्रह बलि ।। ::

ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्यादिनवग्रहमण्डलदेवान् साङ्गान् सपरिवारान् सायुधान् सशक्तिकान् एभिर्गन्धाद्युपचारैः वः अहं पूजयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्यादिनवग्रह मण्डलदेवेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो भो सूर्यादिनवग्रहमण्डलदेवाः इमं बलिं गृह्णीत । मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याम्युदयंकुरुत । आयुःकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिक्रर्तारः पुष्टिकर्तारः तुष्टिकर्तारः

निर्विघ्नकर्तारः कल्याणकर्तारः वरदा भवत । अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन सूर्यादिनवग्रहमण्डलदेवाः प्रीयतां न मम ।।

अब यजमान हाथ में बलि सामग्री लेकर उपर्युक्त मन्त्र से नवग्रहों के लिए बलि देवें। अन्त में "अनेन बलिदानेन" आदि वाक्य पढ़ें।

:: महाक्षेत्रपाल बलि ।। ::

ॐ भूर्भुवः स्वः क्षेत्रपालं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं भूतप्रेतपिशाच डाकिनीशाकिनीसहितम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ॐ भू र्भुवः स्वः भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनी सहिताय क्षेत्रपालाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपम् आसादितं महाबलिं समर्पयामि । भो क्षेत्रपाल इमं बलि गृहाण । मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेम कर्ता शान्ति कर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । **(**हस्त जलं गृहीत्वा**)** अनेन पूजनपूर्वकबलिदानेन भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीसहितः महाक्षेत्रपालं प्रोयतां न मम ।।

अब हाथ में सामग्री लेकर उपर्युक्त मन्त्र से महाक्षेत्रपालों के लिए बलि देवें। तथा हाथ में जल लेकर "अनेन पूजन पूर्वक बलि दानेन" आदि वाक्य पढ़े।

:: तद्दक्षिणे वसोर्धारासमन्वितसगणेश गौर्यादिमातृकाणां बलिः ।। ::

ॐ भूर्भुवः स्वः वसोर्धारासमन्वित सगणेशगौर्याद्यावाहितमातृः साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः एभिर्गन्धाद्युपचारैः वः अहं पूजयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः वसोर्धारासमन्वित सगणेशगौर्याद्यावाहितमातृभ्यः साङ्गाभ्यं सपरिवाराभ्यः सायुधाभ्यः सशक्तिकाभ्य इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो भो वसोर्धारासमन्वितसगणेशगौर्या द्यावाहितमातरः इमं बलिं गृह्णीत । मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरुत । आयुः कर्त्र्यः क्षेम कर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः वरदा भवत । अनेन पूजन पूर्वकबलिदानेन वसोर्धारासमन्वित सगणेश गौर्याद्यावाहित मातरःपीयन्तां न मम ।।

दक्षिण में बलिं सामग्री से बसोर्धारासमन्वित गणेश गौरी आदि के लिए बलि देवे।

:: आग्नेय्यां गणपतिबलिः ।। ::

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतिं साङ्ग सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । गणपतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकम् इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि । भो गणपते इमं बलिं गृहाण । मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं

कुरु। आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याण कर्ता वरदो भव। अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन गणपतिः प्रीयतां न मम ।।

अब हाथ में बलि सामग्री लेकर अग्नि कोण में गणपति के लिये बलि देवें। तथा अन्त में "अनेन पूजनपूर्वकवलिदानेन" आदि वाक्य पढ़ें।

:: ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवतासहित वास्तु पुरुष बलिः ::

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवतासहितं वास्तुपुरुषं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवतासहिताय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय वास्तुपुरुषाय इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि ।। भो ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवतासहितवास्तुपुरुष इमं बलिं गृहाण । सकुटम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । अनेन पूजनपूर्वक बलिदानेन ब्रह्मदिवास्तुमण्डलदेवतासहितवास्तु पुरुषः प्रीयतां न मम ।।

तदनन्तर बलि सामग्री लेकर उपर्युक्त मन्त्र से ब्रह्मादिवास्तुमण्डलसहित वास्तु पुरुष के लिए बलि देवें। और अन्त में "अनेन पूजनपूर्वक बलि दानेन" आदि वाक्य पढ़ें।

* आग्नेय्यां योगिनीवलिः *

ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीगजाननादिचतुः षष्टियोगिनीः साङ्गा सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिका एभिर्गन्धाद्यपचारैर्वः अहं पूजयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीक महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीसहिताभ्यः गजाननादिचतुषष्टियोगिनीभ्यः साङ्गाभ्यः सपरिवाराभ्यः सायुधाभ्यः सशक्तिकाभ्यः इमं सदीपम् असादितं बलिं समर्पयामि ।। भो भो श्री महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती सहिता गजाननादिचतुः षष्टियोगिन्यः इमं बलिं गृह्णीत । मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरुत । आयुकर्त्र्यः क्षेमककर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्य तुष्टिकर्त्र्यः निर्विघ्नकर्त्र्य कल्याणकर्त्र्यः वरदा भवत। अनेनपूजनबलिदानेन श्रीमहाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती सहिता गजाननादिचतुः षष्टियोगिन्यः प्रीयन्तां न मम ।।

तदनन्तर बलि सामग्री लेकर उपर्युक्त मन्त्र श्री महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती सहित चौसठ योगिनी के लिए अग्नि कोण में बलि देवें और अन्त में "अनेन पूजनपूर्वक बलि दानेन" आदि वाक्य पढ़ें।

* वायव्यां क्षेत्रपाल बलिः *

ॐ भूभुर्वः स्वः क्षेत्रपालसहितान अज राद्येकपञ्चाशत्क्षेत्रपालदेवान् साङ्गान्सपरिवारान् सायुधान्सशक्तिकान् एभिर्गन्धाद्युपचारैर्वः अहं पूजयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः क्षेत्रपाल सहितेभ्योऽजराद्येकपञ्चाशत्क्षेत्रपाल देवेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि ।। भो भो क्षेत्रपालसहिता अजराद्येकपञ्चाशत्क्षेत्रपालदेवाः इमं बलिं गृह्णीत । मम सकुटुम्बस्य सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरुत । आयुःकर्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारः तुष्टिकर्तारः निर्विघ्नकर्तारः कल्याणकर्तारः वरदा भवत । अनेन पूजन पूर्वक बलिदादेन क्षेत्रपालसहिता अजराद्येकपञ्चाशत्क्षेत्रपालदेवाः प्रीयतां न मम ।।

तदनन्तर हाथ में बलि सामग्री लेकर उपयुर्क्त मन्त्र से मध्य में सर्वतोभद्र देवताओं के सहित श्री गायत्री देवी के लिए बलि देवें तथा अन्त में "अनेन पूजन पूर्वक बलि दानेन" आदि वाक्य पढ़ें।

:: मध्यपीठे प्रधानेवतायाः श्रीगायत्र्या बलिः ।। ::

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मादिसर्वतोभद्र मण्डलदेवतासमन्वितां श्रीगायत्रीपीठयन्त्रावरणदेवतासहितां भगवतीं श्री गायत्रीदेवीं साङ्गां सपरिवारां सायुधां सशक्तिकाम् एमिग्रन्धाद्यपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मदिसर्वतोभद्रमण्डलदेवतासमन्वितायै श्री गायत्री पीठ यन्त्रावरणदेवतासहितायै भगवत्यै श्री गायत्रीदेव्यै साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै इमं सदीपम् आसादितं बलिं समर्पयामि ।। सो भो ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलदेवतासमन्विते श्री गायत्रीपीठयन्त्रावरणदेवतासहिते भगवति श्री गायत्रिदेवि इमं बलिंगृहाण ।। मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य यजमानस्याभ्युदयं कुरु । आयुः कर्त्री क्षेमकर्त्री शान्तिकर्त्री पुष्टिकर्त्री तुष्टिकर्त्री निर्विघ्नकर्त्री वरदा भव । अनेन पूजनपूर्वकबलिदानेन सर्वतोभद्रमण्डलदेवतासमन्विता श्री गायत्रीपीठयन्त्रावरणदेवता सहिता भगवती श्रीगायत्री देवी प्रीयतां न मम ।।

तदनन्तर हाथ में बलि सामग्री लेकर उपयुर्क्त मन्त्र से मध्य में सर्वतोभद्र देवताओं के सहित श्री गायत्री देवी के लिए बलि देवें तथा अन्त में "अनेन पूजन पूर्वक बलि दानेन" आदि वाक्य पढ़ें।

:: अन्य देवताओं को बलि ::

ॐ भूताया त्वा नारातये स्वरभिविख्ये येषं दूँ हन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वानाभौसा दयाभ्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यूँ रक्ष ।।

अनेन मन्त्रेण क्षेत्रपालबलिनेतारं प्रति तण्डुलान्प्रक्षिपेत् ।

"ॐ भूताय" इस मन्त्र से अक्षत प्रक्षेप करके अन्य देवताओं को बलि प्रदान करें।

:: स्विष्ट कृत होमः ::

तदन्ते स्विष्टकृद्धोमः ।। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते0 । इति स्विष्टकृत् ।।

तदनन्तर उपर्युक्त मन्त्र से यजमान के ऊपर चावल छोड़े और "ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" इस मन्त्र से स्विष्टकृत नामक हवन करें।

स्विष्टकृत आहुति में मिष्ठान्न, खीर, हलुआ, आदि मधुर पदार्थ होमे जाते हैं।

----*----**

विसर्जन

****

सर्वतोभद्र चक्र में स्थापित देवताओं तथा गायत्री माता को विसर्जन करने के लिए हाथ में चावल लेकर निम्न लिखित मन्त्रों को पढ़े। और जिस जिस देवता का विसर्जन करना है उसके स्थान पर अक्षत छोड़ते जावें।

अक्षतानादायः—

गच्छ त्वं भगवन्नग्ने स्वस्थाने कुण्ड मध्यतः ।
हुतमादाय देवेभ्यः शीघ्रंदेहि प्रसीद मे ।।1।।
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ।।2।।
भूमध्ये गच्छ सिद्ध त्वं गोलोके त्वं प्रजापते ।
वरुण त्वं जले गच्छ सागरे कलशं व्रज ।।3।।
हेमन्ते गच्छ गणप ब्रह्माण्डे त्वं पितामह ।
विष्णो त्वं गच्छ वैकुण्ठे कैलासे त्वं महेश्वर ।।4।।
लक्ष्मी त्वं हि महाविष्णुं स्वभर्तारमनुव्रज ।
रवे गच्छ कलिङ्गे त्वं चन्द्रे त्वं यमुनातटे ।।5।।
अवन्तीं गच्छभौम त्वं बुध त्वं मगधे व्रज ।
सिन्धुदेशे जीव गच्छ कवे भोज कटे व्रज ।।6।।
शने त्वं गच्छ सौराष्ट्रे राहो राठी नकं व्रज ।
अवन्ती गच्छ केतो त्वं स्वं स्वं स्थानं नवग्रहाः ।।7।।
इन्द्राऽमरावतीं गच्छ तथाग्नेयीं च पावक ।
व्रज संयमिनीं धर्म नैर्ऋतीं व्रज निर्ऋते ।।8।।
वरुणाऽम्भोनिधौ गच्छ सर्वत्र व्रज मारुत ।
गच्छाऽलकां कुबेर त्वं मीशैशानीं दिशं व्रज ।।9।।
माहेन्द्रे त्वं व्रजागस्त्य ध्रुव त्वं मेरुपर्वते ।
तथा भवद्भिर्ऋषिभिर्गन्तव्यमृषि मण्डले ।।10।।
वसवोऽष्टौ तु गङ्गायां रुद्रपुरीं व्रज ।
गन्धर्वाः किन्नराः सर्वे स्वं स्वं स्थानं च गच्छत ।।11।।

उत्तमे शिखरे देवी, भूम्यां पर्वत मूर्धनि ।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञातं गच्छदेवि यथा सुखम् ।।12।।
यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ।।13।।

यज्ञ के अन्त में सब लोग खड़े होकर दांएँ से बांएँ की ओर यज्ञ की चार परिक्रमा करें। प्रदक्षिणा का मन्त्र**:**—

यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण-पदे-पदे ।।

:: क्षमा प्रार्थना ::

अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ।।1।।
आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व मरमेश्वर ।।2।।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणंमम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर ।।3।।
गतं पापं गतं दुःखं गतं दारिद्र्यमेव च ।
आगता सुखसम्पत्तिः पुण्याच्च तव दर्शनात् ।।4।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मयादेवं परिपूर्णं तदस्तुमे ।।5।।
यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ।।6।।
यस्य स्मृत्वा च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्योवन्दे तमच्युतम् ।।7।।
प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषुयत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति रुतिः ।।8।।

प्रदक्षिणा के पश्चात् हाथ जोड़ कर "अपराधस0" इत्यादि मन्त्रों को पढ़कर क्षमा-प्रार्थना करें।

:: अथाऽभिषेक ।। ::

अभिषेके पत्नी वामतः । रुद्रकलशात्पल्लवोदकैः सकलत्रपुत्रमभिषिञ्चेत् ।

अभिषेक के समय पत्नी को वाम भाग में किये हुए सपरिवार **(**खड़े हुये**)** यजमान के ऊपर आचार्य निम्न लिखित मन्त्रों को पढ़कर **(**रुद्रकलश के जल से पञ्चपल्लव द्वारा**)** अभिषेक करे जल सिंचन, मार्जन करें। मंत्र**:**—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वासुदेवी जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ।।1।।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ।।2।।
कार्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः कान्तिस्तुष्टिश्च मातरः ।।3।।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदानदाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च मुनयः सकला ग्रहाः ।।4।।
सौभाग्यं ते प्रयच्छन्तु वेदमन्त्राश्च कल्पकाः ।
ब्रह्माणी चैव गायत्री सावित्री श्रीरुमा सती ।।5।।
अरुन्धत्यनसूया च तव सन्तु फलप्रदाः ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ।।6।।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।
छन्दाः शास्त्राणि सर्वाणि पुराणैः सकलैः सह ।।7।।
भूसद्याः सप्तलोकाश्च पातालानि चतुर्युगम् ।
ब्रह्मादिसप्तकल्पाश्च मनवश्च चतुर्दश ।।8।।
संवत्सराश्च ऋतवो मासपक्षदिनानि च ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ।।9।।
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।10।।
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापो निघ्नन्तु ते सदा ।।11।।
शान्तिः शान्तिः सशुान्तिर्भवतु । अमृताभिषेकोऽस्तु ।

अभिषेक के पश्चात् "ॐ स्वस्ति नऽइन्द्रो" इत्यादि मन्त्र पढ़कर यजमान को तिलक लगावें और "मन्त्रार्थः सफलाः" इत्यादि वाक्य पढ़कर फल दान देवें।

:: तिलक एवं फलदान ::

ॐ स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्वेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्योऽअरिष्टनेमिः खस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।1।।

मन्त्रार्थः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
त्रुणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्रागामुदयस्तव ।।2।।

यजमान आचार्य तथा ऋत्वजों को दक्षिणा दें। अन्न, वस्त्र, पात्र, गौ तथा धन जो देना हो उसका संकल्प करके ब्राह्मणों के चरण स्पर्श करे।

:: सामूहिक शुभ कामना ::

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा श्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।।1।।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
निर्धनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ।।2।।
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्य शालिनी ।
देशोऽयं क्षोभ रहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ।।3।।
अन्नं च नो वहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मास्य याचिष्म कञ्चन ।।4।।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्तति रेव च ।
श्रद्धाचनो मा वयमद् वहु देयं न नोऽस्त्विति ।।5।।
श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यां पुष्टिं श्रियमं बलम् ।
तेज आयुष्यमारोग्यं देहि मे हव्यवाहन ।।6।।
स्वस्ति प्रजाभ्य परिपालयन्तां,
न्यायेण मार्गेण महीं महीशा ।
मो ब्राह्मणेभ्यो शुभमस्तु नित्यं,
लोको समस्ता सुखिनः भवन्तु ।।

:: शान्तिं पाठः ::

ॐ ::द्यौः शान्ति अंतरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

----***----

भजन कीर्तन

****

यज्ञ के अन्त में उत्तमोत्तम भजन, कीर्तन, गायन, वाद्य, आरती आदि का आयोजन करना चाहिए। कुछ भजन नीचे दिये जाते हैं:—

:: आरती गायत्री जी की ::

जयति जय गायत्री माता । जयति जय गायत्री माता ।।

आदि शक्ति तुम अलख निरंजन जग-पालन कर्त्री ।

दुःख शोक, भय, क्लेश, कलह, दारिद्रय दैनय हर्त्री ।। जयति० ।।

ब्रह्मरूपिणी, प्रणति पालिनी, जगद्धातृ अम्बे ।

भवभय हारी, जनहितकारी, सुखदा जगदम्बे ।। जयति० ।।

भवहारिणी, भव तारिणि अनघे, अज आनन्द राशी ।

अविकारी, अघहारी, अविचलित, अमले अविनाशी ।। जयति० ।।

कामधेनु सत चित्त अनन्दा जय गंगा गीता ।

सविता की शाश्वती शक्ति तुम सावित्री सीता । जयति० ।।

ऋग्, यजु, साम अथर्व प्रणविनी प्रणव महा महिमे ।

कुण्डलिनी सहस्रार सुषुम्ना शोभा गुण गरिमे ।। जयति० ।।

स्वाहा, सुधा, शची ब्रह्माणी राधा, रुद्राणी ।

जय हतरूपा वाणी विद्या कमला कल्याणी ।। जयति० ।।

जननी हम हैं दीन—हीन दुःख दारिद के घेरे ।

यद्यपि कुटिल कपटी कपूत तऊ बालक हैं तेरे ।। जयति० ।।

स्नेह सनी करुणामय माता चरण-शरण दीजै ।

विलख रहे हैं हम शिशु सुत तेरे दया दृष्टि कीजै । जयति० ।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, दुर्भाव, द्वेष हरिये ।

शुद्ध-बुद्धि, निष्पाप हृदय, मन को पवित्र करिये ।। जयति० ।।

तुम समर्थ सब भांति तारिणी तुष्टि, पुष्टि त्राता ।

सत मारग पर हमें चलाओ, जो है सुख दाता ।। जयति० ।।

जयति जय गायत्री माता । जयति जय गायत्री माता ।।

:: गायत्री व्याख्या ::

हे सर्व रक्षक ओ३म् तुमको, बार बार प्रणाम है।

प्राण प्रिय 'भूः' दुःख विनाशक, 'भुव' तुम्हारा नाम है ।।

सत् चित् 'स्वः' आनन्द कन्द मङ्गल मूल तुम सुख रूपहो ।

हम हैं प्रजा सब आपकी तुम ही हमारे भूप हो ।।

माता पिता 'सविता' विधाता देव दिव्य प्रकाश हो ।

हम हैं ग्रहण करते 'वरेण्यं' भक्त जल की आश हो ।।

शुभ गुण सदन विज्ञान सागर 'भर्ग' प्रिय भुवनेश हो ।

हम हैं उपासक आपके तुम ज्ञान गम्य गणेश हो ।।

मानस भवन में आपका हम ध्यान नित करते रहें ।

प्रेरित करो बुद्धी हमारी दुरित सब हरते रहें ।।

हो भव्य भावों से भरा भगवान् यह घर आपको ।

निशि दिन सुमंगल गान हो दर्शन न होवे पापका ।

:: यज्ञ पुरुष महिमा ::

यज्ञ रूप प्रभु हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए ।

छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए ।।

वेद की बोले ऋचाएं, सत्य को धारण करें ।

हर्ष में हो मग्न सारे, शोक सागर से तरें ।।

अश्वमेधादिक मृचाएं, यज्ञ पर उपकार को ।

धर्म मर्यादा चला कर, लाभ दें संसार को ।।

नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें ।

रोग पीड़ित विश्व के, सन्ताप सब हरते रहें ।।

कामना मिट जांय मनसे, पाप अत्याचार की ।

भावनाएं पूर्ण होवें, यज्ञ से नर-नार की ।।

लाभकारी हों हवन, हर जीव-धारी के लिए ।

वायु जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किए ।।

स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम पथ विस्तार हो ।

"इदम् न मम" का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो ।।

हाथ जोड़ झुकाए मस्तक, वन्दना हम कर रहे ।

नाथ करुणा रूप वरुणा, आपकी सब पर रहे ।।

:: कीर्तन की ध्वनियां ::

[1]

ॐ भू ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ।।

[2]

सबका भला करो भगवान् सब पर दया करो भगवान् ।

सब पर कृपा करो भगवान् सबका सबविधि हो कल्याण ।।

[3]

चिदानन्द सोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

अजं ब्रह्म बीजं विभुं, सत् शिवोऽहम् ।।

[4]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।
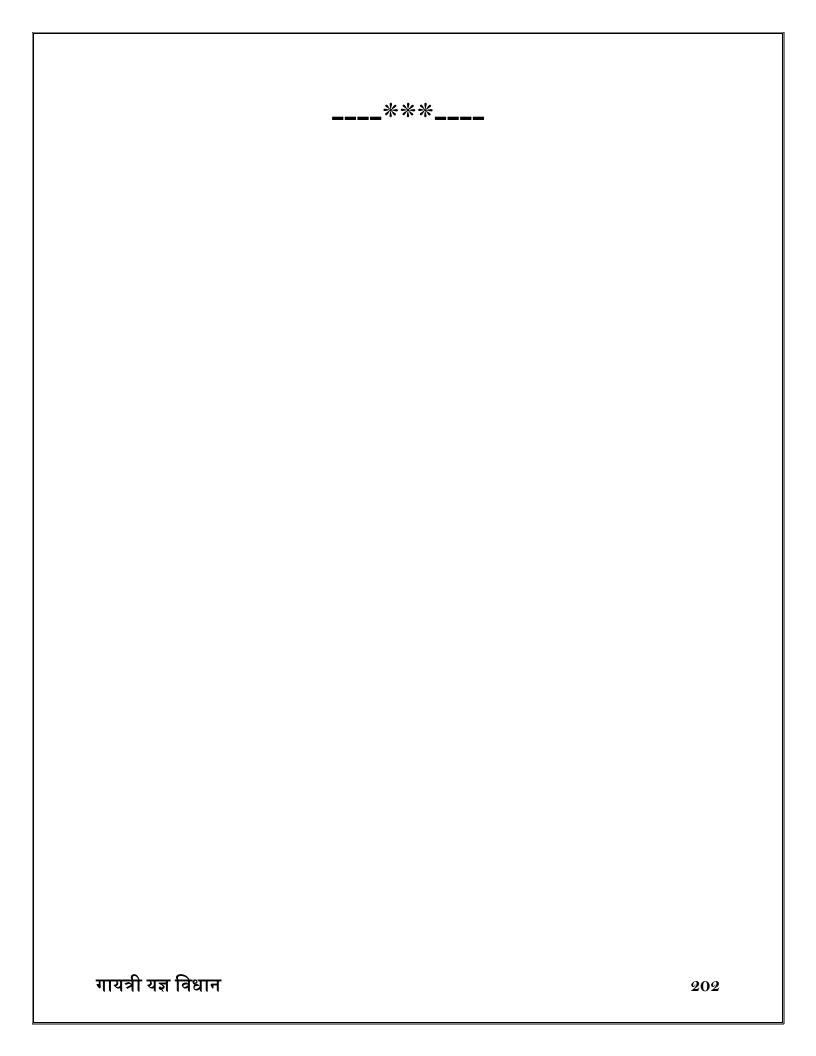
यज्ञ द्वारा अनेक प्रयोजनों की सिद्धि

******

प्राचीन काल में ऋषियों और देवताओं ने जो कुछ पाया था उसमें यज्ञ विद्या का उपयोग सर्वाधिक किया गया था। कहा भी गया है:—

यज्ञेन हि देवा दिवांगता यज्ञेना सुरा
नमानुदन्तः यज्ञे द्विषन्तो मित्रा, भवन्ति,
यज्ञे सर्व प्रतिष्ठितम् तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति ।

अर्थात्—यज्ञ से ही देवताओं ने स्वर्ग का अधिकार प्राप्त किया था। यज्ञ से ही असुर हराये गये। यज्ञ से ही शत्रु मित्र बन जाते हैं। यज्ञ में अनन्त लाभ भरे हुए हैं। यज्ञ की महिमा महान् है।

सकाम यज्ञों के विस्तृत विधान एवं रहस्यमय विज्ञान हैं। आज उनकी पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है। कुछ ग्रन्थ तो मुसलमानी शासन काल में ही नष्ट हो गये। जो बचे हैं उनके मर्मज्ञ विद्वान् याज्ञिक उपलब्ध नहीं होते। जो विद्वान् याज्ञिक रहे वे इतने लोभी रहे कि बिना पुष्कल दक्षिणा के कुछ करते नहीं, साधारण स्थिति के लोग उनकी योग्यता से लाभ न उठा सके। अनेक मतमतान्तरों के फैल जाने और विद्या का अभाव हो जाने से लोग वेद ज्ञान से वंचित हो गये। उनके महत्त्वों एवं रहस्यों तक को भूल गये। न तो यज्ञ प्रेमी यजमान रहे न कर्मनिष्ठ याज्ञिक ऐसे विद्वान रहे जिनको यज्ञ विद्या की समुचित जानकारी एवं अभ्यस्तता हो। ऐसी दशा में आज यज्ञ का वह महत्वपूर्ण विज्ञान जो हमारे पूर्वजों को ज्ञात था, हमें प्राप्त नहीं है।

राजा नहुष यज्ञों द्वारा ही इन्द्रासन का अधिकारी बना था। शृंगी ऋषि ने राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था और उसी के प्रभाव से राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन, उत्पन्न हुए थे। राक्षसों के उत्पातों से दुखी होकर उन्हें समूल नष्ट करने के लिए विश्वामित्र ऋषि ने एक विशाल यज्ञ आयोजन किया था। राक्षस लोग अपनी प्राण रक्षार्थ उस यज्ञ को नष्ट करने के लिए जी-जान से प्रयत्न कर रहे थे। इसी यज्ञ की रक्षा के लिए विश्वामित्र जी राम और लक्ष्मण को ले गये थे। जब लंका पर राम ने चढ़ाई की और राक्षसों को यह लगा कि हमारी पराजय होने जा रही है तो उन्होंने भी एक प्रचण्ड तान्त्रिक यज्ञ रचा था, यदि वह सफल हो जाता तो रावण आदि का उस लड़ाई में पराजित होना सम्भव न होता। वानरों ने उस मख को जान हथेली पर रख

कर विध्वंस किया था। राजा बलि ने इतने यज्ञ किये थे कि वह अपने समय का सर्वोपरि शक्तिवान व्यक्ति बन गया था यदि उसके एक दो यज्ञ और हो जाते तो फिर राक्षस वर्ग की प्रभुता संसार पर अनिश्चित काल के लिए स्थिर हो जाती और विश्व में हाहाकार मच जाता। इस संकट से रक्षा करने के लिए भगवान् को छल तक का आश्रय लेना पड़ा। वामन रूप बनाकर उन्होंने बलि को छला और उसको असफल बनाकर असुरों का प्रभुत्व स्थापित होने से बचाया। राजा जनमेजय ने अपने पिता परीक्षित का बदला नागों से चुकाने के लिए नाग यज्ञ किया था। इसमें मन्त्रों की आकर्षण शक्ति से असंख्यों नाग आकाश मार्ग से खिंचे चले आये थे और यज्ञ कुण्ड में अपने आप आहुति रूप में गिरते थे। इस यज्ञ से अपनी प्राण रक्षा के लिए वासुकी इन्द्रासन से जा लिपटा था, जब इन्द्र भी वासुकी के साथ साथ कुण्ड में गिरने के लिए मन्त्र बल से खिंचने लगा तब कहीं वह नागयज्ञ समाप्त कराया गया।

राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य को मारने के लिए एक ऐसे बलिष्ठ पुत्र की कामना की थी जो उनसे अधिक बलवान तथा शस्त्र विद्या का ज्ञाता हो। ऐसा पुत्र प्राप्त करने के लिए उन्होंने यज्ञ कराया। यज्ञ के अन्त में जब पुत्रोत्पादक पुरोडास **(**खीर**)** बन कर तैयार हुई और जो अत्यन्त स्वल्प काल उसे खाने के लिए नियत था, उस समय दुर्भाग्य वश रानी झूठे मुंह थी। मुहूर्त व्यतीत होता देख यज्ञ कर्त्ता ने उस खीर को यज्ञकुण्ड में ही पटक दिया। उसी समय धृष्टद्युम्न और द्रौपदी यज्ञकुण्ड में से निकले और अन्त में उन्हीं से द्रोणाचार्य की मृत्यु हुई।

इस प्रकार की असंख्यों घटनाएं प्रत्येक इतिहास पुराण में भरी पड़ी हैं। स्वयं भगवान ने अपने चौबीस अवतारों में एक अवतार "यज्ञ पुरुष" का धारण किया है। यज्ञों की महिमा का कोई अन्त नहीं। इस युग में जिस प्रकार विभिन्न प्रकार की शक्तियां भाप, कोयला, अग्नि, पेट्रोल, बिजली, जल, पवन, एटम आदि के द्वारा उत्पन्न की जाती हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में यज्ञ कुण्डों और वेदियों में अनेकों रहस्यमय मन्त्रों, एवं विधानों द्वारा उत्पन्न की जाती थीं। इस समय अनेक प्रकार की मशीनें अनेक कार्य करती हैं उस समय मन्त्रों और यज्ञों के संयोग से ऐसी शक्तियों का आविर्भाव होता था, जिनमें बिना किसी मशीन के मनुष्य सब कुछ कर सकता था, इसको ऋद्धि सिद्धियां कहते थे। देवता और असुर दोनों ही दल इन शक्तियों को अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

जिस प्रकार प्राचीन काल के विशाल भवनों के खंडहर अब भी जहां तहां मिलते हैं और उसी से उस भूतकाल की महत्ता का अनुमान लगता है। उसी प्रकार यज्ञ विद्या की अस्त व्यस्त जानकारियां जहां तहां क्षत विक्षत रूप में प्राप्त होती हैं। अनेक प्रकार के अलग अलग विधान मिलकर एक स्थान में एकत्रित हो गये हैं और गाय घोड़ा के अंगों की तरह एक विलक्षण स्थिति

में खड़े हुए हैं। आज ऐसी ही अस्त व्यस्त यज्ञ पद्धतियां दृष्टिगोचर होती हैं इनका संशोधन करना, और यथावत उन विशिष्ट पद्धतियों को अलग अलग करके उसकी सर्वांगपूर्ण स्थापना भूतकाल की भांति करना एक ऐसा कार्य है जो प्राचीन भारतीय विद्याओं की गुप्त शक्तियों के अन्वेषण में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को पूरी तत्परता के साथ करनी है। इस शोध की जिम्मेदारी ऐसी है जिसे पूरा करके ही हम ऋषि ऋण से उऋण हो सकते हैं।

जिस प्रकार गायत्री विद्या की सर्वांग पूर्ण शोध के लिए पिछले तीस वर्षों से निरन्तर कार्य किया गया है, उसी प्रकार अब यज्ञ विद्या की शोध एवं सुव्यवस्था का कार्य हाथ में लेना है। इस विद्या की समुचित खोज होने पर भारतीय सूक्ष्म चैतन्य विज्ञान, पाश्चात्य स्थूल जड़ विज्ञान की तुलना में अपना महान गौरव पुनः प्रतिष्ठापित कर सकता है। यज्ञ विद्या की सहायता से मानव जीवन के अनेकों कष्ट एवं अभाव दूर हो सकते हैं।

वेद मन्त्रों में तीन रहस्य हैं (1) उनकी भाषा का शिक्षात्मक स्थूल अर्थ (2) उनके उच्चारण से उत्पन्न होने वाली शब्द शक्ति का सूक्ष्म प्रभाव (3) उनमें सन्निहित शक्ति का यज्ञ आदि विशेष विधि विधानों के साथ उपयोग होने से उत्पन्न होने वाली प्रचण्ड शक्ति। आज कल लोग केवल मन्त्रों की शब्दावली का शिक्षात्मक अर्थ ही समझते हैं किन्तु वस्तुतः प्रत्येक वेद मन्त्र अपने गर्भ में महान विज्ञानमयी प्रचण्ड शक्तियों का भण्डार छिपाये बैठा है। जो तत्व दर्शी ऋषि इन मन्त्रों की शक्ति से परिचित हैं वे आगम और निगम सबके पार दर्शी हो जाते हैं।

विविध प्रकार के यज्ञ विभिन्न वेद मन्त्रों से होते हैं। उनका विधान ब्राह्मण ग्रन्थों तथा सूत्र ग्रन्थों में दिया हुआ है। अनुभवी याज्ञिक लोग परम्परागत ज्ञान के आधार पर भी उन विधानों को जानते हैं। ऐसे विधानों का वर्णन इन पंक्तियों में नहीं हो रहा है। उनकी पद्धतियां एवं जानकारियां तो धीरे धीरे उपस्थित की जाती रहेंगी। इस समय तो गायत्री महामन्त्र तथा उससे सम्बन्धित देव गायत्रियों के द्वारा होने वाले कुछ हवनों का उल्लेख किया जा रहा है। गायत्री महामन्त्र के अन्तर्गत 24 देव शक्तियों की अन्तः—गायत्री हैं। इन अन्तः गायत्रियों का भी उपयोग होता है।

देव गायत्रियों द्वारा सकाम यज्ञों का सर्वांग पूर्ण सुनिश्चित विधान, जब तक उपलब्ध न हो तब तक अपूर्ण प्रयोगों से भी बहुत हद तक लाभ उठाया जा सकता है। नीचे कुछ ऐसे ही प्रयोग दिये जा रहे हैं जो यद्यपि अपूर्ण हैं फिर भी इनके द्वारा अनेक बार आशाजनक परिणाम उपस्थित होते देखे गये हैं।

देव गायत्रियों को स्वाहाकार के साथ कुछ विशेष प्रयोजनों में अमुक हवन सामग्रियों तथा अमुक समिधाओं का वर्णन है। यह प्रयोग बहुत सरल दीखते हैं। पर वस्तुतः यह उतने सरल नहीं हैं। किस व्यक्ति को, किस प्रयोजन के लिए, किस स्थिति में, होम करना है उसे उसी के अनुसार अमुक मुहूर्त में, अमुक नियम पालन करते हुए, अमुक मन्त्रों के द्वारा अमुक वृक्ष के अमुक भाग की, अमुक प्रकार की समिधाएं लानी होती हैं, और उनको विशेष मार्जनों सिंचनों, अभिषेकों के साथ परिशोधन, शक्ति वर्धक, प्रमाणीकरण किया जाता है। तब वे समिधाएं अपना प्रयोजन भली प्रकार पूर्ण करती हैं। इसी प्रकार जो हवन सामग्री इसमें लिखी हुई हैं वे देखने में बहुत सुलभ हैं पर उनके पौधों को बोने, सींचने, तोड़ने, परिमार्जित करने, सुखाने आदि के विशेष विधान हैं। दूध, दही, घृत, आदि का जहां वर्णन है, वहां गौ, भैंस, बकरी आदि अमुक जाति के पशु को अमुक प्रकार का ही आहार कराना, अमुक स्थानों का जल पिलाना, अमुक मन्त्रों से दूध दुहना, उसे अमुक प्रकार की अग्नि से गरम करना, अमुक वस्तु के बने हुए पात्र में दही जमाना, अमुक काष्ट की रई से अमुक मन्त्र बोलते हुए दधि मंथन करके घी निकालना आदि का विस्तृत विधान छिपा हुआ है। हवन करने के दिनों में जो तपश्चर्याएं करनी पड़ती हैं उनके नियम भी अलग अलग हैं। इन सब विधानों के द्वारा ये साधारण समिधाएं हवन सामग्रियां एवं विधियां भी विशिष्ट महत्व पूर्ण बन जाती हैं। उन विधियों एवं नियमों में देश, काल, पात्र के अनुसार कुछ हेर फेर भी करने पड़ते हैं। इस प्रकार की जानकारियां धीरे धीरे संग्रह हो रही हैं और समयानुसार उनको छापा भी जाएगा।

जब तक वैसी सर्वांग पूर्ण जानकारी उपलब्ध न हो तब तक साधारण रीति से भी नीचे लिखी हुई वस्तुएं निर्धारित देवगायत्रियों के साथ हवन किये जायं तो भी उसका परिणाम निश्चित रूप से अच्छा ही होगा। हानि की तो इसमें कोई सम्भावना है ही नहीं।

:: आत्म बल बढ़ाने के लिए ::

ब्रह्मतेज, आत्मबल, प्रतिभा, प्रभाव शालीनता आदि की अभिवृद्धि एवं पाप वृत्तियों को नष्ट करने के लिए 'अग्नि गायत्री' का प्रयोग किया जाता है। वेदमाता गायत्री की भांति ही विभिन्न देवताओं की 24 गायत्री और भी हैं। इनके गुण और प्रभाव अलग अलग हैं। अग्नि में पड़कर जैसे साधारण वस्तुएं भी अग्नि रूप हो जाती हैं, उसी प्रकार अग्नि गायत्री का प्रयोग करने से मनुष्य की अन्तः भूमिका अग्नि वर्ण हो जाती है, उसमें ब्रह्मतेज भर जाता है। इस अग्नि में भीतर के अनेक दुरित तथा पूर्वक संचित अनेक कुसंस्कार भी जल नष्ट हो जाते हैं। अग्नि गायत्री का मन्त्र यह है—

ॐ भूर्भुवः स्वः महज्वालाय विद्महे । अग्नि देवाय धीमहि । तन्नः अग्नि प्रचोदयात् ।

इस अग्नि गायत्री के साथ विभिन्न हव्य पदार्थों के साथ होम करने से उनके जो परिणाम होते हैं उनका विवरण यह है:—

पलाशीभिरवाप्नोति समिद्धिर्ब्रह्म वर्चसम् ।
पलाश कुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्ट मवाप्नुयात् ।।

पलास की समिधाओं से हवन करने पर ब्रह्म तेज की अभिवृद्धि होती है और पलाश के कुसुमों से हवन करने पर सभी इष्टों की सिद्धि होती है।

यवानां लक्ष होमेन घृताक्तानां हुताशने ।
सर्व काम समृद्धात्मा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।।

यवों में घी मिलाकर एक लाख बार अग्नि में आहुति देने से सब कर्मों की सिद्धि होती है तथा परा सिद्धि प्राप्त होती है।

ब्रह्म वर्चस कामास्तु पयसा जुहुयात्तथा ।
घृत प्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सु समाहितः ।।

ब्रह्म तेज की कामना करने वाला व्यक्ति सावधानी के साथ घृत युक्त तिलों से और घी से हवन करे।

गायत्र्ययुत होमाच्च सर्व पापैः प्रमुच्यते ।
पापात्मा लक्ष होमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ।।

एक लाख आहुतियों से गायत्री द्वारा हवन करने से पापी मनुष्य भी बड़े पापों से छूट जाता है।

चन्दन द्वय संयुक्तं कर्पूरं तण्डुलं यवम् ।
लवंग सुफलं चाज्यं सिता चाम्रस्य दारुकैः ।
अयं न्यून विधिः प्रोक्तो गायत्र्याः प्रीतिकारकः ।

दोनों चन्दन, कपूर, तण्डुल, यव, लवंग, नारिकेल, आज्य, मिश्री, आम की लकड़ी यह वस्तुएं गायत्री से प्रीति बढ़ाने वाली हैं।

क्षीरोदन तिलान्दूर्वा क्षीरद्रुम समिद्वारान् ।
प्रथक सहस्र त्रितयं जुहुयान्मन्त्र सिद्धये ।।

प्रणव युक्त 24 लाख गायत्री जप करके जप सिद्धि के लिए दूध, भात, तिल, दूर्वा तथा बरगद, गूलर, पीपल आदि दूध वाले वृक्षों की समिधाओं से तीन हजार हवन करें।

तत्व संख्या सहस्राणि मन्त्र विज्जुत्यात्तिलैः ।

सर्व पापं विनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विन्दति ।।

तिलों से 24 हजार आहुति देने से होता समस्त पापों से छूट जाता है और दीर्घ जीवन पाता है।

उपरोक्त हव्य सामग्रियों तथा समिधाओं में अग्नि तत्व विशेष हैं। इनकी आहुतियां छोड़ने से निकटवर्ती वातावरण में तेज, उत्साह, स्फूर्ति एवं प्रेरणा का संचार होता है। आत्मिक तत्व, गुण एवं बल जागृत होकर हवन करने वाले में ब्रह्मतेज बढ़ाते हैं।

आत्मा और शरीर में ऊष्मा अग्नि तत्व बढ़ाने के लिए अग्नि गायत्री की उपासना उन विधि विधानों के साथ की जाती है जो अग्निमय वातावरण उत्पन्न करते हैं। इसके द्वारा भीतर और बाहर प्रत्यक्ष प्रकाशवान तेज झलकने लगता है।

निरोगता, बलिष्ठता और दीर्घायु के लिए—

स्वास्थ्य का केन्द्र सूर्य है। सूर्य में रोग निवारण प्रचण्ड शक्ति मौजूद है। इसका उपयोग करने से नाना प्रकार के कष्ट साध्य रोग दूर हो सकते हैं और शारीरिक कष्टों से छुटकारा पाकर मनुष्य निरोगता पूर्वक दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। ऐसे प्रयोजनों में सूर्य गायत्री का उपयोग करना ठीक है।

सन्तान उत्पादन तत्व सूर्य से आते हैं। कुन्ती ने कुमारी अवस्था में सूर्य का आवाहन करके कर्ण को जन्म दिया था। सन्तान रहित, मृतवत्सा, गर्भपात होते रहने वाली, प्रसव में अत्यन्त कष्ट सहने वाली तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी अवस्था वाली महिलाओं के लिए सूर्य गायत्री का उपयोग विशेष फलप्रद होता है।

जो वनस्पति औषधियां जिस रोग के लिए आयुर्वेद ग्रंथों में गुण कारक मानी गई हैं उन्हें घृत एवं शर्करा में मिलाकर सूर्य गायत्री के साथ रोगी के निकट हवन करे तो साधारण औषधि चिकित्सा की अपेक्षा उसका परिणाम अधिक उत्तम होता है। औषधि, सेवन के साथ साथ उन्हीं वनस्पति औषधियों का हवन भी होता रहे तो दूना लाभ होता है। किस रोग में किन औषधियों का हवन उपयुक्त है इसका उल्लेख इस लेख के अन्त में करेंगे।

सूर्य गायत्री का मन्त्र यह है:—

ॐ भूर्भुवः स्वः भास्कराय विद्महे, दिवाकराय धीमहि, तन्नः सूर्यो प्रचोदयात् ।

सूर्य गायत्री के साथ जिन वस्तुओं के हवन से जो लाभ होता है उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है:—

स प्ररोहाभिराद्राभि र्हुत्वा आयु समाप्नुयात् ।

सामद्भिः क्षीर वृक्षस्यर्हुत्वायुषमवाप्नुयात् ।।

पलास की समिधाओं से होम करने पर आयु की वृद्धि होती है। क्षीर-वृक्षों की समिधा से हवन करने से भी आयु बढ़ती है।

व्रीहीणां च शतं हुत्वा दीघचायुवामुयात् ।

यवों की सौ आहुतियां नित्य देने से दीर्घ जीवन मिलता है।

सुवर्ण कमलं हुत्वां शतमायुरवामुयात् ।

दूर्वाभिपयसा वापि मधुना सपिषापि वा ।

शतं शतं च सप्ताहमयमृत्युं व्यपोहति ।

शमी समिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा ।

सुवर्ण कमल के होम से मनुष्य शत जीवी होता है। दूर्वा, दुग्ध, घृत, की सौ सौ आहुतियां देते रहने से अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता। शमी की समिधाओं से तथा दूध और घृत से हवन करने पर भी अपमृत्यु का भय जाता रहता है।

आयुषे साज्य हविषा केवले नाथ सर्पिषा ।

दूर्वात्रिकैस्तिलैमन्त्री जुहुयात्रि सहस्रकम् ।

दीर्घ जीवन की इच्छा करने वाला मनुष्य घृत, अथवा घी युक्त खीर, दूर्वा एवं तिलों से तीन हजार आहुतियां दे।

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्यु व्यपोहति ।

न्यग्रोध समिधो हत्वा पायसं होमयेत्ततः ।

वट वृक्ष की समिधाओं से प्रतिदिन सौ आहुतियां देने से मृत्यु का भय टल जाता है।

रक्ताना तण्डुलानां च घृताक्तानां हुताशने ।

हुत्वा बल मवाप्नोति शत्रुभिर्नस जायते ।

लाल चावलों को घी में मिलाकर अग्नि में हवन करने से बल की प्राप्ति होती है और शारीरिक शत्रुओं **(**रोगों**)** का क्षय होता है।

हुत्वा करवीराणि रक्तानि ज्वालमेज्वरम् ।

लाल कन्नेर के फूलों से हवन करने पर ज्वर चला जाता है।

आमुस्य जुहुयात्पत्रैः पयोक्तैः ज्वर शान्तये ।

ज्वर को शान्त करने के लिये दूध में भिगोकर आम के पत्तों का हवन करे।

वचभिः पयसिक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ।
मधु त्रितय होमेन राज यक्ष्मा विनश्यति ।

दूध में बच को अभिषिक्त करके हवन करने से क्षय रोग दूर होता है। दूध, दही, घी इन तीनों को होमने से भी राजयक्ष्मा नष्ट हो जाती है।

लताः वर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयात् द्विजः ।
सोमे सूर्यण संयुक्ते प्रयोक्ताः क्षय शान्तये ।।

अमावश्या के दिन सामलता की डाली से होम करने पर क्षय दूर होता है।

कुसुमैः शङ्ख वृक्ष्ज्ञस्य हुत्वा कुष्टं विनाशयेत् ।
अपस्मार विनाशस्तादयामार्गस्य तण्डुलैः ।।

शङ्ख वृक्ष के पुष्पों से यदि होम किया जाय तो कुष्ट रोग अच्छा होता है। अणमार्ग के बीजों से हवन करने पर अपस्मार **(**मृगी**)** रोग अच्छा होता है।

प्रियंगु पायसाज्यै श्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा ।।

प्रियंगु दूध और घी से होम करने पर सुसंतति प्राप्त होती है।

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होम पूर्वकम् ।
भोजयत्त दृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात् ।

सूर्य नारायण को होम पूर्वक खीर अर्पण करके ऋतु स्नान की हुई स्त्री को उसको शेषांश खिलाने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

गर्भपातादि प्रदराश्चान्ये स्त्रीणां महारुजः ।
नाशमेष्यन्तिते सर्वे मृतवत्सादि दुःखदाः ।।

गर्भपात प्रदर, मृत सन्तान की उत्पत्ति आदि सर्व रोग नष्ट होते हैं।

क्षीर वृक्ष समिद्धोमादुन्मादोऽपिविनश्यति ।
औदुम्बर समिद्धोमादति मेहः क्षयं ब्रजेत् ।।

क्षीर वृक्ष की समिधाओं से हवन करने पर उन्माद रोग नहीं रहता। औदुम्बर की समिधाओं से हवन किया जाय तो प्रमेह नष्ट होता है।

प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुर सेनवा ।
मधुत्रितय होमेन नयेच्छान्तिं मसूरिकाम् ।।

प्रमेह की शान्ति के लिए मधु अथवा ईख के रस से हवन करना चाहिए। मसूरिका **(**चेचक**)** का निवारण करने के लिए मधुत्रितय **(**दूध, दही, घी**)** होमना चाहिए।

कपिला सविषा हुत्वा नयेच्छान्ति मसूरिकां ।

गौ के घी से हवन करने पर चेचक दूर होती है।

उदुम्बर वटाश्वत्थैर्गोगजाश्वामयं हरेत् ।

गाय के सभी रोगों की शान्ति के लिए गूलर, हाथी के रोगों के निवारण के लिए वट और घोड़े के रोग दूर करने के लिए पीपल की समिधाओं से हवन करना चाहिए।

उद्वेग शान्ति के लिए:—

चन्द्रमा को 'रसाधिप' कहा गया है। उससे पृथ्वी पर रस और वनस्पतियों की उत्पत्ति होती है। वर्षा के लिए वरुण और पर्जन्य को प्रेरित करना भी चन्द्रमा का काम है। सन्तान की उत्पत्ति, उसकी शोभा और कुरूपता का भी चन्द्र शक्ति से सम्बन्ध है जिस बालक को जितना चन्द्रतत्व प्राप्त हो जाता है वह उतना ही सुन्दर, सौम्य, तथा शान्त प्रकृति का होता है। अन्न, पशु, प्रजा, सन्तान, वनस्पति, वृक्ष, वर्षा आदि के लिए चन्द्रमा की आराधना फलवती होती है।

मानसिक उत्तेजना, क्रोध, अन्तर्दाह, शरीर और मनमें विषों का संचय आदि उष्णताओं का चन्द्र गायत्री से समाधान होता है। अन्तरात्मा की शान्ति, चित्त की एकाग्रता के लिए भी उसका विशेष प्रभाव होता है। चन्द्र गायत्री यह है:—

ॐ भूर्भुवः स्वः क्षीर पुत्राय विद्महे, अमृत तत्वाय धीमहि, तन्नः चन्द्रः प्रचोदयात् ।

इस मन्त्र द्वारा हवन करने से क्या परिणाम होते हैं इसका वितरण इस प्रकार है:—

शान्ति कामस्तु जुहुयात् सावित्री मक्ष्तैः शुचिः ।

शान्ति की कामना करने वाले के अक्षतों के साथ गायत्री से हवन करना चाहिये।

गवां क्षीरं प्रदीतेऽग्नौ जुह्वतस्तत्प्रशाम्यति ।

गाय के दूध का अग्नि में हवन करने से शान्ति प्राप्त होती है।

कोटि होमं तु यो राजा कारयेद्विधि पूर्वकम् ।

न तस्य मानसो दाह इह लोके परत्र च ।।

जो राजा एक करोड़ आहुतियों से विधि पूर्वक हवन करता है उसका चित्त स्थिर और शान्त रहता है। उसे मानसिक दाह इस लोक और परलोक में दुख नहीं देते।

संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वे त्सस्य च ।

पावसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टि माप्नुयात् ।

वेत के वृक्ष के फूल अथवा पत्तों में मिलाकर खीर से हवन करने पर वर्षा होती है।

नाभि दघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टि माप्नुयात् ।
जले भस्म शतं हुत्वा महावृष्टि निवारयेत् ।।

नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर एक सप्ताह तक गायत्री जपने से वर्षा होती है और जल में सौ बार हवन करने से अतिवृष्टि हो रही हो तो उसका निवारण होता है।

करीष चूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमन्नाप्नुयात् ।

बछड़े के गोबर का होम करने में पशुओं की तथा अन्नों की प्राप्ति होती है।

अन्नं हुत्वाप्नु यादन्नं ब्राहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ।

अन्न का हवन करने से अन्न प्रचुर मात्रा में उपजता है। यवों का होम करने से यव खूब उत्पन्न होते हैं।

तदेवह्यनले हुत्वा प्राप्नोति बहुत साधनम् ।
अन्नादि हवनान्नित्य मन्नाद्यं च भवेत्सदा ।

अन्नों का नित्य हवन करने से पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में अन्न पैदा होता है।

रक्त चन्दन मिश्रं तु सघृतं हव्य वाहने ।
हुत्वा गोमय प्राप्नोति सहस्रं गोमयं द्विजः ।

रक्त चन्दन को घी में मिलाकर अग्नि में हजार बार आहुति देने से पशुओं से घी, दूध और गोबर भले प्रकार प्राप्त होता है।

पारिवारिक क्लेश, द्वेष, वैमनस्य आदि को शान्त करके शीतल मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करने के लिए भी चन्द्र गायत्री विशेष फल प्रद होती है।

सिद्धि और सफलता के लिए:—

असफलता, निराशा, चिन्ता, और खिन्नता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करके सफलता का आशाजनक वातावरण उत्पन्न करने की स्थिति उत्पन्न करने में सरस्वती शक्ति का विशेष महत्व है। बुद्धि, वृद्धि, अभिष्ट वस्तुओं की प्राप्ति, सुख शान्ति, परीक्षा में उत्तीर्णता आदि के लिए सरस्वती गायत्री का प्रयोग किया जाता है। मन्त्रय है:—

ॐ सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्म पुत्र्यै धीमहि । तन्ना देवी प्रचोदयात् ।

इस मन्त्र के साथ किस वस्तुओं के हवन का क्या परिणाम होता है, इसका विवरण इस प्रकार है।

पयोहुत्वाप्नु यान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् ।

अभिमंत्रयपि वेद् ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात् ।।

दूध का हवन करने से तथा घृत की आहुतियां देने से बुद्धि वृद्धि होती है। मन्त्रोच्चारण करते हुए ब्रह्मी के रस का पान करने से चिर ग्राहिणी बुद्धि होती है।

घृतस्याहुति लक्षेण सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
पञ्च गव्याशनो लक्षं जपेज्जाति स्मृतिर्भवेत् ।।

एक लाख घी की आहुति देने से सब कामों की सिद्धि होती है। पञ्चगव्य पीकर एक लाख जप करने से स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है।

अश्वत्थ समिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नयात् ।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ।

पीपल की समिधाओं से हवन करने पर युद्ध में विजय प्राप्त होती है। आक की समिधाओं से हवन करने पर सर्वत्र ही विजय होती है।

तिलानां लक्ष होमेन घृताक्तानां हताशने ।
सर्वकाम समृद्धात्मा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।

घी मिला कर तिलों से एक लाख आहुतियों का हवन करने से सब कामों की सफलता होती है तथा परम सिद्धि प्राप्त होती है।

गुड्च्याः पर्व विच्छिन्नः पयोक्ताजुहुयात् द्विजः ।
एवं मृत्युञ्जयो होमः सर्व व्याधि विनाशनः ।

जो द्विज गिलोय की समिधाओं को दूध में डुबोकर हवन करता है, वह सम्पूर्ण बाधाओं से विनिर्मुक्त होता है।

शतं शतं च सप्ताहं हुत्वाश्रिय मवाप्नुयात् ।
लाजैस्तु मधुरोपेतैहो मे कन्यामवाप्नुयात् ।
अनेन विधिना कन्या वरमाप्नाति वांछितम् ।

मधुत्रय **(**दूध, दही, घी**)** मिला कर लाजा **(**खील**)** से सात दिन तक हवन करने से वर को सुन्दर कन्या प्राप्त होती है और इसी विधि से करने पर कन्या को वर प्राप्त होता है।

हुतादेवी विशेषेण सर्व काम प्रदायिनी ।

गायत्री की सरस्वती शक्ति हवन करने से सर्व कामनाएँ पूर्ण करती है।

सम्पत्ति और समृद्धि के लिए:—

सांसारिक वस्तुओं के अभाव को मिटाने और जीवनोपयोगी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए लक्ष्मी गायत्री का प्रयोग होता है। महा गायत्री की सतोगुणी शक्ति को सरस्वती, रजोगुणी शक्ति को लक्ष्मी और तमोगुणी शक्ति को दुर्गा कहते हैं। लक्ष्मी गायत्री का उपयोग अभाव, दारिद्र, आदि असुविधाजनक परिस्थितियों को दूर करने के लिए किया जाता है। लक्ष्मी गायत्री का मन्त्र यह है:—

ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णु प्रियायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात् ।

इस मन्त्र का हवन किस वस्तुओं से करने पर क्या परिणाम होता है इसका विवरण इस प्रकार है—

अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मी पुष्पैर्हुत्वामु यात् द्विजः ।
श्री कामो जुहुयात्पद्मैः रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ।।

लक्ष्मी की आकांक्षा वाले मनुष्य को गायत्री के साथ रक्त कमल के पुष्पों से हवन करना चाहिए। इससे शोभा, पुष्टि और कीर्ति भी मिलती है।

हुत्वा श्रियमवाप्नोति जाती पुष्पैर्नवैः शुभः ।
शालि तंडुल होमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ।।

जाती के नवीन पुष्पों के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शालि चावलों का हवन भी लक्ष्मी प्राप्त कराने वाला है।

श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य सकलेरपि ।
समिद्भिः विल्व वृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ।

विल्व वृक्ष की जड़ की समिधाओं को खीर तथा घी के साथ हवन करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है।

हुत्वा वेतस पत्राणि घृताक्तानि हुताशने ।
लक्षाधिपस्य पदवीं सार्वभौमं न संशयः ।।

वेत पत्रों को घी में मिलाकर हवन करने से लक्ष्मी पति की पदवी मिलती है।

त्रिरात्रि पोषितः सम्यग् घृतं हुत्वा सहस्रशः ।
सहस्रं लाभ माप्नोति हुत्वागनौ खदिरै धनम् ।

तीन रात उपवास करके अच्छी प्रकार से एक हजार घी की आहुति खदिर की समिधाओं से देने पर धन प्राप्त होता है।

पलाशैः समिधैश्चैव घृताक्तानां हुताशने ।
सहस्र लाभमाप्नोति राहु सूर्य समागमे ।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर पलाश की समिधाएं घृत के साथ हवन करने से धन लाभ होता है।

हुत्वातु खदिरं वन्हौ घृताक्तं रक्त चन्दनम् ।
सहस्रं हेममाप्नोति राहुचन्द्र समागमे ।।

चन्द्र ग्रहण के अवसर खदिर तथा रक्त चन्दन को घृत समेत हवन करने से धन प्राप्त होता है।

श्री कामस्तु तथापद्मै विल्वैः काञ्चन कामुकः ।

काञ्चन और कामिनी की इच्छा करने वाला कमल पुष्प या बेल पत्रों के द्वारा हवन करे।

रक्तोत्पलं शतं हुत्वा सप्ताह्नं हेम प्राप्नुयात् ।
लाल कमल के पुष्पों के हवन से धन प्राप्त होता है।
शमी विल्व पलाशानामर्कस्य तु विशेषतः ।
पुष्पाणां समिधश्चैव हुत्वा हेम मवाप्नुयात् ।

शमी, विल्व, पलाश की समिधाएं विशेषतः आक के पुष्प उनका हवन करने से धन लाभ होता है।

अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तै र्जुहुयादयुतं ततः ।
महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षटमासान्न संशय ।।

लाल कमल और शहद की दस हजार आहुति देने से छह महीने में धन लाभ होता है।

अनिष्ट निवारण के लिए:—

नाना प्रकार के संकट मनुष्य जीवन में आते रहते हैं। शत्रुओं का आक्रमण, षडयन्त्र, द्वेष, मुकदमा, सर्प आदि का भय, चोर, डाकूल गुण्डों का आतंक, युद्ध, दैवी प्रकोप, उपद्रव, गृह कलह, विद्रोह आदि की घटनाएं मनमें विक्षोभ उत्पन्न करती हैं। इन विपरीत परिस्थितियों को समाप्त करने के लिए गायत्री महामंत्री की तमोगुणी शक्ति दुर्गा का प्रयोग किया जाता है। यह शक्ति मनुष्य का आत्मिक विकाश तो नहीं करती पर असुविधाओं का निवारण करने में सहायक अवश्य होती है। कई साधक तांत्रिक वाममार्गी उपचारों से इसी दुर्गा शक्ति द्वारा दूसरों का अनिष्ट भी करते हैं पर यह उचित नहीं। अपनी धर्मयुक्त रक्षा के लिए दुर्गा शक्ति की सामयिक उपचार करना उचित है।

दुर्गा गायत्री का मन्त्र यह है:—

ॐ गिरजायै विद्महे, शिवप्रियायै धीमहि । तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ।

इस मन्त्र का उपचार प्रयोग इस प्रकार होते है।

गायत्री चिन्तयेत्तत्र दीप्तानल समप्रभाम् ।
घातयन्ती त्रिशूलेन केशेष्वाक्षिप्य वैरिणम् ।
एवं विधा च गायत्री जप्तव्या राज सत्तम ।
होतव्या च यथा शक्त्या सर्व काम समृद्धिदा ।।

प्रज्वलित अग्नि के समान आभा वाली गायत्री का चिन्तन करता हुआ ऐसा ध्यान करे कि शत्रु के केशों को पकड़ कर अपने त्रिशूल से उनका नाश कर रही है। इसी ध्यान में जप और हवन करने से शत्रुओं का नाश होता है।

गो घृतेन सहस्रेण लोध्रेण जुहुयाद्यदि ।
चौराग्नि मारुतोत्थानि भयानि न भवन्ति वै ।।

लोध को गौ घृत के साथ एक हजार आहुति देने से चोर, अग्नि, वायु आदि के उपद्रवों का भय दूर होता है।

अश्वत्थ समिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात् ।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ।

पीपल की समिधाओं के हवन से युद्ध में विजय प्राप्त होती है। आक की समिधाओं से हवन करने से सर्वत्र ही विजय होती है।

सौवर्णे राजते वापि पात्र ताम्रमयेऽपिवा ।
क्षीर वृक्ष मयं वापि निवृणे मृन्मयेऽपिव ।
सहस्त्रं पञ्च गव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनिले ।
क्षीर वृक्ष मयैः काष्ठैः शेषं सम्पादयेत्छनैः ।
अभिचार समुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति ।।

सुवर्ण चांदी, तांबा के बने अथवा दूध वाले वृक्षों की लकड़ी से बने पात्र में पंचगव्य रखकर दुग्ध वाले वृक्षों की लकड़ियों से हवन करे। इस प्रकार अभिचार द्वारा उत्पन्न कृत्या **(**मारण प्रयोग की बात**)** शान्त होती है।

एवं यः कुरुते राजा लक्ष मोहं यत व्रतः ।
न तस्य शत्रवः संख्ये अग्रे तिष्ठन्ति कर्हिचित् ।

जो व्रत पूर्वक गायत्री के एक लक्ष होम करता है उसके शत्रु युद्ध भूमि में उसके आगे कदापि नहीं ठहरते।

धत्तूर विष वृक्षाक्ष भूरहोत्थान्समिद्वारान ।
राजी तैलेन संलिप्तान् प्रथक्सप्त सहस्रकम् ।
जुहुयात् संयतो मन्यी रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।

धतूरा, कुचिला, तथा सरसों के तेल से युक्त समिधाओं से प्रथम सात हजार आहुति जितेन्द्रिय होकर दे तो शत्रु यमपुर को पहुंच जाता है।

सप्तरात्रं प्रजुहुयात् सिद्धार्थ स्नेह लौलितैः ।
आर्द्रवस्त्रो विष्टि काले मरीचैर्मनुनामुना ।
निगृह्यते ज्वरेणारि प्रलयाग्नि समेन सः ।

सात रात तक सरसों के तेल से युक्त मिरचों द्वारा हवन करे। गीला वस्त्र धारण करके वर्षा काल में यह प्रयोग करे ऐसा करने से शत्रु को प्रलयाग्नि सदृश्य ज्वर हो जाता है।

आहरे द्रात्रिषु बलिं चरुणा सर्व सिद्धिदा ।
कृत्या रोग भय द्रोह भूतादिन्नात्र संशयः ।

आधी रात्रि में चरु बना कर सिद्ध दायक बलि प्रदान करे ऐसा करने से रोग, भय, द्रोह, तथा भूत आदि का भय नहीं रहता।

दुर्गा का आधार लेकर ही दूसरों को हानि पहुंचाने वाले तांत्रिक हवन किये जाते हैं। ऐसे प्रयोगों के कर्ता का भी कालान्तर में अनिष्ट ही होता है। इसलिए ऐसे प्रयोगों के सम्बन्ध में उपेक्षा करना ही उचित है।

शमी समिद्भिः शाम्यति भूत रोग ग्रहादयः ।

शमी की समिधाओं से हवन करने पर भूत रोग एवं ग्रहादि की शान्ति होती है।

आर्द्राभिः क्षीर वृक्षस्य समिद्भिः जुहुयात् द्विजः
जुहुयाच्छकलैर्वापि भूत रोगादि शान्तये ।

दूध वाले वृक्षों की गीली समिधाओं से हवन करने पर बुरी ग्रह दशा की शान्ति होती है। भूत रोग आदि की शान्ति के लिए सम्पूर्ण प्रकार की समिधाओं से हवन करना चाहिये।

अभिमन्त्र्य शतं भस्मन्मसद् भूतादि शान्तये ।
शिरसा धारयेद् भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ।

हवन की भस्म को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके लगाने से भूत प्रेत की शान्ति होती है। भूत रोग आदि की शान्ति के लिए सम्पूर्ण प्रकार की समिधाओं से हवन करना चाहिये।

अभिमन्त्र्य शतं भस्मन्मसद् भूतादि शान्तये ।
शिरसा धारयेद् भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ।

हवन की भस्म को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके लगाने से भूत प्रेत की शान्ति होती है।

भूत प्रेत पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि के उपद्रवों से ग्रस्त रोगियों के लिए दुर्गा गायत्री का प्रयोग करने से रोगी का उन दुष्टों से सरलता पूर्वक पीछा छूट जाता है।

इन पंक्तियों में कुछ थोड़े से ही प्रयोग वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त गायत्री महामंत्र एवं उसके अन्तर्गत 24 गायत्रियों के प्रयोग द्वारा अनेकों प्रकार के हवन होते हैं। वेद मन्त्रों एवं तांत्रिक कौल मन्त्रों के द्वारा विस्तृत विधान वाले स्वतन्त्र यज्ञ इनसे प्रथक हैं। इन उपरोक्त प्रयोगों में दूध वाले वृक्षों की समिधाओं का तथा मधुत्रय (दूध दही घृत) की आहुतियों का प्रयोग प्रायः सभी प्रयोजनों में बार बार आया है। इससे कुछ भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इनमें उन वस्तुओं के लाने, परिमार्जित करने, प्राणवान् बनाने की विधियां प्रथक हैं, जिस विधि से इन वस्तुओं को प्रयुक्त किया जाता है वह वैसे ही गुण वाली बन जाती हैं। पानी में जैसा रंग डाला जाय वह उसी रंग का हो जाता है। उसी प्रकार यह वस्तुएं यद्यपि साधारण हैं और विविध प्रयोगों में आती हैं। इनको जिस विधि से प्रयुक्त किया जाता है तदनुसार ही उनकी शक्ति और सामर्थ्य बनती एवं बढ़ती घटती है।

----*----**

यज्ञ चिकित्सा

****

जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती जाती है वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली एवं उपयोगी बनती जाती है। बादाम को यदि ऐसे ही मामूली तरीके से खा लिया जाय तो वह उतना लाभदायक न होगा जितना कि पीसकर खाने पर होता है, फिर पीस कर खाने की अपेक्षा भी उसे घिसकर खाने से गुण और भी बढ़ जाता है। किसी वस्तु को जितना ही सूक्ष्म बनाया जायगा उतनी ही वह प्रभावशाली बनेगी। लाल मिर्च को साधारणतः सूंघने से कोई विशेष बात न होगी पर यदि उसे अग्नि में जलाया जाय तो मिर्च का एक टुकड़ा काफी दूर तक वायु में फैल जायगा और अपनी तीव्र गन्ध से खांसी उत्पन्न करके लोगों को परेशान कर देगा। कारण यही है कि साधारण स्थिति में रहने की अपेक्षा जब मिर्च जलती है तो उसका प्रभाव बहुत बढ़ जाता है। होम्योपैथिक चिकित्सा के चिकित्सक गन्ध की शक्ति को बहुत महत्व देते हैं। किसी वस्तु की तीव्र गंध लग जाने मात्र से होम्योपैथी की दवाओं के गुण में परिवर्तन हो जाता है वैद्य लोग भी लंघन के रोगी के घर में पूड़ी पकवान् नहीं बनने देते क्योंकि वे जानते हैं कि पकवान बनते समय वायु में जो घी एवं अन्न की गन्ध उड़ती है उसमें पर्याप्त आहार तत्व मौजूद रहता है उसे नाक द्वारा ग्रहण कर लेने पर भी रोगी का लंघन बिगड़ जायगा।

विज्ञान बताता है कि संसार का कोई पदार्थ कभी भी नष्ट नहीं होता केवल उसका रूपान्तर होता रहता है। अग्नि में जो वस्तु जलाई जाती है वह भी नष्ट नहीं होती वरन् सूक्ष्म होकर वायु के साथ सुदूर क्षेत्र में फैल जाती है। शब्द, रूप, रस और स्पर्श की भांति पंच तत्वों की प्रभावशाली तन्मात्राओं में गंध का अपना महत्व पूर्ण स्थान है। आयुर्वेद यूनानी होम्योपैथी एवं ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धतियों में अनेकों औषधियां ऐसी हैं जो केवल सुंघाई जाती हैं और उनका प्रभाव रोगी पर बहुत होता है। यज्ञ के जहां अनेक लाभ हैं वहां उसका उपयोग रोग निवारण के लिए भी होता है। मुख के द्वारा खिलाई हुई औषधि, आमाशय में पचने के बाद जब रस रक्त बनाती है तब अपना प्रभाव दिखाती है। इंजेक्शन से यह कार्य और भी सरल हो जाता है, कोई औषधि सुई लगाकर रक्त में मिला दी जाती है। तो उसका परिणाम अधिक स्पष्ट होता है। हवन द्वारा वायु के साथ नासिका द्वारा अथवा रोम छिद्रों द्वारा औषधियों को रोगी के शरीर में और भी सुविधा एवं सूक्ष्मता के साथ प्रवेश होता है, जिससे रोग निवारण में अधिक प्रभाव शाली सहायता मिलती है। अथर्ववेद में अनेक रोगों के निवारण के लिए अनेक मन्त्र हैं। किसी जमाने में ऐसे अनेक वेद तत्वज्ञ ऋषि थे जो उन मन्त्रों का प्रयोग और विधान भली प्रकार

समझते थे तदनुसार वे असाध्य रोगियों को अच्छा ही नहीं करते थे वरन् मृतकों को जीवित कर देने तक की विद्या जानते थे।

यज्ञ द्वारा किस रोग में, किस विधान से, किस मन्त्र का उपयोग किया जाय इसकी रहस्यमयी विद्या आज ठीक प्रकार उपलब्ध नहीं है। जब उस विद्या की जानकारी फिर से प्राप्त करली जायगी तो निश्चय ही यह चिकित्सा पद्धति संसार की सर्व श्रेष्ठ पद्धति होगी, पर आज तो अनेक प्राचीन महान विद्याओं की भांति यज्ञ विद्या भी लुप्तप्राय है। यज्ञ चिकित्सा का पूर्ण शास्त्रोक्त विधान अज्ञात होते हुए भी कुछ साधारण प्रयोग अनुभव में ऐसे आते रहते हैं जिनके द्वारा रोग निवारण का कार्य साधारण दवादारू की अपेक्षा अधिक सरलता एवं सफलता पूर्वक हो सकता है।

रोगियों की शारीरिक स्थिति अलग अलग प्रकार की होती है। जिन्हें कोई साधारण मन्द रोग होते हैं उन्हें चलते फिरते स्नान करने आदि साधारण कार्यों में कुछ कठिनाई नहीं होती वे हवन पर स्वयं बैठ सकते हैं। जिनको चलाते फिरते, स्नान करने आदि में असुविधा है। उन्हें आहुति आदि स्वयं तो नहीं देनी चाहिए पर हवन स्थान के निकट ही आराम के साथ बैठ जाना चाहिए। जो रोगी बिलकुल असमर्थ है उनकी रोग शय्या के समीप ही हवन किया जा सकता है। वे रोगी हवन की ओर मुख किये हों ताकि हवन में होमी हुई आहुतियों की गन्ध उनके मुख और नासिका तक पहुंचती रहे। यदि वायु अथवा मौसम प्रतिकूल न हो तो रोगी के शरीर को जितना संभव हो उतना खुला रखकर भी उस यज्ञ वायु को शरीर से स्पर्श करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ऐसे हवन देवाह्नान के लिए नहीं, चिकित्सा प्रयोग के लिए होते हैं इसलिए इनको देव पूजन, आदि की उतनी सर्वांग पूर्ण प्रक्रियाएं न बन पड़े तो चिन्ता की बात नहीं है। तांबे के हवन कुण्ड में अथवा भूमि पर 12 अंगुल चौड़ी, 12 अंगुल लम्बी, 3 अंगुल ऊंची, पीली मिट्टी या बालू की वेदी बना लेनी चाहिए। हवन करने वाले उसके आस पास बैठें यदि रोगी भी हवन पर बैठ सकता हो तो उसे पूर्व की ओर मुख कराके बिठाना चाहिये। शरीर शुद्धि, मार्जन, शिखाबन्धन आचमन, प्राणायाम, न्यास, गायत्री मन्त्र से करके कोई ईश्वर प्रार्थना हिन्दी या संस्कृत में करनी चाहिये। वेदी और अग्नि का जल अक्षत आदि से पूजन करके गायत्री मन्त्र के साथ हवन आरम्भ कर देना चाहिये। संक्षिप्त एवं विस्तृत हवन पद्धति इस पुस्तक में अन्यत्र दी जा चुकी हैं। यदि कोई जानकार यज्ञ कर्ता हो तो उन पद्धतियों में से जितना अधिक संभव हो विधि विधान प्रयोग करलें। यदि रोगी के निकटवर्ती लोगों को उतनी जानकारी न हो तो एक

लोटे में तथा कटोरी में, जल पात्र पास में रखकर हवन सामग्री से आहुतियां देनी आरम्भ कर देनी चाहिये।

जिन रोगों में रोगी को लंघन हो रहे हों उसमें तिल, जौ चावल तथा घी स्वल्प मात्रा में ही डालने चाहिये। ऐसी स्थिति में जो घी हवन सामग्री में मिलाया गया है उतना ही पर्याप्त है। यदि रोगी खाता पीता है तो हवन सामग्री में मिलाकर अथवा अलग से आहुति देकर घी का समुचित उपयोग किया जाना ठीक है। कुछ औषधियां सामग्री प्रत्येक रोग में प्रयोग होती है। उसके साथ साथ उस विशेष रोग के उपयुक्त विशेष औषधियां भी मिला लेनी चाहिये। औषधियां पुरानी, सड़ी घुनी न हो, जितनी ताजी और अच्छी हवन औषधियां होंगी उतना ही वे अधिक लाभ करेंगी कम से कम 24 आहुतियां अवश्य देनी चाहिये। आवश्यकतानुसार पीछे भी नि में तीन बार और रात को एक दो बार किसी पात्र से अग्नि रखकर थोड़ी सी औषधियां थोड़ी देर के लिए रोगी के निकट धूप की भांति जलाई जा सकती हैं।

सभी रोगों में प्रयोग होने वाली हवन सामग्री—

अगर, तगर, देवदारु, चन्दन, रक्त चन्दन, गूगुल, जायफल, लोंग, चिरायता, असगन्ध यह दसों चीजें समान भाग लेनी चाहिए। इसके साथ से विशेष रोग की विशेष औषधियां भी मिला लेनी चाहिए। तैयार औषधियों का दसवां भाग शकर्रा और दशवां भाग घृत भी मिला लेना चाहिये।

:: विशेष रोगों की विशेष हवन सामग्री ::

शीत ज्वर—(1) पटोल पत्र (2) नागर मौथा (3) कुटकी (4) नीम की छाल (5) गिलोय (6) वुडे की छाल (7) करंजा (8) नीम के पुष्प।

उष्ण ज्वर—इन्द्र जौ, पटोल पत्र, नीम की गुठली, नेत्र वाला, त्रायमाण, काला जीग, चौलाई की जड़, बड़ी इलाइची।

खांसी—मुलहटी, पान, हल्दी, अनार, कटेरी, बहेडा, उन्नाव अंजीर की छाल।

दस्त—सफेद जीरा, दाल चीनी, अजमोद, वेल गिरी, चित्रक, अतीस, सोंठ, चेव्य।

अपच—तालीस पत्रद्व तेज पात, पोदीना की जड़, हरड, अमलतारा की छाल, नाग केशर, काला जीरा, सफेद जीरा।

वमन—वाय विडंग, पीपल, पीपला मूल, ढाक के बीज, निशोथ, नीबू की जड़, आम की गुठली, प्रियंगु।

अर्श—नाग केशर, हाऊ वेर, धमासा, दारू हल्दी, नीम की गुठली का गूदा, मूली के बीज, जावित्री, कमल केशर, गूलर के फल।

उष्णता की अधिकता—धनियां, कासनी, सोंफ, बनफसा, गुलाब के फूल, आंवला, खस, पोस्त के बीज।

जिगर या तिल्ली—राई, पीपरा मूल, पुनर्नवा, करेले की जड़, मकोय, सेमर के फूल, जामुन की छाल, अपामार्ग।

चेचक—मेहदी की जड़, नीम की छाल, हल्दी, कलोंजी, जावित्री, वांस की लकड़ी, खैर की छाल, श्योनाक।

जुकाम—दूब, पोस्त, कासनी, अंजीर, सोंफ, उन्नाव, वहेड़े की गुठली का गूदा, धनियां।

प्रमेह—तालमखाना, मूसली सफेद, गोखरू बड़ा, कोंच के बीच, सुपाड़ी, बबूल के बीजों का गूदा, शतावार, इलाइची छोटी।

प्रदर—कमल गट्टा, गूलर के फूल, अशोक की छाल, लोध, कमल केशर, माजूफल, सुगन्धवाला, अर्जुन की छाल।

वात व्याधि—ग्वार पाठे की जड़, रास्ता, बालछड़, सहजन की छाल, मेंथी के बीज, पुनर्नवा, तेज पत्रज।

मन्द बुद्धि—शतावरि, ब्राह्मी, ब्रह्मदंडी, गोरख मुण्डी, शंख पुष्पी, मंडूकपर्णी, वच, माल कांगनी।

विष निवारण—वन तुलसी के बीज, अपामार्ग, इन्द्रायण की जड़, करंजा की गिरी, दारूहल्दी, चैलाई के पत्ते, विनौले की गिरी, लाल चन्दन।

रक्त विकार—धमासा, सारवा, कुड़े की छाल, अडूसा, सरफोंका, मजीठ, कुटकी, रास्ना।

चर्म रोग—शीतल चीनी, चोपचीनी, नीम के फूल, चमेली के पत्ते, दारु हल्दी, कपूर, मेंथी के बीज, मझाख।

मस्तिष्क रोग—वेर की गुठली का गूदा, मौलसिरी की छाल, पीपल की कोंपलें, इमली के बीजों का गूदा, काकजंघा, बरगद के फल, खिरैटी, गिलोय।

बच्चों की अस्वस्थता—अतीस, काकड़ा सिगी, नागर मौथा, पीपल छोटी, धनियां, धायके फूल, मुलहटी।

गर्भ पुष्टि—सोंफ, कासनी, धनियां, गुलाब के फूल, खस, पोस्त के बीज, दाख, इन्द्र जौ।

क्षय—मकोय, जीवन्ती, जटामासी, गिलोय, जावित्री, शालपर्णी, पृष्ट पर्णी, आंवला।

ऊपर की पंक्तियों में कुछ किस्मों के रोगों की हवन करने योग्य औषधियों के अष्ट वर्ग लिखे हुए हैं। यह सभी प्रायः समान मात्रा में लेनी चाहिये। इनमें से कोई वस्तु न मिले तो दूसरी औषधियां अधिक मात्रा में लेकर उसकी पूर्ति की जा सकती है। कोई वस्तु अधिक महंगी हो। और उतना खर्च करने की अपनी सामर्थ्य न हों तो उसे कम लेकर उसके स्थान पर दूसरी औषधियां बढ़ा देनी चाहिये।

हवन के अन्त में समीप रखे हुए जल पात्र में कुश, दुर्वा या पुष्प डुबो डुबो कर गायत्री मन्त्र पढ़ते हुए रोगी पर उस जल का मार्जन करे, यज्ञ की भस्म रोगी के मस्तक, हृदय, कण्ठ, पेट, नाभि तथा दोनों भुजाओं से लगावे। घृत पात्र में जो घृत बच जावे उसमें से कुछ बूंदें लेकर रोगी के मस्तक तथा हृदय पर लगावे।

इन सरल प्रयोगों को अनेक बार प्रयोग करके देखा गया है। साधारण औषधि चिकित्सा की अपेक्षा इनका लाभ अधिक ही रहा है। इस पद्धति को अपनाकर चिकित्सक लोग रोगियों को अधिक पहुंचा सकते हैं और रोगी भी आत्मिक तथा शारीरिक दोनों ही प्रकार के लाभों से लाभान्वित हो सकते हैं।

आर्य समाज की हवन पद्धति

****

सब प्रकार वाह्य शुद्धि से पवित्र हो आरम्भ में यज्ञ भावना से उपस्थित जन **(**प्रातः सूर्योदय के पश्चात् तथा सायं सूर्यास्त से पूर्व**)** यज्ञ मण्डप में आसनारूढ़ हो एकाग्र चित्त से निम्न लिखित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपसाना के 8 मन्त्रों का तथा स्वस्तिवाचन और शान्ति प्रकरण का सामूहिक रूप से सस्वर पाठ करें।

:: ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्र ::

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ।।1।।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।2।।

ॐ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।3।।

ॐ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जागतो बभूव। य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।4।।

ॐ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।5।।

ॐ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिताबभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।6।।

ॐ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेदभुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीय धामन्नध्यैरयन्त ।।7।।

फ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानिदेवव युनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठन्ते नम उक्ति विधेम ।।8।।

:: अथ स्वतिवाचनम् ::

ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ।।1।।

ॐ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ।।2।।

ॐ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः खस्ति देव्या दितिरनर्वणः स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ।।3।।

ॐ स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ।।4।।

ॐ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वरित नो रुद्रः पात्वंहसः ।।5।।

ॐ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवती । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ।।6।।

ॐ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताध्नता जानता संगमे महि ।।7।।

ॐ ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य सूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।8।

ॐ येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसरतां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ।।9।।

ॐ मुचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ।।10।।

ॐ सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरेदिवि क्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिमहो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ।।11।।

ॐ को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन । को वाऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।।12।।

ॐ येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ।।13।।

ॐ य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ।।14।।

ॐ भरेश्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैवयं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सताये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ।।15।।

ॐ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वरतये ।।16।।

ॐ विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाय अभिह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ।।17।।

ॐ अपामीवामप विश्वामनाहु तिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषा अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ।।18।।

ॐ अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ।।19।।

ॐ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ।।20।।

ॐ स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ।।21।।

ॐ स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्तयभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ।।22।।

ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भाग प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशँ सोध्रुवा अस्मिन् गौपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ।।23।।

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धा सो अपरीतास उद्भिदः । देवा वो यथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ।।24।।

ॐ देवानां भद्रा सुमितिऋृ जूयतां देवानाँ् रातिरभि नो निवर्त्तताम् देवानाँ् सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।।25।।

ॐ तमीशानं जगतस्तस्थषस्पतिं धियञ्जन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा न यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।।26।।

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्व वेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।27।।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्ये माक्षभियजत्राः । स्थिरैरंङ्गैस्तुष्टुवाँ् सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।28।।

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषिः ।।29।।

ॐ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः देवेभिर्मानुपे जने ।।30।।

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ।।31।।

इति स्वस्तिवाचनम् ।।

----***----

शान्ति प्रकरणम्

****

ॐ शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ।।1।।

शं नो भगः शमुः नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।।2।।

ॐ शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधामिः । शं रोदसी बृहति शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ।।3।।

ॐ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ।।4।।

ॐ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूता शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो श्रवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ।।5।।

ॐ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिवरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिजलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ।।6।।

ॐ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सनतु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ।।7।।

ॐ शं नः सूय उरुचक्ष उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।8।।

ॐ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्क्काः । शं नो विष्णु शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ।।9।।

ॐ शं ना देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तू वसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाम्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।।10।।

ॐ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्त । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः

ॐ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।12।।

ॐ शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपांनपात्येरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ।।13।।

ॐ इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।14।।

ॐ शं नो वातः पवताँ् शं नस्तपतु मूयः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ।।15।।

ॐ अहानि शं भवान्तु नः शँ् रात्रीः प्रतीधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ।।16।।

ॐ शं नो देवोरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ।।17।।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ् शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि ।।18।।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ् शृणयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं ीाूयश्च शरदः शतात् ।।19।।

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तरय तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।20।।

ॐ येन कर्माण्यपसौ मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।21।।

ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।22।।

ॐ येनेदं भूतं भुवनः भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सवम् । येनयज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्प मस्तु ।।23।।

ॐ यस्मिन्नृचः साम यजूँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चितँ् सर्वमोतं प्रजानाँ तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।24।।

ॐ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुमभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।25।।

ॐ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते, शं राजन्नोषधीभ्यः ।।26।।

ॐ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं ना अस्तु ।।27।।

ॐ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।28।।

इति शान्ति प्रकरणम् ।।

इतने पाठ के उपरान्त सभी उपस्थित व्यक्ति अपने अपने जल पात्र से जो यज्ञ में यज्ञ वेदी के समीप बैठे हों वे इन निम्न लिखित तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें अर्थात् एक एक मन्त्र से एक एक बार आचमन करें और अन्य व्यक्ति भी उपस्थित कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य न करें।

:: आचमन मंत्राः ::

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।।1।।

ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।2।।

ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।3।।

:: अंगस्पर्शः ::

आचमन के पश्चात् निम्न लिखित मन्त्रों को बोलकर जल से निम्न लिखित अंगों का स्पर्श करे।

ॐ वाङ् मऽआस्येस्तु—से मुख को

ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु—से नाक को

ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु—से आंखों को

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु—से कानों को

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु—से बाहों को

ॐ ऊर्वोमेऽओजोऽस्तु—से दोनों जांघों को

ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे यह सन्त—से सब अंगों पर जल छिड़कावें।

:: कार्यारंभ ::

कुण्ड या वेदी पर समिधा चयन करे और कार्य आरम्भ करते हुए—

"ॐ भूर्भुवः स्वः" इस मत्र का उच्चारण करे।

:: अग्न्याधानम् ::

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उससे कपूर लगा किसी एक पात्र में धर, उसमें छोटी समिधा लगा के यजमान या पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे। वह मन्त्र यह है:—

ॐ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।

:: अग्नि प्रदीपनम् ::

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे छोटे काष्ट और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़कर व्यजन **(**पंखे**)** से अग्नि को प्रदीप्त करे:—

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथमयञ्च । अस्तिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ।

:: समिधाधानम् ::

::जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की तीन लकड़ी आठ आठ अंगुल की घृत में डुबो उनमें से नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे वे मन्त्र ये हैं—

पहली समिधा के लिये—

ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातेवदस्तेनेध्यख वर्द्धख चद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ।। इदमग्नये, जातवेदसे इनन्न मम ।।

दूसरी समिधा के लिए—

ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्याजुहोतन स्वाहा ।। इदमग्नये, इदन्न मम ।।

ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेद से स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ।

तीसरी समिधा के लिए—

ॐ तन्त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि । वृहच्छो चायविष्ठय स्वाहा ।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे, इदन्न मम ।।

:: घृत सिंचनम् ::

इन मन्त्रों से समिधा धान करके, होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ट पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरे, पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि उष्णकर छान सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर पात्रों में रखा हो, घृत वा मोहन भोग आदि जो कुछ सामग्री हो उसमें से कम से कम छह मासा भर कर अधिक से अधिक एक छटांक भर की आहुति देवें। यही आहुति का प्रमाण है। उस घृत में से चमसा, जिसमें छह मासे घृत आवे ऐसा बनवाया हो, भर कर नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देवें।

ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे, इदन्न मम ।।

:: जल प्रसेचनम् ::

::तत्पश्चात् अंजलि में जल लेके वेदी के पूर्व दिशा आदि में चारों ओर छिड़क वे । उसके मन्त्र हैं:—

ॐ अदितेऽनुमन्यस्व **(**इस मन्त्र से पूर्व में**)**

ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व **(**इससे पश्चिम में**)**

ॐ सरस्वत्यनुमन्यस्व **(**इससे उत्तर में**)**

ॐ देव सवितः । प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु ।।

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़के।

:: होमाहुति ::

::होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उनमें से यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञ कुण्ड के दक्षिण भाग में जो दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं। जो कुण्ड के मध्य भाग में आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्या भागाहुति" कहते हैं। सो घृत पात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा पकड़ के निम्न प्रकार से आहुतियां देवे।

निम्न लिखित आठ आहुतियां केवल घृत की ही देवें। स्वाहा के पश्चात् जिस मन्त्र में इदन्नमम आता है वहां स्रुवा में बचे हुए घृत को जल से भरी हुई प्रोक्षणी में टपकाये।

:: आघारावाज्याहुति ::

ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में ।

ॐ सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदन्न मम

इस मंत्र से दक्षिण भाग अग्नि में।

प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें, तत्पश्चात्—

:: आज्याभागाहुति ::

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।।

ॐ इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय इदन्न मम ।।

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुतियां देवें। उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति दे के जब प्रधान होम अर्थात् जिस कार्य में जितना जितना होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार [आघारावाज्यभागाहुति] देवें पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृत पात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें।

ॐ भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ।।

ॐ भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ।।

ॐ स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय—इदन्न मम ।।

ॐ भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्याः स्वाहा ।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम ।

यह चार घी की आहुति देकर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है, यह घतृ अथवा भात [या किसी मीठी चीज] की देनी चाहिये।

ॐ यदस्य कर्मणो ऽत्यरीरिचं यद्वा न्यून मिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ।।

इससे एक आहुति करके प्रजापत्याहुति नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिए।

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ।

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें, परन्तु जो नीचे लिखी आहुतियां चौल, समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं, वह चार मन्त्र यह हैं। [निम्नलिखित मन्त्र और उपरोक्त चार व्याहृतियों के मन्त्र नित्य कर्म में नहीं हैं। जब कभी बड़ा हवन करना हो तो इनमें भी घी से आहुतियां दी जावें।

ॐ भूर्भुवः स्वः । अग्ने! आयूँ षि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छूनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ।।1।।

ॐ भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ।।2।।

ॐ भूर्भुवः स्वः । अग्ने! पवस्व स्वपाऽस्मेवर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ।।3।।

ॐ भूर्भुवः स्वः । प्रजापते! न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता वभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा । इदं प्रजापतये–इदन्न मम ।।4।।

इनसे घृत की चार आहुतियां देकर नीचे लिखे मन्त्रों से आठ आज्याहुति सवत्र मंगल-कार्यों में या जब कभी बड़ा हवन करना हो, देवें।

ॐ त्वन्नो अग्ने ! वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेड़ों अवयासिसीष्ठाः यजिष्ठो वह्निनतमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां–इदन्न मम ।।1।।

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती, नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्ठौ अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृड़ीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्नि वरुणाभ्यां–इदन्न मम ।।2।।

ॐ इमं मे वरुण ! श्रुधी हवमद्या च मृड़य । त्वामवस्युराचके स्वाहा ।। इदं वरुणाय इदन्न मम ।।3।।

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः अहेड़मानो वरुणोह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा । इदं वरुणाय–इदन्न मम ।।4।।

ॐ ये ते शत्तं वरुण ! ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेमिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्का स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्य–इदन्न मम ।।5।।

ॐ अयाश्चाग्ने ! ऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमिपवमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भैषजँ् स्वाहा । इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ।।6।।

ॐ उदुत्तमं वरुण ! पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणायऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम ।।7।।

ॐ भवतन्नः समनसौ, सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञँ् हि सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्यां-इदन्न मम ।।8।।

:: प्रातःकाल हवन मन्त्राः ::

ॐ सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योति सूर्य्यः स्वाहा ।।1।।

ॐ सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।2।।

ॐ ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योति स्वाहा ।।3।।

ॐ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ।।4।।

ॐ भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ।।1।।

ॐ भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम ।।2।।

ॐ स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।। इदमा दित्याय व्यानाय—इदन्न मम ।।3।।

ॐ भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्रणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ।।4।।

ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ।।5।।

ॐ यां मेधां देवगणः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाऽग्ने ! मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।6।।

ॐ विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ।।7।।

ॐ अग्ने! नय सुपथा राय अस्मान् । विश्वानि देव ! वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ।।8।।

अब नीचे लिखे हुए मंत्र केवल सायंकाल के अग्निहोत्र के जानो

सायँकाल हवन मन्त्राः—आघारावाज्याहुति

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्नम ।।

इस मंत्र से उत्तर भाग अग्नि में ।

ओं सोमाय स्वाहा । इदम् सोमाय—इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें तत्पश्चात्।

:: आज्याभागाहुति ::

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।।

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदन्न मम ।।

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी चाहिए।

ओं अन्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।1।।

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।2।।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।3।।

इस मन्त्र को मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देवें

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाण अग्निर्वेतु स्वाहा ।।4।।

ओं भूरग्नये प्राणायस्वाहा ।। इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ।।1।।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।। इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम ।।2।।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।। इदमादिस्याय व्यानाय इदन्न मम ।।3।।

ओं भूर्भुवःस्वर्न्गिवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्नः—इदन्न मम ।।4।।

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।।5।। ओं यां मेधां देवगणः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाऽग्ने ? मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।6।।

ओं विश्वानि देव ? सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ।।7।।

ओं अग्ने ? नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव ? वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ।।8।।

:: गायत्री मन्त्रः ::

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ।।

पूर्णाहुतिः—ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं

पूर्णात्पूर्ण-मुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

इसको पढ़कर

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ्‌ स्वाहा ।।

इस मंत्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक एक बार पढ़ के एक एक करके तीन आहुति देवें।

----*----**

यज्ञ में पालन करने योग्य नियम

****

(1) विशेष यज्ञ के लिये यजमान तथा आचार्य ब्रह्मा आदि को एक सप्ताह पूर्व से ही ब्रह्मचर्य से रहना आरम्भ कर देना चाहिए।

(2) यज्ञ के दिनों उपवास पूर्वक फल, दूध, अथवा हविषान्न लेकर रहें।

(3) यज्ञ के दिनों अपना अधिकांश समय साधना, उपासना, स्वाध्याय, भगवत् भजन में ही लगाया जाय। सांसारिक विचार एवं कार्य यथा संभव कम ही किये जावें।

(4) यज्ञ करने के लिए स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहन कर ही बैठना चाहिए। पाजामा अथवा मोजे पहन कर यज्ञ में बैठना निषिद्ध है।

(5) संभव हो तो हवन करने वाले सब लोग कंधे पर पीले दुपट्टे धारण करके बैठें।

(6) बड़े यज्ञ में सबको नये यज्ञोपवीत धारण करके बैठना चाहिए।

(7) सब लोग शान्त चित्त से एकाग्रता पूर्वक यज्ञ भगवान का ध्यान करते हुए हवन करें। इधर उधर सिर मोड़ मोड़ कर देखना, आंखें नचाना, बीच बीच में बातें करते जाना हंसना आदि निषिद्ध हैं। पैरों को ऊपर नीचे करके आसन तो बदल सकते हैं पर बैठना पालती मार कर ही चाहिए। घुटने मोड़कर उकड़ी एक ऊपर एक नीचे अथवा अन्य बेढंगे प्रकारों से बैठना वर्जित है।

(8) हवन पर बैठने के समय हाथ पांव मुंह धोकर बैठें। शरीर पर या जेब में चमड़े का बना बटुआ आदि कोई वस्तु अथवा तम्बाकू, सिगरेट, पान आदि कोई नशीली चीज नहीं रखनी चाहिए। हो सके तो हवन के दिनों चमड़े के जूते भी न पहनें क्योंकि आज कल 99 प्रतिशत चमड़ा हत्या किए हुए पशुओं का ही आता है।

(9) यज्ञ में भाग लेने वाली महिलाएं भी भारतीय वेष भूषा में रहें, सादा लिवास पहनें, व सिर को ढका रखें। रजोदर्शन के दिनों में अथवा जिनका बालक 40 दिन से छोटा हो उन्हें हवन में भाग नहीं लेना चाहिए।

(10) यज्ञ की वस्तुओं को यज्ञ के अतिरिक्त अन्य किसी काम में नहीं लाना चाहिए। हवन की अग्नि, दीपक, जल, पान आदि को सांसारिक कार्यों में लेना उचित नहीं।

(11) सब लोग एक स्वर से एक गति से मंत्र बोलें। किसी का कंठ नीचा किसी का ऊंचा, कोई जल्दी कोई तेजी से बोले यह ठीक नहीं।

(12) सामग्री को कुण्ड में झोंकना नहीं चाहिए और न कुण्ड से बाहर ही बखेरना चाहिए। ऐसी सावधानी तथा श्रद्धा पूर्वक थोड़ा आगे झुककर आहुति छोड़नी चाहिए। अग्नि के देव मानकर उनके आदर का ध्यान करते हुए जैसे भोजन परोसते हैं वैसे हाथ को ऊपर मुख रख कर आहुति देनी चाहिए।

(13) सामग्री पांचों उंगलियों से नहीं होमी जाती। अंगूठा और तर्जनी को छोड़कर मध्यमा अनामिका, अथवा तीसरी कनिष्ठका को भी मिला कर इन पर सामग्री लेनी चाहिए और अंगूठे का सहारा देकर धीरे से अग्नि में छोड़ना चाहिए।

(14) जिस समय मंत्र के अन्म में स्वाहा उच्चारण हो उसी समय सबको आहुति छोड़नी चाहिए, पहले पीछे नहीं।

----***----

हवनों का क्रम

****

यह पुस्तक स्मार्त विधान के अनुसार मध्यम वृत्त के यज्ञों के लिए बनाई गई है। एक दिन में समाप्त हो जाने वाले हवनों के लिए यह विधान समुचित है। इस विधान के अनुसार इस प्रकार कार्यक्रम निर्धारित करना होता है।

(1) जल से पवित्रीकरण (2) आसन को पवित्र करना (3) चन्दन धारण (4) यज्ञोपवीत धारण (5) आचमन (6) शिखा बन्धन (7) प्राणायाम (8) अभिसिंचन (9) अघमर्षण (10) न्यास (11) संकल्प (12) स्वस्ति वाचन (13) वरण (14) रक्षा विधान (15) कलश स्थापना पूजन (16) गौरी गणेश पूजन (17) नवग्रहों का स्थापन पूजन (18) गायत्री आवाहन पूजन (19) छह दिशाओं में देव स्थापन तथा पूजन (20) देवताओं की षोडसोपचार पूजा (21) सर्वतोभद्र स्थापन पूजन (22) पंच भू संस्कार (23) अग्नि स्थापन (24) कुश कंडिका (25) प्रायश्चित्त होम (26) पंच वारुणी होम (27) नवग्रहाणां होम (28) अधि देवताओं का होम (29) प्रत्यधिताओं का होम (30) पंच लाकपालों का होम (31) दश दिशाओं का होम (32) सर्वतो भद्र मण्डलान्तर्गत देवताओं का होम (33) प्रधान देवता [गायत्री] का निर्धारित संख्या में होम (34) पूर्णाहुति (35) बर्हि होम (36) ब्रह्म ग्रन्थि खोलना (37) तर्पण (38) भस्मधारण (39) आरती (40) पुष्पांजलि (41) स्विष्टि कृत होम (42) विसर्जन (43) प्रदक्षिणा (44) क्षमा प्रार्थना (45) अभिषेक (46) तिलक एवं फलदान (47) शुभ कामना (48) शान्ति पाठ (49) भजन कीर्त्तन (50) दक्षिणा दान (51) प्रसाद वितरण, ब्राह्मण भोजन आदि।

बड़े हवनों में—

कुछ अधिक विस्तार करना होता है तो कुण्ड और मण्डप की विशेष विधि पूर्वक रचना करके पांच वेदी स्थापित करते हैं (1) सर्वतो भद्र की प्रधान वेदी (2) गणपति वेदी (3) वास्तु वेदी (4) योगिनी क्षेत्रपाल वेदी (5) नवग्रह वेदी। इन वेदियों की रचना रंगीन धान्यों से की जाती है। इन पर कलश स्थापित किया जाता है। इन वेदियों पर स्थापित देवताओं का विस्तृत विधि पूर्वक पूजन कराया जाता है। स्वस्ति वाचन के साथ साथ शान्ति पाठ भी करते हैं। वसोधारा की स्थापना और पूजा की जाती है। लान्दी श्राद्ध भी बड़े हवनों में होता है। यज्ञ मंडप के चार द्वारों पर चार पण्डित चार वेदों का पाठ करते हैं। पंच गव्य से यज्ञ की सभी वस्तुओं का तथा भूमि का प्रक्षालन किया जाता है। कुश कंडिका के समय चरु पकाया जाता है

और उसे हवन करते हैं। हवन के आरम्भ में प्रजापति आदि 4 आहुतियों के पश्चात् गणपति की 8, 28 या 108 आहुतियां देते हैं। उत्तरांग पूजन किया जाता है। पूर्णाहुति के बाद वसोर्धारा से भी घी होमा जाता है। पूर्ण पात्र दान, प्रणीता विमोक, यज्ञ अविशिष्ठ घृत का अवघ्राण किया जाता है। इस प्रकार बड़े यज्ञों में कुछ विधियां बढ़ जाती है।

छोटे हवन—

नित्य के हवन या छोटे हवन में मध्यम होम से भी विधान को संक्षिप्त कर लिया जाता है। (1) जल से पवित्र करना (2) आसन पवित्र करना (3) आचमन (4) शिखा बन्धन (5) प्राणायाम (6) न्यास (8) चन्दन धारण (9) संकल्प (10) स्वस्ति वाचन (11) रक्षा विधान (12) कलश (13) देव पूजन (14) गायत्री पूजन (15) षोडशोपचार देव पूजन (16) पंच भू संस्कार (17) अग्नि स्थापन (18) कुश कण्डिका (19) समिधाधान (20) प्रधान होम (21) तर्पण (22) पुष्पांजलि (23) स्विष्टि कृत होम (24) पूर्णाहुति (25) नीरांजना (26) भस्म धारण (27) घ्रत अवघ्राण (28) क्षमा प्रार्थना (29) अभिषेक (30) विसर्जन (31) शुभ कामना (32) प्रदक्षिणा (33) प्रसाद वितरण।

कहीं कहीं देशान्तर, लोकान्तर परम्परागत पद्धति एवं स्मृति तथा सूत्र भेद के कारण कुछ क्रियाएं न्यूनाधिक तथा आगे पीछे भी हो जाती हैं। उनमें दोष का विरोध नहीं मानना चाहिए।

अति संक्षिप्त हवन

जिनको कोई मंत्र याद नहीं है, वे उपरोक्त सब क्रियाएं गायत्री मंत्र से कर सकते हैं। जिनको उपरोक्त सब क्रियाएं करने में असुविधाएं हैं वे इसमें भी संक्षिप्त कर सकते हैं। जिन्हें कोई विधान न आता हो वे 12 अंगुल लम्बी चौड़ी, 3 अंगुल ऊंची मिट्टी की वेदी बना कर अथवा तांबे का हवन कुण्ड लेकर आम की समिधाओं में कपूर से अग्नि प्रज्वलित करें और अकेले हों तो घृत, शकर, हवन सामग्री मिलाकर गायत्री मंत्र से हवन करलें। दो या अधिक व्यक्ति हों तो एक घृत चढ़ावे शेष हवन सामग्री चढ़ावें। सुगड़ी, घृत, अक्षत तथा कुछ मिष्ठान्न चम्मच में रख कर उससे पूर्णाहुति करलें। बचे हुए घृत को शिर नेत्रों पर लगाना सूंघना तथा भस्म धारण करना भी उचित है। इस प्रकार अति सरल रीति से भी हवन हो सकता है।

साधारण तथा मोटी मोटी बातें इस पुस्तक में लिख दी गई हैं। फिर भी यह विषय व्यावहारिक हस्त क्रिया द्वारा ही पूर्ण होता है। जो कितना ही समझा कर लिखने पर भी पुस्तक द्वारा नौसिखियों को भली प्रकार समझ में नहीं आ सकता, ऐसी स्थिति में जिन्हें सुविधा हो उन्हें मथुरा गायत्री तपोभूमि में आकर यज्ञ संबंधी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। यहां सब बातें प्रेम पूर्वक समझा कर सिखा दी जाती हैं।

----***----

समाप्त